महावीर प्रसाद पोद्दार द्वारा

मुद्रित—

"वणिक् प्रेस"

९०, मिर्जापुर स्ट्रीट,

कलकत्ता।

*श्री*

# वक्तव्य.

मेरा कर्त्तव्य है कि अपना वक्तव्य विस्तृत न कर संक्षेपमें समाप्त कर दूं क्योंकि बहुमूल्य समय बातका बतंगड़ बनानेमें बिताना बुद्धिमानीके बिलकुल बिपरीत है। इस कारण कहना केवल यही है कि मैंने पञ्जाबके परित्यक्त और पवित्र प्रयागके प्रसिद्ध षष्ठ "हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें" यह अपूर्ण प्रबन्ध पढ़ा था। हिन्दी हितैषी, सहित्यसेवी, सुरसिक, समझदार श्रोताओंने सुनकर इसे सराहा। उन्हींकी प्रेमपूर्ण प्रेरणा और परामर्शसे इसका पूर्व्वार्द्ध ही पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका प्रयासी होता हूं। पूर्णाशा है, प्रेमी पाठक भी पढ़कर प्रसन्नता प्राप्त करेंगे। उमापतिकी उपासनासे उत्साहित हो उत्तरार्द्ध भी उपस्थित करनेमें उदासीनता न दिखा उचित उद्योग करूंगा। किमधिकम्।

१०३, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
कलकत्ता,
माघ पूर्णिमा, सं० १९७२

मर्म्मज्ञमानसमराल
मिश्र जगन्नाथप्रसाद
चतुर्वेदी।

## द्वितीय वक्तव्य.

हर्षका विषय है कि पूर्व्व प्रार्थनानुसार प्रेमी पाठकोंने इसे पढ़कर प्रसन्नता प्राप्त की और हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भी पाठ्य पुस्तकोंमें इसे स्थान प्रदानकर गुण ग्राहकताका गौरव पाया। यह दूसरा संस्करण ही इसका साक्षी है।

५, मुक्ताराम रो,
कलकत्ता।
बसन्त ५,

सं० १९७५

कृपाकांक्षी
वही
पूर्व्वपरिचित।

॥ श्री ॥

# निवेदन



श्रीमान् सभापति महाशय और सज्जन सभासदो,

प्रबन्ध पाठके पहले यह प्रार्थना परमावश्यक प्रतीत होती है कि इसका नाम "अनुप्रासका अन्वेषण" है और अभी यह अधूरा ही है। यह सर्व्वसाधारणके लिये नहीं सिर्फ साहित्यसेवियोंके सन्तोषके लिये लिपिबद्ध हुआ है। यह कब, कहां, क्यों और कैसे लिखा गया यह सुननेसे ही समझमें आ जायगा। यदि आप लोगोंने पसन्द किया तो इसे पूर्ण करनेका पूरा परिश्रम करूंगा। अन्यथा अधबिचमें अपूर्ण ही रहने दूंगा।



*श्री*

# अनुप्रासका अन्वेषण.



वर्षों व्यतीत हुए, मेरे आदरणीय अध्यापक श्रीयुत ललित-कुमार वन्द्योपाध्याय विद्यारत्न एम० ए० महाशयने कलकत्ता-कालेज स्क्वायरके युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूटमें सन्ध्या समय सभा-पतिके स्थानपर सर गुरुदास वनर्जीको विठा "अनुप्रासेर अट्ट-हास" शीर्षक बङ्गला प्रबन्ध पाठ किया था जिसमें उन्होंने वङ्गभाषामें व्यवहृत, प्रयुक्त और प्रचलित संस्कृत, अङ्गरेजी, उर्दू, हिन्दी और बङ्गला शब्द, महावरे और कहावतें उद्धृत कर अनुप्रासका अधिकार बङ्गला भाषापर दिखाया था। प्रबन्ध पढ़े जानेपर बङ्गला वंगवासीके (सम्पादक) वाबू विहारीलाल सरकार वोले कि "वांगलाई कोबीतार भाषा। कारोन एते ओनेक ओनुप्रास आछे। ओतो अनुप्रास आर कोनो भाषाते नाई। ओनुप्रास कोबीतार ऐकटी गून।" अर्थात् 'बङ्गला ही कविताकी भाषा है क्योंकि इसमें जितना अनुप्रास है उतना और किसी भाषामें नहीं। अनुप्रास कविताका एक गुण है।'

मुझे बूढ़े विहारी वावूकी यह वात बहुत बुरी लगी। क्योंकि भारतके भालकी विन्दी इस हिन्दीको मैं कविताकी भाषा जानता

था क्या अबतक जानता और मानता हूं। मैंने सोचा, क्या हिन्दी भाषामें अनुप्रासका अभाव है? यदि नहीं, तो बङ्गला ही क्यों कविताकी भाषा घोषित की जायगी? यह सोच विचार मैंने हिन्दीमें अनुप्रासका अन्वेषण आरम्भ कर दिया। इस अनुसन्धानमे जो कुछ अपूर्व्व आविष्कार हुआ वही आज आप लोगोंके आगे अर्पित करता हूं।

संस्कृत साहित्यमें अनुप्रासका अनुसन्धान अनावश्यक जाना क्योंकि एक तो वह भारतकी प्रायः सब ही भाषाओंकी जननी है। उसपर सबकी समान श्रद्धा है। दूसरे उसके स्तोत्रतक जब अनुप्राससे अधिकृत हैं तब काव्योंकी कथा ही क्या है? निदर्शनके लिये निम्नलिखित स्तव ही पर्य्याप्त होगा—

*"गाग वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।*
*त्रिपुरारि शिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥"*

*"पापापहारि दुरितारि तरंग धारि*
*शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।*
*झंकारकारि हरिपादरजोपहारि*
*गांगं पुनातु सततं शुभकारिवारि॥"*

एक और सुनिये

*"नमस्तेऽस्तु गंगे त्वदंगप्रसंगात्*
*भुजंगास्तुरंगा कुरंगाः प्लवंगाः।*
*अनंगारि रंगाः ससंगाः शिवांगा*
*भुजंगाधिपांगी कृतांगा भवन्ति॥"*

हिन्दी साहित्यमें भी मैंने पद्यकी ओर प्रस्थान नहीं किया क्योंकि मैं जानता हूं कि वहां अनुप्रासका अड्डा अद्भुतरूपसे जमा हुआ है। यथा—

चम्पक चमेलिनसों चमनि चमत्कार,
चमू चंचरीकके चितौत चोरे चित है।
चांदी को चबूतरा चहूंघां चमचम करे,
चन्दनसों गिरधरदास चरचित हैं।
चारु चांदतारेको चदोवा चारु चांदनीसो,
चामीकर चोवनपै चंचला चकित हैं।
चुन्निनकी चौकी चढ़ी चन्दमुखी चूड़ामनि,
चाहनसों चैत करें चैनके चरित्र हैं॥

अन्य भाषाभाषी अपनी अपनी भाषाके दो चार शब्दोंमें अनुप्रास आता अवलोकन कर आनन्दित और गद्गद हो जाते हैं। पर यहां तो चारों चरणोंमें चकारकी भरमार है! अफसोस है, तोभी हम हिन्दीकी हिमायत न कर उर्दू अंगरेजीका ही आल्हा अलापते हैं। खैर।

इसलिये मैंने पद्य परित्याग कर गद्यकी ओर ही गमन किया और वहां राजारईस, राजारंक, रावउमराव, सेठसाहूकार, कविकोविद, ज्ञानीध्यानी, योगीयती, साधुसन्यासीसे लेकर नौकर चाकर, तेलीतमोली, बनियां बक्काल, कहार कलवार,

मेहतर चमार, कोरी किसान और लुच्चे लफंगेतककी वातचीत, गपशप, वात विचार, रहनसहन, खानपान, रफतारगुफतार, चालचलन, चालढाल, मेलमुलाकात, रङ्गरूप, आकृति प्रकृति, जानपहचान, हेलमेल, प्रेमप्रीति, आवभाव, जातपांत, रीतरस्म, रस्मरवाज, रीतनीत, पहनावे ओढ़ावे, डीलडौल, ठाठवाठ, वोलचाल, संगसाथ, संगत सोहवतमें अनुप्रासका अमल दखल पाया। मैंने अपनी ओरसे न कुछ घटाया न वढ़ाया, न काटा न छांटा और न चुस्त दुरुस्त ही किया। शब्दोंको जिस सूरत शकलमें जहां पाया वहांसे वैसेही उठाकर ठौरठिकानेसे मौकामहल देख रख भर दिया है।

अन्वेषणके पहले अनुप्रासका नामधाम, आकार प्रकार, रङ्गढङ्ग और नामोनिशान जान लेना जरूरी है। अङ्गरेजीके Alliteration & Assonance, उर्दू फारसीका काफिया रदीफ और संस्कृत हिन्दीका अनुप्रास नाममे दो होनेपर भी काममें एक ही हैं।

स्वरके विना व्यञ्जन वर्णके साम्यको अनुप्रास कहते हैं। यानी वाक्य और वाक्यांशमें वारंवार एक ही प्रकारके व्यञ्जन वर्णके आनेको अनुप्रास कहते हैं। इसके अनेक रूपरूपान्तर हैं पर प्रधान पांच ही हैं जैसे ;

( १ ) छेकानुप्रास—भोजन विना भजन।

( २ ) वृत्यनुप्रास—हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिका सुन्दर सिंहासन।

( ३ ) श्रुत्यनुप्रास—खेलकूद, जङ्गलझाड़ी।

( ४ ) अन्त्यानुप्रास—अत्र तत्र सर्वत्र है, भारतमित्र सुपत्र।

( ५ ) लाटानुप्रास—शिक्षिता अबला अबला नहीं है।

अच्छा अब असली हाल सुनिये। अनुसन्धानके अर्थ कमर कसते ही मुझे अपने इर्दगिर्द, अगलबगल, अड़ोसपड़ोस, टोले मुहल्ले, घरबाहर, भीतरबाहर, आसपास, इधरउधर, नातेरिश्ते, बन्धुबान्धव, भाईबन्द, भाईभतीजे, कुटुमकबीला, पुत्रकलत्र, बालबच्चे, लड़के वाले, जोरूजांते, चूल्हेचक्की, घरबार, अपने-बेगाने, मानभानेज, भाईबिरादरी, खानदान, परिवार तमाम अनुप्रास ही अनुप्रास नजर आने लगा। इसका अनुमान नहीं प्रत्यक्ष प्रमाण लीजिये। मेरा नाम जगन्नाथप्रसाद, स्टेशन जमुई, ससुर जहांगीरपुरनिवासी जौनमाने जसवन्तरायजीके जेठेबेटे जयन्तीप्रसादजी, मामा जयकृष्णलालजी और लड़का यदुनन्दन है। मेरा आदि निवास मथुरा, मध्य मिरजापुर और वर्त्तमान मलयपुर जिला मुंगेर, प्रवास मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट ( कलकत्ता ) अल्ल मईमिश्र, हिस्सेदार मिरजामलजी और चाचा मुरारीलाल तथा मथुराप्रसाद महोदय हैं। उपाधि चौबे चतुर्वेदी, काम चपड़ेका और उमर चालीसकी है। गोत्र सौश्रव है। किस्सा कोताह, परिजन, पुरजन, अरिजन, स्वजन सबकी मोहममता और मायामोह छोड़, मुंह मोड़ सजधज और बनठनकर अनुप्रासकी तलाशमें निकल पड़ा।

## वाणिज्य व्यापार.

चूंकि अपना धर्म्मकर्म्म वाणिज्य व्यापारसे चलता है—नौकरीचाकरीसे कुछ लेनादेना नही। वस, जवानी दीवानीके फन्देमें फंस मनमानी घरजानी करता पहले वङ्गाल वङ्गकी वड़ावाजार ग्रेश्वमें जा पहुंचा तो क्या देखता हूं कि, रोकड़ जाकड़, हिसाव किताव, खाते पत्तर, उचन्तखाते, खर्चखाते, खैरात खाते, खुदरा खर्च खाते, वट्टे खाते, व्याजवट्टे, लेनदेन, नकराई सकराई, मितीके भुगतान, खोखे, पैठ परपैठ, देनेपावने, नाम जमा, लेवाल देवाल, लेवाल वेचवाल, साझे शराकत, सौदासुल्फ, तारवार, लेने वेचने, खरीद विक्री, खरीद फरोख्त, वेचनेखोचने, मोल लेने, क्रयविक्रय, मालटाल, मालजाल, मालमता, विलटीवीजक, वाकीवकाये, मत्थेपोते, जमीन जायदाद, धनदौलत, धनधान्य, अन्नधन, सौकेसवाये, नफेमुनाफे, नफेनुकसान, आमदनी रफ्तनी, आगत निर्गत, रुकधोक, दरदाम, मोलतोल, वोहनीवट्टे, वाजारदर, देनदार, दूकानदार, सर्राफ, वजाज, मुनीम गुमाश्ते और वसनेके ब्राह्मणोंकी कौन कहे दिवाले निकालने, टाट उलटने, वम वोलने, आफीशियल असायनी और इनसालवेंट अदालततकमें अनुप्रासका आसन जमा है। केवल यहीं नहीं दल्लाल, नमूने, कामकाज, कारवार, कारव्योहार, कामधन्धे, खुदीके सौदे, कलकारखाने, कलके कुली, जहाजकी जेटी और वट्टेवट्टेमें भी आप आ वैठे हैं।

बाजार बढ़े चढ़े या घटे, गिरे या उठे, तेज हो या मन्दा, सुस्त या समान रहे, मारवाड़ी महाजन हो चाहे बङ्गाली ब्योपारी, ब्योहरे बनिये हों चाहे ब्राह्मण, अनुप्रासके चक्करमें सब ही हैं। उत्तमर्ण अधमर्णमे, स्वदेशी शिल्पमें, सूची शिल्पमें, श्रमशिल्पमें, शिल्पसभामें, श्रमजीवी समवायमें, कृषिशिल्पप्रदर्शिनीमे, वैश्य-वृत्तिमें, व्यवसायात्मिका बुद्धिमें, विज्ञान वाणिज्यमे, अर्थशास्त्र-मे, कलाकौशलमें, व्यापारे वसते लक्ष्मी या लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये इस मूलमन्त्रमें भी अनुप्रास आ गया है। अमानतमें खयानत करो, धन गबन करो, चाहे बचत बचाकर नौ नकद न तेरह उधार करो, कच्चे चिट्ठेको पक्का समझो या सफेदको स्याह करो, बङ्कसे बन्धकका बन्दोबस्त कर ब्याज बढ़ाओ, जूट पाटका फाटका या सट्टा करो पर अनुप्रासका अदर्शन न होगा।

हमारे लाखके लेनेवाले रेलीब्रदर्स, अर्नथौजन, वेकरग्रे, टौमसनलेजन और लालमारसलपर तथा बेचनेवाले मिरजापुरी महाजन गरीब फकीर, बन्धू बुझावन, मङ्गन झङ्गन, शिवचरन-सहाई, झब्बूलाल, चुन्नीलाल लूनावत और रामस्वरूपराम रामसकलरामपर भी अनुप्रासका अनुग्रह है। यह दूकानदारी या बनावटी बात नहीं, सच्चा सौदा है।

अग्रसर हुआ तो कलकत्तेके बड़े बाजारमे, दिल्लीके चांदनी चौकमें, बनारसके ठठेरी बाजारमें, आगरेके किनारीबाजारमें, मिरजापुरके धून्धीकटरेमें, कानपुरके कलकटरगञ्जमे, जयपुरके

जौहरीबाजारमें, प्रयागके जानसेनगञ्जमें, मुंगेरके वेलनबाजारमें, भागलपुरके नाथनगर, सूजागञ्जमें, मैनपुरीके मदार दरवाजेमें, पटनेके खुचकल्लेमें, बम्बईके कालबा देवीमें भी अनुप्रासको अकड़ते पाया। अस्तु।

*साहित्य.*

अर्ज्जन उपार्ज्जनके उपरान्त साहित्यसेवा है। संस्कृत साहित्यकी कौन कहै, राष्ट्र भाषा हिन्दीके साहित्यससारमें भी अनुप्रासकी आंधी आ गयी है। दिव्यदृष्टिसे नही चर्म्मचक्षुओंसे ही चश्मा लगा आप देखेंगे कि, कविकुलकुमुदकलाधर, काव्य-काननकेसरी और कविताकुञ्जकोकिल कालिदास भी काव्य-कल्पनामें अनुप्रासका आवाहन करते हैं। कही कहीं तो कष्ट-कल्पनासे काव्यका कलेवर कलुषित हो जाता है। यह कपोल-कल्पना नहीं कवि कोविदोका कहना है। खैर, वंशीवट, यमुना निकट, मोर मुकुट, पीतपट, कालिन्दीकूल, राधामाधव, व्रज-वनिता, ललिता, विधुवदनी, कुंवर कन्हैया, नन्द यशोदा, वसुदेव देवकी, वृन्दावन, गिरिगोवर्द्धन, ग्वालबाल, गो गोप गोपी, तालतमाल, रसाल साल, लवंगलता, विपिनविहारी, नन्दनन्दन, विरहव्यथा, वियोगव्यथा, संयोग वियोग, मधुर मिलन, मदन-महोत्सव और मलयानिल ही नहीं झिल्लियोंकी झंकार, वीर बादर, घनगर्ज्जन वर्षण, दामिनीकी दमक, चपलाकी चमक, बादरकी गरज, शीतल सुगन्ध मन्द मारुत, कुसुमकलिका, मदन-मञ्जरी, बीरबहूटी, चोआचन्दन, अतर अरगजा, तेलफुलेल, मेंहदी

महावर, सोलहश्रृङ्गार, मृगमद, राहुरद, कुमुद कमलकल्हार, स्थलकमल, सरसिज, सरोरुह, पद्मपत्र, एलालता, लज्जावती लता, छुईमुईकी पत्ती, कोयलकी कुहक, कूजितकुञ्जकुटीर, शशि, बसन्ती वायु, मलयमारुत, मधुमास, युवक युवती, नवयौवन, षोड़शी, सरशर, पवित्र प्रेम, प्रेमपाश, प्रेमपिपासा, यामिनीयापन, रमणी-रत्न, सुखसागर, रससागर, दुःखदावानल, अन्धअनुराग, मुग्धा-मध्या, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, अधवा विधवा सधवा, चित्तचोर, मनमोहन, मदनमोहन, दिलदार यार, प्राणनाथ, प्राणप्रिय, पीनपयोधर, प्रेमपत्र, प्रेमपताका, प्राणदान, सुखस्वप्न, आलिङ्गनचुम्बन, चूमाचाटी, पादपद्म, कृत्रिम कोप, भ्रू भङ्ग, भ्रूकुटी-भङ्गी, मानमर्द्दन और मानभञ्जन भी अनुप्रासके अधीन है।

कम्बुग्रीव, बाहुवल्ली, करकमल, पद्मपलाशलोचन, कुचकमल, कुचकलश, कुच कुम्भ, निविड़नितम्ब, पदपल्लव, गजगमन, हरिण-नयन, केसरिकटि, गोल कपोल, गुलाबी गाल, कोमल कर, दाड़िमदसन और साफ सुथरी गोरी नारीकी मधुर मुसकानमें अनुप्रासका जैसे वास है वैसे ही काली कलूटी, मैली कुचैली, नाटी मोटी खोटी छोटी, कर्कशा, कलहकारिणी कुलटाके बिखरे बालोंमें भी है। तात्पर्य्य यह कि, प्रेममें नेम नहीं, तकल्लुफमे सरासर तकलीफ है। प्रेमका पन्थ ही पृथक् है। निराला होनेपर भी आला है। इसमें सुख दुःख और जीवन मरण दोनों हैं। हँसा सो फँसा। इश्क हकीकी हो या मजाजी उसमें मार और प्यार दोनों हैं। भगतके वसमें हैं भगवान।

आशिक माशूक और प्रेमिकप्रेमिकाओंके हावभाव, नाजनखरे, चोंचले, ढकोसले भुक्तभोगी ही जानते हैं। जो दिलजले हैं उनका दिल भला कहीं क्यों लगने लगा। जो सदा सर्व्वदा मक्खियां मारा करते हैं उनसे भला क्या होना जाना है। जिसका सनेह सच्चा है वह लाख आफत विपत होते भी सही सलामत मंजिले मकसूदको पहुंच जाता है। उसके लिये विघ्नबाधा, विपदबाधा कुछ है ही नहीं। यहांतक तो अनुप्रास आया। अब आगे राम मालिक है।

व्याकरणके वर्त्तमानभूतभविष्यतमें, संज्ञासर्व्वनाममें, विशेष्य विशेषणमें, सन्धिसमासमें, कर्त्ताक्रियाकारकमें, कर्त्ताकर्म्मकरणमें, उपादानसम्प्रदानअधिकरणमें, सम्बन्धसम्बोधनमें, उद्देश्य विधेयमें, कर्त्तरिकर्म्मणि प्रयोगोंमें, तत्पुरुष कर्म्मधारय बहुव्रीहि द्वन्द द्विगु समासोंमें, विभक्तिप्रत्ययमें, प्रकृतिप्रत्ययमें, आसक्तिआकांक्षामें, सार्थक निरर्थक शब्दोंमें, जातिव्यक्ति और भाववाचक संज्ञाओंमे जब अनुप्रासका निवास है तब सामयिक साहित्यकी सामग्री कागजकलम, कलमपेनसिल, रूलपेनसिल, हेन्डल होलडर, स्याही सोख, निब पिन, चाकूकैंची, एडीटर कम्पोजिटर, प्रिनटर पबलिशर, सम्पादक मुद्रक प्रकाशक, प्राप्तपत्र, प्रेरितपत्र, सम्पादकीय स्तम्भ, साहित्यसमाचार, तार समाचार, तड़ित समाचार, तार तरङ्ग, विविध समाचार, मुफस्सिलसमाचार, साहित्य समालोचना, क्रोड़पत्र, वेल्युपेवल पारसल और प्रेस सेनसरमें भी अवश्य ही है।

भारतमित्र, अभ्युदय, प्रेमपुष्प, वंगवासी, प्रताप, जयाजीप्रताप, सज्जनकीर्त्तिसुधाकर, वीरभारत, पाटलिपुत्र, बिहारबन्धु, मिथिलामिहिर, सत्यसमाचार, सत्यसनातन, चित्रमयजगत्, सद्धर्म्मप्रचारक, अवधवासी, आनन्द, वेंकटेश्वर समाचार, दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रोंमें और सरस्वती, मर्य्यादा, नवनीत, जासूस, नवजीवन, सारदाविनोद, स्त्रीदर्पण, मनोरञ्जन, वैष्णवसर्वस्व, सुधानिधि, चतुर्वेदी चन्द्रिका, महामण्डल मेगजीन, ब्रह्मचारी, ललिता नामक मासिक पत्रोंमें अनुप्रासका अंश है।

लेखकोंमें बावू बालमुकुन्द वर्म्मा, गंगाप्रसाद गुप्त, लाला भगवानदीन, व्रजराज बहादुर बी० ए०, नरेन्द्रनारायण, भास्कर भालेराव, हरिहरस्वरूप शास्त्री, तीर्थत्रय सकलनारायण शर्म्मा, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, वासुदेव, बाबूराव विष्णु पराड़कर, यशोदानन्दन अखौरी, रामनारायण चतुर्वेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, विद्यावारिधि, ( ज्वालाप्रसाद मिश्र ), नन्दकुमारदेव शर्म्मा, गिरिजाकुमार घोष, चन्द्रधर गुलेरी, कृष्णकान्त, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, गोपालराम गहमरी, रामजी लाल, लज्जाराम, रुद्रदत्त, गौरीशङ्कर हीराचन्द, राधाचरण, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, रामावतार, रामरणविजयसिंह, अयोध्यासिंह उपाध्याय, देवकीनन्दन, राय देवीप्रसाद पूर्ण, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अम्बिकादत्त व्यास, माधव मिश्र, श्रीनिवासदास, सदानन्द मिश्र, तोताराम, लल्लूलाल और लेखिकाओंमें यशोदा देवी, राजमन्नी देवी, कृष्णकला, कृष्णकुमारी, तोरन देवी लली,

रामेश्वरी नेहरू और हेमन्तकुमारी चौधरी अनुप्रासके अन्तर्गत ही मिलीं।

द्विवेदीजी कृत 'कालिदासकी निरंकुशता', मनसाराम लिखित 'निरंकुशता निदर्शन', आत्माराम रचित 'अनस्थिरता', मौजीराम-का 'विचार वैचित्रय', शिवशम्भु शर्म्माके चिट्ठे, मस्तरामके मन्तव्य, मनसुखाका मनसूबा, गिटपिटानन्द. गोलमालकारी, कलकत्तेकी साहित्यसंवर्द्धिनी सभा, प्रयाग या फीरोजाबादका भारती भवन, पाठकजीका पद्मकोट, सिंहजीका 'सतसई संहार', व्यासजीका 'विहारी विहार', प्रतापनारायणजीका 'सांगीत शाकुन्तल', श्याम+शुक+गणेश विहारी मिश्रोंका 'वन्धुविनोद', या 'कविकीर्त्तन' तथा 'नवरत्न', मैथिलीशरणकी 'भारत भारती', अयोध्यासिंहजीका 'प्रिय प्रवास' तथा 'ठेठ हिन्दीका ठाठ', अयोध्यानरेशका 'रसकुसुमाकर', जोधपुरी मुरारिदानजीका 'यशवन्त यशोभूपण' और मेरा 'संसारच्चक्र' तथा 'विचित्र विचरण' भी अनुप्रास आमेज है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति होनेके सवव ही माननीय मदनमोहन मालवीय, गोविन्दनारायण मिश्र, वदरीनारायण चौधरी, महात्मा मुनशीराम और पंडित श्रीधर पाठक तथा महामन्त्री पुरुषोत्तमदास टनडनको भी अनुप्रासने अछूता न छोड़ा।

अनुप्रासके अत्यन्त आग्रहसे ही वावू श्यामसुन्दर दास इस वार सभापतिके आसनपर आसीन हुए। पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा स्वागतकारिणी समितिके मन्त्रिपदको त्याग जड़ीवूटी जमा करने

हिमशैल शिखरपर सिधारे और पं० राजाराम शास्त्री उक्त पदपर पधारे थे। अनुप्रासके अनुरोधसे ही राय रामशरणदास बहादुरने भी स्वागतकारिणी समितिका अध्यक्ष होना अङ्गीकार किया और मनहूस मुहर्रमकी तङ्ग तातील तजकर क्रिसमसका सुहावना समय स्थिर हुआ। लोगोंको लखनऊसे ही लाहोर चलनेकी लालसा लगभग साल भरसे लगी हुई थी पर दानापानीने सबपर पानी फेर दिया। अन्नजल बड़ा प्रबल है। पगड़बाज पञ्जावियोंकी परिवर्त्तनप्रियता अथवा लहरी लाहौरियोंकी लबड़धोंधोंसे हमारे तुम्हारे सबके छक्के छूट गये। हक्के बक्के हो इधर उधर ताक झांक करने लगे। घिग्घी बंध गयी, बोल बन्द हुए। पर स्थायी समिति स्थिर रही। किंकर्त्तव्यविमूढ़ न हो उसने सोचा समझा और अलाहाबादमें ही अधिवेशनका आयोजन कर एक सख्त सवाल या मुफीद मसला हल कर डाला। लिहाजा लाचार हो लाहोरकी लम्बी मुसाफरीसे मुंह मोड़ अनुप्रासके अनुसन्धानमें मैं भी पञ्जाब मेलसे पटने होता प्रयाग पहुंच ही गया।

## धर्म्म.

साहित्य सेवाके बाद धर्म्म कर्म्म है। धर्म्मान्ध, धर्म्मधुरन्धर, धर्म्मधुरीण, धर्म्मावतार और सनातनधर्म्मावलम्बी बन कर पोथीपुराण, श्रुतिस्मृति, शास्त्रपुराणका पठन-पाठन और श्रवण मनन निदिध्यासन करो, प्रतिमापूजन प्रतिपादन, मूर्त्ति-

पूजामण्डन और श्राद्ध तर्पणका शङ्का-समाधान करो ; पाखण्डी पंडों, पुरोहितों और पण्डितोंके पैर पूजो, लकीरके फकीर बनो, संयमनियम, तीर्थ व्रत, योगभोग, जपतप, यागयज्ञ, ज्ञानध्यान, स्नानध्यान, पूजापाठ कर कर्म्मकाण्डी कहाओ, हव्य कव्य गव्य, पञ्चामृतपञ्चगव्य, धूपदीप, चन्दन, पुष्प, कुमकुम, गङ्गाजल, तुलसीदल और ताम्बूल पूंगीफलसे परमात्माका पूजन अर्च्चन करो, चाहे आर्य्यसमाजी हो बालविवाह, विधवा विवाह, बहु-विवाह, वृद्ध विवाह, बेमेल ब्याहका विरोध कर समाज सस्कार, समाज सुधारके साथ नियोग निरूपण करो या खण्डनमण्डन, शास्त्रार्थ, सन्ध्यावन्दन, होमहवन कर मांसपार्टी, घासपार्टी पैदा करो पर अनुप्रास सदा सर्वत्र अनुसरण करता है। केवल यहीं नहीं ; प्रवृत्ति निवृत्ति, स्वर्ग नरक, पापपुण्य, अर्थ धर्म्म काम मोक्ष, मुक्ति मोक्ष, लोक परलोक, यमयातना, साकार निराकार, निर्गुण सगुण, काशीकरवट, दान पुण्य, जन्म मरण, जन्ममृत्यु, विषयवासना, ब्रह्मविद्या, मुक्तिमार्ग, ज्ञान नेत्र, आगम निगम, वेद उपनिषद, वेद वेदाङ्ग वेदान्त, ब्रह्मवैवर्त्त, श्रीमद्भगवद्गीता, शास्त्रसिद्ध विधि निषेध और वेदविहित कर्म्मोंमें भी अनुप्रासका आदर देखा।

आचारविचार, नेमधरम, नित्यनैमित्तिक क्रिया कर्म्म, ध्यान-धारणा, स्तवस्तोत्र, यन्त्रमन्त्रतन्त्र, ऋद्धिसिद्धि, शुभलाभ, भजनपूजन, भगवच्चिन्तन, प्रायश्चित्त पुरश्चरण, वृद्धिश्राद्ध, आद्य-श्राद्ध, सपिण्डणश्राद्ध, पितृप्रेतकृत्य, पिण्डप्रदान, कपालक्रिया,

जलाञ्जलि, तिलाञ्जलि, पितृपक्ष और गोग्रासमें भी अनुप्रासका अनुभव किया।

दरसपरस मज्जन पान करो, सत्सङ्ग या साधुसमागमसे दुरपारासार संसारको अनित्य समझो, या सांसारिक सुखसम्भोगमें सारा समय समर्पित कर दो, मारवाड़ी सहायक समिति संस्थापित करें या श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय बनवावें पर वह अनुप्रासले अलग नहीं हो सकते। झुनझुनूवालेका लछमन झूला, रामचन्द्र गोइनकाका जनाना घाट, सोदपुरकी पिंजरापोल, राय बहादुर बदरीदास मुकीमका माणिकतल्लेवाला मन्दिर, मिरजापुरकी गोवर्द्धनगोशाला, सहारनपुरका (मेरी) सारदासदन, कांगड़ीका गुरुकुल, हिन्दीहीन हिन्दू विश्वविद्यालय, बाबा ज्ञानानन्दका शरीर और निगमागम मण्डली, व्याख्यानवाचस्पति महामन्त्री दीनदयालुजीका श्रीभारतधर्म्म महामण्डल, प्रयागकी सेवासमिति और थूकापन्थी भी अनुप्रासके आश्रित ही हैं।

हिन्दुओंके परब्रह्म परमात्मा, ब्रह्मा विष्णु शिव, वरुण कुबेर, जय विजय नामक दोनों द्वारपाल, सूर्य्यचन्द्र, ग्रहनक्षत्र, काली कमला शीतला, सरस्वती, महामाया, इन्द्राणी, शर्वाणी, रुद्राणी, कल्याणी, देवदानवों, देवीदेवताओं, नरीकिन्नरी अप्सराओं, गन्धर्व्वों ओर भूतप्रेत पिशाचोंमें ही नहीं मुसलमानोंके पाकपरवरदिगार अकबर, हजरत मुहम्मद, पीर पैगम्बर, पांचपीर, हसन हुसैन, मक्के मदीने,

श्रमका गौरव ग्वालोंकी कौन कहे, गोस्वामियोंतकमें है। इस-लिये अब मैं गृहस्थके घरमें ही घुसकर अनुप्रासकी तलाश करता हूं क्योंकि धर्म्मकी चर्चा करना लोहेके चने चबाने हैं।

*गृहस्थाश्रम.*

गृहस्थाश्रममें गमन करते ही विवाह—पाणिग्रहणकी चिन्ता चित्तको चञ्चल करती है। घरनीके बिना घर नहीं—गृहिणीके बिना गृह नहीं। स्वजनों, परिजनों, पुरजनोंसे नीची नजर न करो तो बनी बात बिगड़ती है क्योंकि कारेबारे, कारेकञ्चेका सङ्गसाथ ठहरा। शहर, बाजार और नगरकी ही नहीं गँवई गांव और दिहातोंकी भी यही दशा है। दादा दादी, माता-पिता, चाचा चाची, काका काकी, भाई भौजाई, भाई भतीजे, जीजा जीजी, फूफा फूफो, नाना नानी, मामा मामी और बहन बहनोईकी बदौलत सम्बन्ध—सगार्त्त—सगाई हो गयी। वैदिक लौकिक रीतभांत होने लगी। गाने बजाने, नाचगान, रागरङ्गका बाजार गर्म हुआ। चहलपहल हुई। सजधज, बाजेगाजे, ठाठ-बाठ, धूमधाम, धूमधड़क्के, तुमतराक और शानशौकतसे ठस्सेके साथ बनरेने सिरपर सेहरा रख घरसे घोड़ी या पीनस पालकी, तामजाम या बिहारकी खड़खड़िया पर शुभसायतमें यात्रा की। अपने बेगाने, अपने पराये बराती बने। खाते पीते, उठते बैठते, सोते जागते पैदल चलते ठीक ठिकाने पहुंचे। यह उस समयकी बात है जब रेलका जाल नहीं फैला था। अब

तो स्टेशन जा, टिकट कटा, माल तुला, महसूल दे दिवा पलाट-फौर्मपर टहलने लगे। पहलेसे डब्बे रिजर्व करा लो तो कोई झंझट नहीं। सिगनेलने सिर झुकाया। गाड़ी आयी। चढ़ बैठे। नहीं तो भीड़भाड़में धक्कमधक्के, ठेलमठेले, ठायंठायं, चख चख, ले ले, दे दे, तू तू, मैं मैं, हायहाय ही नहीं, लप्पड़ थप्पड़ धौलधप्पे, चपत तमाचे, चांटे चटकने चनकटे, मुक्के, लात जूते, जूतीपैजार, मारपीट तककी नौबत पहुंच जाती है। पर तोभी गाड़ीमें गुजर नहीं। घंटा बजते सीटी हुई और गाड़ी यह गयी वह गयी। कुलियोंकी कामना पूरी करनेमें कोताही की और हुज्जत हुई। इससे स्टेशनमास्टरसे ले मेहतरतकका मुंह मीठा करना मुसाफिरोंके लिये मुफीद है। तीसरे दरजेके मुसा-फिरोंसे ही रेलवेवालोंका रोजी रुजगार, रोजीरोटी चलती है और घर भरता है पर तोभी उनके सुख दुखका पूछनेवाला कोई नहीं और न कोई उनकी खोज खबर ही लेता है। सच-मुच उनका धनीधोरी कोई नहीं है। गर्मीके मौसममें पथिक पिपासासे पीड़ित हो पुकारते पुकारते पसीने पसीने हो जाते हैं पर पानीपांडेजी (चाहे वह कोरी कलवार ही क्यों न हों) टससे मस नहीं होते। कृपा कर आये भी तो डोल, बालटी, लोटा खाली दिखा रफूचक्कर हो जाते हैं। मुसलमानोंके सक्के या बिहिश्ती सुराही गिलास लिये पहले गोरे गार्ड ड्राइवरोंके ढिंग जाते। पीछे मकरूह मुसाफिरोंका मुआइना करते हैं। यही नहीं, गाड़ियां लड़ गयीं या आपसमें उनकी टक्कर हो

गयी तो जानकी जोखिम है। प्राणपखेरूके उड़नेमें विलम्ब नहीं होता।

अच्छा अव आगेका हाल अहवाल सुनिये। वरातके डेरा डालते ही वेटीके वापपर वेभाव पड़ने लगती है। वह वेचारा वराती घराती, आये गये, पई पाहुने, न्योतहारी व्योहारी, दोस्त आशना, गुरु पुरोहित, सगे सम्बन्धीके आवभाव, आदर सत्कार, खिलाने पिलाने सुलानेके प्रवन्धमें ही पग जाता है। गरजने चिल्लाने, वकने भूकने, समझाने वुझाने और गुलगपाड़ेसे तवीयत हैरान परेशान रहती है। सुवह शाम, सांझ सवेरे जव देखो तव वही वात। अकेलेकी आफत है। जो धन जनसे भरा पूरा है उसकी कुछ मत पूछो। भागवानका हल भूत जोतता है। गरीवोंको भगवानका ही भरोसा है। उनका वेड़ा वही पार करता है। इस लिये हिम्मत हारने या मन मारनेकी जरूरत नहीं। पर औरतें गीत गाने, गाली गाने, सीठने सुनाने, सिङ्गारपटार करने और चोटीपाटी, मेंहदी महावर, मिस्सी सुरमेंमें ही मस्त रहती हैं। उन्हें फालतू वातोंसे क्या मतलव? खैर, शुभ समयमें कन्यादान हुआ। मातृका पूजन, शाखोच्चार, सप्तपदी, पादप्रक्षालन, मधुपर्क, सिन्दूरदान आदि शास्त्रोक्त रीतियां यथासमय की गयीं।

मांगरमंडवे, तेलताई, कुंवरकलेवे, वत्तीमिलाई, गूंथखुलाई, पत्तलवदलौअल, टीकापटा, पांवपखरावनी आदि क्रियाचारोंमें कुछ कोरकसर या गलती भूल नहीं रही। यहांतक कि गोवरगणेशकी

पूजा भी पहले ही विधिवत् कर दी गयी थी। वर वधूको बधाइयां और मुबारकबाद मिला। दोनों ओर वारे न्यारे हुए। खर्चवर्च हैसियतके हिसावसे करना ही होशियारोंका वसूल है। नहीं तो व्याह वाद पत्तर भारी हो जाती है।

इसके वाद जेमाजूठी, ज्योनार भोज, भोजन-छाजनकी बारी आयी। आहारेव्यौहारे लज्जा न कारे। लाचार निर्लज्ज हो न्योता खाने लोग चले आये। पहले पानीपत्तर, जलपत्तल, परीसनेकी पुरानी प्रथा है। अब साथमें लोटा गिलास लानेकी चाल चल बसी है। इस लिये किसोरों, सकोरों, पुरवोंका प्रबन्ध हो जाता है। कच्चीपकी, निखरेसखरे, आमिष निरामिषका विचार वेहद्द बढ़ गया है। घृतपक्क पयोपक्कके भी प्रेमी हैं। पर कानकुब्जोंकी कहानी अकथ है। वह तीन जने इकट्ठे हो तेरह चूल्हे चाहते हैं। वेटी रोटी व्यौहारका वहां बड़ा बखेड़ा है। पर हम चौबे चतुर्वेदियोंकी चाल निराली है। इनकी मथुरा ही न्यारी है। यहां भेदभाव नहीं। सब साथ खाने पीनेवाले हैं। हां, लकीरके फकीर जरूर हैं। लीक लगाये विना इनका काम नही चलता है। यथास्थान सबके आसीन हो जानेपर परीसनेवालोंने पाकप्रणालीके अनुसार परिवेषण प्रारम्भ किया। मैं भी सागसब्जी और सागतरकारीसे ही शुरू करता हूं। लीजिये—

रसीला गठीला आलू, आलू परवल पालक, कोंहड़ा कदुआ करैला केला करमकल्ला कच्चू, तुरई मुरई, मूली मटर, पपीता, रामतरोई, नेनवां, गोवी गाजर अरवी, करैलेकी कलौंजी, कच-

नारकी कलियोंका रायता, आलू और आमका अचार, अचार चटनी, चटपटी चटनी, आम आमलेका मुरब्बा, जलजीरा। कानकुब्जोंकी कढ़ी करायल, पपची पान।

कच्ची.

चावल दाल, रोटी पूरी, खीर ख़ोर, खीरपूरी, खीरमहेरी, निमेना, खिचड़ीके चारों यार—घी दही पापड़ अचार, वरी तिलौरी फुलौरी पकौरी, तरींवरीं, रसखीर, दालफलका।

पक्की.

पूरी कचौरी, पूरी परामठा, पूरी तरकारी, दिलखुशहाल सुहाल, रबड़ी बसौंधी, लड्डू पेड़ा, मोहनभोग मालपूआ, सोहनहलुआ, समोसा, बुंदियादाना, परवललत्ती, गुपचुप, वादामकी वर्फी, कलाकन्द, खाजा खुरमा, गुलगुला, वड़ा पापड़, मटरकी छीमी, वालाई मलाई, इमरिती इन्दरसा, गुलावजामन जलेवी, गुटेटा, उलटा चीला, मोतीचूर मगदल, मेवामिटाई, दूध दही, मक्खन मिसरी, नवनीत, मिष्टान्न, पक्कान, शाकान्न, चव्य चोष्य, लेह्य पेय पदार्थोंके सिवा मीठेसीठे, खट्टे चरपरे, कड़वेकसैले, तीते, सारांश यह कि षटरसकी स्वादिष्ट सामग्री संगृहीत थी।

फल.

फलाहारियोंके लिये फलमूल, सेव नासपाती, अंगूर अनार, अंजीर अखरोट, अमरूद अनन्नास, आम जामन, केले नारियल, शहतूत, खिन्नी, आमइमली, नीबूनारङ्गी, कटहल बड़हल, कमरख कमलगट्टे, सीताफल शरीफे, श्रीफल वेल, चिरौंजी, किसमिस

पिस्ते, मुनक्के, बादाम बिहीदाने, खीरे ककरी, तरबूज और खर-बूजे भी खरीदे गये थे।

मुसलमानोंके लिये बावर्चियोंके बनाये कलिया कबाब, कलिया पुलाव, कोफता कोर्म्मा, शीरमाल जरदा बिरियानी, केक बिसकिट, चा चीनी, मुर्गमुतंजन वगैरह खाने अलग दस्तरखानपर चुने गये थे।

जिसे जुरता नहीं वह बेचारा बापुरा गरीब दालदलिया, सागसत्तू, चनाचबेना, रूखासूखा, मोटाझोंटा, मोटा महीन, पत्र पुष्प लेकर ही समधीका सत्कार करता है।

खानाखाने, भोजनकरने, भक्षणकरने, भकोसने और भखने-पर हाथमुंह धो, कुल्ला कर, खरके-तिनकेसे दांत खोद कोई पान-सुपारी, लौंग लायची, सुरती जरदा तम्बाकू खाता हैं और कोई चिलम तमाकू, टिकिया तमाकू, हुक्का गड़गड़ा, चुरुट बीड़ी सिगरेट पीता है। नये शौकीन ताम्बूलविहार और जीनतान-पर टूटते हैं। मतलब यह कि बन्दोबस्त बड़ा बढ़िया था। जिसने जो मांगा, वही मिला।

इसके बाद बरात बिदा हुई। बरतन बासन, बासनकूसन, असनबसन, जामाजोड़ा, लहंगालुगरा, ओढ़नाबिछौना, तोशक तकिया, गहनागुरिया, गहनागांठी, रुपयेपैसे, जहेज, दानदहेज दमादको दस्तूरसे ज्यादा दिये गये थे। नगदनारायणमें भी न्यूनता न थी। जिन लोगोंमें लेनदेनकी—ठहरौनीकी रीत है उनमें बड़ा झगड़ाझंटा, झगड़ा बखेड़ा होता है पर यहां चींचपड़,

गड़बड़शड़बड़के बिना हंसीखुशी मामला मिटा। विदाके वक्त स्त्रियोंका मिलनाजुलना, मिलना भेंटना, लिपटना रोनाधोना देखकर पत्थर भी पसीजता था। जनाब, बेटीकी बिदा है या दिल्लगी? दुष्यन्तके दरबारमें शकुन्तलाको भेजते समय कानन-वासी कठोर कण्वका भी कलेजा कांप गया था। यह हमारा तुम्हारा नहीं कवियोंके कुलगुरु कालिदासका कथन है। खैर, बहूकी विदा ले बरात बस्तीके बाहर हुई। गौनेरौनेकी रस्म भी पूरी कर दी गयी। जैसे गयी थी वैसे ही कुशल मङ्गल बरात घर वापिस आयी। बहूके निरीछन परीछन हो जानेके बाद बेटेबहू या वरवधुका गृहप्रवेश हुआ। पांवपड़ाई और मुंहदिखाई हुई। सास ससुर, देवरानी जिठानी, नन्दनन्दोईसे नया नेह नाता लगा। ससुरालमें साली सलहज, सालासाली और साढ़ूका सम्बन्ध स्वयंसिद्ध हो जाता है।

यहांतक तो अनुप्रासके अन्वेषणमें कृतकार्य्य हुआ। आगे कौन कह सकता है कि क्या होगा। पर मैं पीछे पैर देनेवाला नहीं। धैर्य्य धारण कर दिन दूने रात चौगुने साहस और उत्साहसे हाटबाट, घरघाट, नदीनाले, जङ्गल झाड़ी, वन पर्व्वतकी कौन कहे देश विदेश और सात समुद्र पार जाकर द्वीपद्वीपान्तरोंमे दिनदोपहर, दिनदहाड़े, रातबिरात बेरोकटोक विचरण करूंगा और मौका मिलते ही अनुप्रासकी खुश-खबरी, शुभसमाचार सबको सुनाऊंगा। अभी तो गृहस्थाश्रम ग्रहण कर दारपरिग्रह ही हुआ है। उसके सुखसम्भोग, सुख-

शान्ति, सन्तानसुख, रागरंग और दुःखदारिद्र, शोकसन्ताप, कलह क्लेश, हर्षविषाद तथा जञ्जालका जिक्र ही नहीं आया है। गृहस्थको सब ही भोग भोगने पड़ते हैं। यह देहका दण्ड है। लीलामयकी लीला अपरम्पार है। वह तिलको ताड़ और पर्व्वतको राई कर सकता है। भूतनाथ भगवान भवानीपति अलबेले भोलानाथका ही भारी भरोसा है कि वह भलीभांति भला करेंगे।



परिशिष्ट

# अनुप्रास-अन्वेषणपर कुछ चुनी हुई

## सम्मतियां ।



पञ्चम हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति *सुकवि श्रीमान् पं० श्रीधर पाठक* लिखते हैं :—

"आपका अनुप्रास–अन्वेषण अवलोकनकर अपने रामको अमित आनन्द अनुभव हुआ। उसके अर्थ अनेकोंवार अह्लाद-वाद आयोजित है। आपकी अप्रयास अनुप्रास-आचार्य्यतामें अप्रतिम प्रतिभाका आभास और अतुल आमोदका आवास है।"

इतिहास वेत्ता जोपुधर निवासी *श्रीयुत मुनशी देवीप्रसादजी* लिखते हैं—

"यह पुस्तक विद्वद्वर पंडित जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदीकी वनायी है। इसका विपय जो अनुप्रासका अन्वेपण है नामसे ही जाना जाता है जो स्वयं अनुप्रासमय है।

पंडितजीने हिन्दी वोलचालके अनुप्रास ही इसमें संग्रह नहीं किये हैं वरन् इवारत लिखनेमें भी अनुप्रासका अपूर्व्व आवेश उत्पन्न किया है जैसे आप भूमिकामें लिखते हैं कि "उन्हींकी प्रेम

पूर्ण प्रेरणा और परामर्शसे इसका पूर्व्वार्द्ध ही पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका प्रयासी होता हूं, पूर्ण आशा है कि प्रेमी पाठक भी पढ़कर प्रसन्नता प्राप्त करेंगे।"

पंडितजीका यह परिश्रम परम प्रशंसाका पात्र है और अनुप्रास-अन्वेषण हिन्दी साहित्यके सदनमें असाधारण और अद्वितीय दीपक है। और आशा है कि इसका दूसरा भाग भी शीघ्र ही भाषाभांडारमें भासमान होगा।

अनुप्रास हरेक भाषामें होता है और वह बोलनेवालेके लाये विना स्वयं आ जाता है और खेंचतान करके भी लाया जाता है जैसे आपहीने हमारी हिन्दी भाषाकी विचारी सीधी सादी कहावत "प्रेम पंथका पेंड़ा ही न्यारा" को संस्कृतके सांचेमें ढाल कर "प्रेमका पंथ ही पृथक् है" वना लिया है। परन्तु लाया हुआ अनुप्रास कभी कभी अटपटा भी लगता है। दोनोंके द्रष्टान्त इसी पुस्तकमें देखे जाते हैं। लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। सुघड़ कवि और सुलेखक जो अनुप्रास लाते हैं वे वहुधा सुन्दर और सुहावने होते हैं।

मारवाड़ी साहित्यमें अनुप्रासका नाम वेणसगाई है जिसे संस्कृतवाले वर्ण मैत्री भी कहते हैं। मारवाड़ी कविता वेणसगाई विना सलोनी नहीं समझी जाती है और तो क्या एक एक दोहे और सोरठेमें चार चार वेण सगाई होती है जैसे—

*"सोनो घडे सुनार, कंदोई खाजा करे।*
*जीमे जीमनहार, करम परवाणो किसनिया॥*

अकब्बर समंद अथाह, सूरापन भरियो सजल ।
मेवाड़ो तिणमांह पोयणफूल प्रतापसी ॥

छलवलिया घोड़ा भलो,
अलबलिया असवार ।
मजलसिया मारू भला,
नारी नखरादार ॥

इत्यादि ।

मारवाड़ी ग्रन्थकर्त्ता भी अपने ग्रन्थोंके नाम बहुधा वेण-सगाईके रखते हैं जैसे वंसभास्कर, राजरूपक, सभासिंगार, वीरविनोद, सरदार सुजस, विजय विलास, वनेवाग्नी, वीरविरदावली, आदि ।

मेरे भी कई ग्रन्थोंके ऐसे ही नाम हैं जैसे—रूठी रानी, सरदार सुख समाचार, महिला मृदुवाणी, राज रसनामृत नारी नवरत्न, विद्यार्थी विनोद, बहराम बहरोज, सदोपदेश शतक, चारणचमत्कार, भट्टभास्कर, युवतीयोग्यता, कवि कुसुममाला वगैरा"

बनारसके लंडन मिसनके रेवरेंड एडविन ग्रीव्स लिखते हैं—"अनुप्रासका अन्वेषण बड़ा मनोरञ्जक है। मेरा अनुमान है कि अधिकांश भाषाएं अनुप्रासकी आकर्षण शक्तिसे काम लेती हैं परन्तु हिन्दीने तो इस काममें साफ बाजी मार ली है।"

सन १९१६ ई० के अगस्तका "माडर्न रिविउ" कहता है—

"यह निवन्ध छठे हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें पढ़ा गया था। वहुतेरे बंगालियोंकी धारणा है कि अन्य भाषाओंकी अपेक्षा बंगलामें अनुप्रासकी अधिकता है। निवन्ध लेखकने इस धारणाको भ्रान्तिपूर्ण वतानेका प्रयत्न किया है। इसमें यह दिखाया गया है कि हिन्दी इस विषयमें बहुत बढ़ी चढ़ी है। संस्कृत और हिन्दी कविताओंके सिवा हिन्दी भाषाके प्रत्येक विभागके साधारण महावरे उदाहरण स्वरूप दिये गये हैं। लेखकने निस्सन्देह अपने प्रयत्नमें पूरी सफलता पायी है।

## शिक्षा.

( ता० ७ अगस्त सन १९१६ ई० । )

यह पुस्तक बड़ी मनोहर और अच्छी है। चतुर्वेदीजीने इसके लिखनेमें बड़ा परिश्रम किया है। कहानीके ढंगपर सिलसिलेवार अनुप्रासमय शब्द लिखे गये हैं जो प्रति दिनके बोल चालमें व्यवहृत होते हैं। हिन्दी भाषामें ऐसी पुस्तक आजतक एक भी नहीं प्रकाशित हुई थी। यह इस योग्य है कि प्रत्येक हिन्दी रसिक इसका आदर करें। नये हिन्दी लेखक इसकी सहायतासे मुहावरेदार अनुप्रास लिखना सीख सकते हैं।

## हिन्दी समाचार.

( चैत्र वदी ९ स० १९७२ । )

लेखकने हिन्दी भाषाकी मधुरताका वर्णन जिस खूबीसे किया है वह उन्हींका हिस्सा है। आपने इस छोटेसे आकारकी

पुस्तकमें भलीभांति प्रमाणित कर दिया है कि हिन्दी भाषा भी कितनी ललित हो सकती है। अपने स्वभावानुसार इस पुस्तकमें भी हास्यरसकी अच्छी छटा दिखायी हैं।

## सद्धर्म्म प्रचारक.

( वै० व० ११ स० १९७३। )

इस छोटीसी पुस्तिकामें दिखाया गया है कि आर्य्य भाषामें अनुप्रासोंके प्रवेशके लिये पर्य्याप्त स्थान है। हर प्रकारके शब्दोंके नमूने देकर उनमें अनुप्रास दिखाया गया है। साहित्यकी दृष्टिसे पुस्तिका महत्वकी है। कई अनुप्रास प्रचलित हैं। कई ग्रन्थ-कर्त्ताके उपजाऊ दिमागसे निकले हैं। सारांश यह कि सब प्रकारसे आर्य्य भाषाको अनुप्रास योग्य सिद्ध कर दिया गया है।

## मिथिला मिहिर

( ता० १५-४-१६। )

हिन्दीमें अनुप्रासका कैसा और कितना व्यवहार होता है इसीको इस पुस्तिकामें भलीभांति दिखलाया है। इसके पढ़नेसे मनोरंजनके साथ ही हिन्दी साहित्यके शब्द विन्यास तथा रचना प्रणालीका भी परिचय मिलता है। पुस्तक सबके लिये उपादेय है। खासकर हिन्दीके नये शौकीनोंके लिये तो यह बड़े कामकी चीज है।

---

मेरी व्याख्यान-माला, संख्या २

*"It is of no use to cultivate a worthy manner unless one have worthy matter."*

*—Wise saying*

# लेखन-कला

सत्यदेव

# लेखन-कला

## ( प्रथम भाग )

लेखक और प्रकाशक

**स्वामी सत्यदेव परिव्राजक**

रचयिता

"शिक्षा का आदर्श", "कैलाश-यात्रा", "अमरीका-भ्रमण",
"मनुष्य के अधिकार", "आश्चर्य्यजनक-घंटी",
"राजर्षि-भीष्म", "सत्य-निबन्धावली",
"अमरीका-दिग्दर्शन", इत्यादि।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० के प्रबन्ध से 'सुदर्शन प्रेस',
प्रयाग में मुद्रित।

सं० १९७३



प्रथम वार २००० | यह पुस्तक, सत्य-ग्रन्थ-माला आफिस, प्रयाग, से मिल सकती है। | मूल्य नौ आने

# पुस्तक-परिचय

इस पुस्तक को मैं इस स्वरूप में पाठकों के सन्मुख रख सका हूं, इसका मुझे स्वयं आश्चर्य्य है। "लेखन-कला" शीर्षक व्याख्यान मैंने लखनऊ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर दिया था। बाद में उसको कुछ बढ़ा कर "शिक्षा का आदर्श" पुस्तक के पहले संस्करण में सम्मिलित कर दिया था। जब "आदर्श" का पहला संस्करण खतम हो चुका तो उसको छपवाना आवश्यक हुआ। विचार किया कि "लेखन-कला" को अलग ट्रैक्ट के रूप में एक हज़ार प्रति छाप कर रख लिया जाय। मेरी अनुपस्थिति में प्रेसमेन ने भूल से पहले फार्म को दो हज़ार छाप दिया; तब "दो हज़ार" की लाज रखने के लिए मैंने लेखन-कला संबंधी कुछ नियमों का इसमें सम्मिलित करना भी उचित समझा। उसी के अनुसार टाइटल भी पहले से ही छपवा दिया। जब पुस्तक के तीन चार फार्म छप चुके तो मुझे इसमें मजा आने लगा। विचार किया कि जहां तक टाइटल महाशय आज्ञा देते हैं उसके मुताबिक तो किताब में अच्छी अच्छी चीज़ें भर देनी चाहियें; बाद में देखी जायगी। चलते चलाते बड़ी मुश्किल से निबन्ध-भेद तक पहुंचे, उसमें भी तार्किक-निबन्ध रह ही गया। कुछ ख़ास नियम लेखन-शैली के अवश्य देने थे, उन बेचारों के लिए भी किसी प्रकार से स्थान निकाला। जब देखा कि अब गुंजाइश बिलकुल ही नहीं रही तो सब सामग्री को प्रथम-भाग का रूप देकर पुस्तक की पूर्ति कर दी है।

यह, थोड़े शब्दों में, इस पुस्तक का परिचय है। मैंने (व्याख्यान को छोड़ कर) इसे अमरीका की प्रसिद्ध युनिवर्सिटी

आव् शिकागो के विद्वान अध्यापकों की पुस्तकों के सहारे पर लिखा है। जब मैं उस युनिवर्सिटी में पढा करता था तभी से मेरी इच्छा "लेखन-कला" के विषय पर एक पुस्तक हिन्दी में लिखने की थी। आज मैं अपनी उस अभिलाषा का फल-स्वरूप अपने प्रेमियों के सम्मुख धरता हूं।

मुझे इस पुस्तक के लिखने में अंग्रेज़ी शब्दों का यथार्थ भाव प्रगट करने वाले हिन्दी शब्दों की खोज करने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी है। मैंने प्रसिद्ध मरहटी विद्वान वामन आपटे की डिक्शनरी से सहायता ली है। मैं चाहता हूं कि हिन्दी भाषा के अन्य विद्वान मेरी पुस्तक में जहां जहां कोई त्रुटि देखें, कोई उपयुक्त शब्द कहीं धरना चाहें, अथवा इसमें कुछ और सामग्री की जरूरत समझते हों तो वे कृपा कर मुझे उसकी सूचना अवश्य दें। मैं उन त्रुटियों को दूसरे संस्करण में सुधारने का यत्न करूंगा, अथवा द्वितीय भाग में उन आवश्यक विषयों को सम्मिलित कर दूंगा।

मेरी इस पुस्तक को सत्य-ग्रन्थ-माला के प्रेमी कहां तक पसन्द करेंगे, यह मैं कह नहीं सकता। मुझे पूर्ण आशा है कि वे मुझे पत्र-द्वारा अपनी सम्मति लिख भेजेंगे। मैंने इस पुस्तक का दाम काग़ज़ की महँगी के करण अधिक रखा है। काग़ज़ सस्ता होने पर दाम भी कम कर दिया जायगा।

मेरा विश्वास है कि, जिस प्रकार मेरी अन्य पुस्तकों ने देश-सेवा कर मेरे चित्त को प्रसन्न किया है, इसी प्रकार यह भी हिन्दी-साहित्य की सेवा कर मेरे उद्योग को सफल करेगी। मेरा उद्देश्य देश में शुद्ध, निर्मल, देशभक्ति-रसपूर्ण साहित्य का प्रचार करना है; इसी से भारत-राष्ट्र का उत्थान होगा।

उस परमब्रह्म की भी यही आज्ञा है।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष, १९७२

प्रार्थी—

**सत्यदेव परिव्राजक**

# विषय-सूची

---

८-सत्य-निबन्धावली—तीन हज़ार छप चुकी है। दाम आठ आने।

९-कैलाश-यात्रा—चार हज़ार छपी है। दाम आठ आने।

१०-शिक्षा का आदर्श—चार हज़ार छपा है। दाम पांच आने। द्वितीयावृत्ति।

११-लेखन-कला—नई पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। दाम नौ आने।

१२-हिन्दी का सन्देश—ग्यारह हज़ार छपा है। दाम एक आना। चतुर्थावृत्ति।

१३-जातीय-शिक्षा—दस हज़ार छप चुकी है। दाम एक आना। तृतीयावृत्ति।

१४-राष्ट्रीय-संध्या—सत्रह हज़ार छप चुकी है। दाम दो पैसे। तृतीयावृत्ति।

ये चौदह पुस्तकें स्वामी जी की रचित हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी रामतीर्थ जी का "राष्ट्रीय-सन्देश" भी हमारे यहाँ मिलता है। कृपा कर इन पुस्तकों का प्रचार कर जननी जन्म-भूमि की सेवा कीजिए।

निवेदक—

मैनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

प्रेम स्मृति

प्रसिद्ध साहित्य-सेवी
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
के स्तम्भ-स्वरूप
**श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी टण्डन**
को मेरा प्रेमोपहार

—ग्रन्थकर्ता

# मेरी व्याख्यान-माला

## द्वितीय पुष्प

## लेखन-कला ।*

Force of language can come only from force of character. Clean writing can come only out of clean thinking and, in a measure, clean living

—A. G Newcomer.

( १ )

यों तो प्रत्येक व्यक्ति जो अपने या दूसरे के विचारों को शुद्ध भाषा में लिख सके लेखक कहला सकता है और 'लेखक' 'सुलेखक' आम बोल चाल की भाषा में व्यवहृत होते ही हैं परन्तु साहित्य की परिभाषा में 'लेखक' तथा 'लेखन-कला' के अर्थ बड़े गम्भीर हैं; उनकी व्यापकता ही निराली है; उनका आशय ही कुछ और है। मातृ-भाषा के इस जागृति के काल में जबकि, राष्ट्र-निर्माण आरम्भ हुआ है, इस विषय पर विचार करने की परमावश्यकता है। इस समय नये नये लेखक पवित्र

*यह व्याख्यान पञ्चम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर लखनऊ में दिया गया था।

भावों से उत्साहित होकर मातृ-भाषा की सेवा पर आरूढ़ हुए हैं, आवश्यकता है, कि वे अपने कर्तव्य को समझें। उनको मालूम होना चाहिये कि साहित्य की रङ्गभूमि मे उतरने के लिये क्या क्या योग्यताएं दरकार है। न केवल यह बल्कि उन्हे साहित्य का उच्च आदर्श मालूम होना चाहिये तथा साहित्य-सेवी की भारी ज़िम्मेदारी को समझना ज़रूरी है । मातृभाषा की सेवा तथा अपने प्यारे नवयुवक लेखको से नम्र निवेदन करन के लिये मैंने इस विषय पर कुछ कथन करने का साहस किया है। आशा है कि, साहित्य प्रेमी सज्जन मेरे इस निवेदन को ध्यान से सुनेंगे।

सब से प्रथम 'भाषा' इस शब्द का अर्थ जान लेना ज़रूरी है क्योंकि, प्रायः लोग जहां थोड़ी वाक्य रचना सीख जाते हैं, अपनी गणना लेखको में करने लगते है। वे नही जानते कि, भाषा केवल साधन मात्र है। परस्पर एक दूसरे के सम्मुख अपने विचार प्रकट करने का जो साधन है वह भाषा है; चाहे उसका उपयोग वाणी द्वारा किया जाय, चाहे लेखनी द्वारा। 'भाषा' साधन है, उद्देश्य नहीं। जैसे धन साधन है धर्म करने का, परन्तु धन उद्देश्य नहीं। किसी के पास बहुत सा धन है पर वह उससे धर्म नहीं करता; उसके पास धन का होना निरर्थक है। वह धन से मनोरञ्जन करता है, नये नये नाच देखता है; लोगों को नाच के तमाशे दिखाता है इससे वह धार्मिक नही हो सकता। उसका धन उसके तथा समाज के लिये फ़जूल है, वह हानिकर है। इसी प्रकार 'भाषा' का ज्ञान मनुष्य को लेखक नही बना देता। वह भले ही उसमें चन्द्रकान्ता जैसी रद्दी तथा रात-कहानी जैसी भ्रमोत्पादक पुस्तकें रच लें, वह उसके द्वारा दूसरों को बड़ी बड़ी कहानियां ही क्यों न सुना सके, परन्तु जब तक 'भाषा'

अपने उद्देश्य को पूरा नही करती उसका ज्ञान कभी भी व्यक्ति को लेखक नहीं बना सकता।

अच्छा तो 'भाषा' का उद्देश्य क्या है ?

जैसे धन का एक उपयोग जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करना है वैसे ही उसका मुख्य उद्देश्य परोपकार है–अर्थात् अपने अन्य बन्धुओं की सेवा करना है। इसी प्रकार भाषा का एक उपयोग आपस की बोल चाल, एक दूसरे को बात समझा लेना है, पर इसका मुख्य उद्देश्य उच्च भावों को अपने भाइयों के सामने रखना अर्थात् उनको उन्नत पथ पर ले जाने के लिये नया सन्देशा, नया उत्साह, नयी सामग्री, नया आदर्श पेश करना है। यों तो कहा जाता है, "there is nothing new under the sun" अर्थात् 'सूर्य्यमण्डल में कोई बात नयी नहीं है' पर यह केवल कथन मात्र है। विद्या के विकाश से प्रकृति के नये नये रूप प्रकट होते रहते हैं। नित्य लाखों बच्चे पैदा होते हैं पर एक से एक नही मिलता, यों कहने को उनमें कोई नयी बात नहीं। तात्पर्य्य यह है कि 'भाषा' का उद्देश्य समाज का सुधार, उसको उन्नति के पथ पर ले जाना है। यदि कोई भाषा का पण्डित इस उद्देश्य का पालन नही करता तो वह कदापि भी लेखक कहलाने का अधिकारी नहीं।

हिन्दी संसार में इस समय चार प्रकार के लेखक दिखाई देते हैं। एक तो वे जो सचमुच साहित्य की परिभाषा में लेखक हैं, जिनके तन को देश सेवा की धुन लगी हुई है, जो अपने देश बन्धुओं की हीनावस्था पर अश्रुपात करते हैं; जो देशोत्थान के पवित्र कार्य्य के हित परिश्रम कर पुस्तकें रचते हैं। ऐसे महानुभावों के विषय मे मैं आगे चल कर कुछ कहूंगा।

दूसरे वे महाशय हैं जो धन कमाने के लिये लिखते हैं। हालांकि हिन्दी पुस्तकों से संसार में अभी अङ्गरेज़ी की भांति आमदनी नहीं है, पर तो भी क्या, 'भागते भूत की लंगोटी ही सही !' कुछ मिलना चाहिये। चालीस, पचास, सौ, जो कुछ एक छः फार्म की पुस्तक से मिले, इन्हें तो रुपये से काम है। रुपये दे दो, पुस्तकें लिखवा लो। ये लोग पुस्तकें लिखने की मशीनें हैं। अपने दिमाग़ से न लिखेंगे तो संग्रह ही कर देंगे और पुस्तक पर बड़े अभिमान से छापेंगे,—'संग्रहकर्त्ता'—क्योंकि, उनको तो रुपये से मतलब है। भला यदि संग्रह भी न हो सके, क्योंकि उसमें भी तो परिश्रम लगता है, तो फिर किसी उल्लूबसन्त भोलेभाले पण्डित को बीस तीस रुपये मासिक देकर नौकर रख लिया। अब धड़ाधड़ पुस्तकें निकल रही हैं। भोले पण्डित लिख लिख कर पुस्तकें तैयार कर रहे हैं और मशीन का स्वामी उन पुस्तकों को अपने नाम पर दूसरों के हाथ चौगुने, पचगुने, दशगुने नफ़े पर बेच रहा है। धन भी मिला और प्रसिद्धि भी। अब आप की साहित्य-सेवियों में गणना होने लगी और वर्ष भर में सब से अधिक पुस्तकें इनके नाम की निकल रही हैं।

इसी श्रेणी में और ऐसे ही 'लेखकों' के छुटभैय्या धन-लोलुप और भी निकले। उन्होंने मित्रता अथवा साहित्य-सेवा के बहाने दूसरों की लिखी पुस्तकें अपने नाम से छपवा लीं और लिखने वालों को एक पैसा भी पुरस्कार का न देकर थोथा निष्काम कर्म का उपदेश सुना उसकी मेहनत आप डकार गये ! यदि इससे भी पेट न भरा तो एक छोटा मोटा छापाखाना खोल 'साहित्य-सेवा' के विज्ञापन बांट—"हम लेखकों को पुरस्कार देते हैं" ऐसा जाल फैला नये पुराने लेखकों को फांसना आरम्भ किया। अब क्या होने लगा ?

दूसरों की लिखी हुई पुस्तकें इनके यहां आती हैं। ये महाशय उसे अपने यहां रख कर उसकी नकल करवा लेते हैं और दो चार सप्ताह बाद लेखक को उसका हस्तलेख Manuscript- "दुःख है हमें आप की पुस्तक पसन्द नहीं आयी"-लिख कर लौटा देते है। पांच चार महीने बाद उसी पुस्तक में इधर उधर काट छांट कर, नया नाम देकर, अपने नाम से छपवा लेते हैं। 'न हींग लगे न फिटकरी' मुफ्त में पैसे कमाना और साहित्य-सेवियों के लिस्ट में सब से पहले नाम लिखाना, यह काम इन लोगों का है। हिन्दी संसार में एक नहीं कई ऐसे नामधारी लेखक हैं जो किसी विषय पर बीस सतरें भी ठीक ठीक न लिख सकें पर जिनके नाम की पुस्तकें छप रही हैं और वे उनसे फायदा उठा रहे हैं।

तीसरे प्रकार के लेखक वे हैं जो दूसरों को बदनाम करने अथवा हँसी मज़ाक के लिये लेख लिखते है। उनके हृदय द्वेष से कलुषित हैं। वे बी० ए० है, एम० ए० हैं; सब प्रकार से योग्य हैं; लिख सकते हैं, पर उनके मन की प्रवृत्ति दूसरों की निन्दा, दूसरों को नीचा दिखाने की ओर लगी रहती है। वे भाषा के पण्डित हैं, शब्द विन्यास खूब जानते हैं; बुद्धि भी कुशाग्र है पर उनकी योग्यता उनकी बुद्धि साहित्य-क्षेत्र में मल्ल युद्ध करने में व्यय होती है। वे अपने पैने बाणों से दूसरों को घायल कर अति प्रसन्न होते हैं और अपने आप को साहित्य का सूर्य्य समझते हैं। ऐसे मनुष्य भयानक हैं। वे देश और समाज के शत्रु हैं। 'भाषा' के साधन का दुरुपयोग कर वे समाज में कुरुचि उत्पन्न कर सकते हैं, समाज में द्वेषाग्नि भड़का सकते हैं, परोपकारी साहित्य से लोगों को कुछ काल के लिये वञ्चित रख सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों से साहित्य को बचाना चाहिये।

चौथे प्रकार के लेखक वे हैं जो केवल नाम के भूखे हैं। किसी पुस्तक पर उनका नाम छपना चाहिये बस यही उनकी कामना है। इसके लिये वे धन खर्च करते हैं; बड़े बड़े विद्वानों से पुस्तकें लिखवा कर अपने नाम से छपवाते हैं। प्रायः राजा महाराजा लोग ऐसा करते है। यह भी अनुचित है। पुस्तक लिखने वाले के नाम से छपनी चाहिये ताकि उसकी विद्वत्ता, उसकी प्रतिभा का प्रकाश चारों ओर फैले। विद्वत्ता प्रतिभा दैवी शक्ति है, इनका क्रय विक्रय नहीं हो सकता। इसके आर्थिक लाभों को कोई भले ही बेच दे पर उस सार वस्तु पर अधिकार देश अथवा समाज का है। पुस्तक के उपदेशों, उसके गुण दोषों का, उसके लेखक के साथ गहरा सम्बन्ध है। पुस्तक की उपयोगिता को चिर-स्थायी करने के लिये, उसे भावी सन्तानों के लिये पथ-प्रदर्शक बनाने के लिये यह आवश्यक है कि पुस्तक के असली लेखक का नाम उस पर रहे। धन देने वाले किसी दूसरे तरीक़े से यश कमा सकते है। झूठ मूठ के लेखक बनने तथा धन देकर प्रतिभा खरीदने का यत्न करने से वे प्रतिभावान् नहीं बन सकते।

इन चार प्रकार के लेखकों का वर्णन करने के बाद अब हम कुछ अधिक इस विषय की मीमांसा करते है।

( २ )

अब हम सबसे पहले साहित्य का गला घोटने वाले उन 'लेखकों' के दोष दिखलाते हैं जो केवल पैसा बटोरने के लिये कागज काले करते है। ऐसे लोगों में सब से पहला नम्बर उन धूर्तों का है जो गन्दे और अश्लील ग्रन्थ लिख कर अपने पाठकों का चरित्र बिगाड़ते है। इनके लिखे हुए उपन्यासों से

सैकड़ों हज़ारों नवयुवकों के जीवन भ्रष्ट हो गये, पर क्या मजाल इन देश-शत्रुओं की लेखनी थम जाय । इनकी जाने बला ! इनको न देश से काम है न जाति से, इनका ईश्वर तो पैसा है। पैसा दे दो जो चाहे लिखवा लो। "गन्दी से गन्दी अङ्गरेजी पुस्तक का अनुवाद करते ये न चूकेंगे, यदि उससे कुछ प्राप्ति है। जानते हैं कि, रेनल्ड्स के उपन्यासों से भारतीय युवकों के चरित्र बिगड़ेंगे पर इनको क्या ! वे बिकते तो हैं। इनको बिक्री से मतलब है । उनका हिन्दी अनुवाद करायेंगे, बडे बड़े विज्ञापन छपवा कर बटवायेंगे और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों पर स्वयं जाकर उन अश्लील पुस्तको के विज्ञापन बाटेंगे ! भला इस निर्लज्जता की भी कोई सीमा है। इसका कारण यह है कि, हिन्दी संसार में कोई 'पबलिक ओपिनियन' नहीं है। यहां अधिक पत्रो के सम्पादक खुशामद पसन्द और कायर हैं। रद्दी से रद्दी पुस्तक निकल जाय वह भी इनके विचार में "सग्रह करने योग्य" है। कोई ऐसा नहीं है जो गन्दी और अश्लील पुस्तकों के लेखकों के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज उठावे और हिन्दी-साहित्य पर पड़े हुए कीचड़ को धो डाले । देश का क़ानून भी विचित्र है। गन्दी सड़ी शाक तरकारी बेचने वाले को म्यूनिसिपालिटी दण्डनीय समझती हैं; चर्बी मिला हुआ घी बेचने वाला सजा पाता है; पर वह दुष्ट जो भाषा जैसे पवित्र साधन को अपवित्र बनाता है, जो साहित्य जैसी राष्ट्रीय-शक्ति को कमज़ोर करने का उद्योग करता है, विना किसी रोक टोक के अपनी गन्दी पुस्तकों का व्यापार कर सकता है। गवर्नमेण्ट चोर को सजा देती है पर जिनकी पुस्तके 'ऐयारी' और 'कुमकुमे-बाज़ी' सिखला कर चोर बनाती हैं उनको कोई भी अपराधी नही ठहराता। वे धन बटोर कर इस योग्य बन जाते हैं कि

साहित्य-सेवियों में उनकी गणना होने लगती है। अजब ज़माना है!

सोचने की बात है, कि उस मनुष्य को लेखनी उठाने का क्या अधिकार है जिसके पास श्रेष्ठ विचार नहीं है। एक व्यक्ति का दिमाग़ ख़राब ( Deseased brain ) है, हम समझ सकते हैं, उनके साथ हमारी सहानुभूति है। किन्तु वह आदमी महा नीच है जो अपनी बीमारी द्वारा धन पैदा करता है, जो अपनी बीमारी के कीड़ों को पुस्तक रूपी साधन बना अपने अन्य भाइयों तक पहुंचाता है। भाषा, शुद्ध साहित्य तथा पवित्र भाव प्रचार करने के लिये है, भाषा मानसिक व्याधियों का इलाज करने के लिये है; भाषा समाज में उन्नत विचार फैलाने के लिये है; इसलिये गन्दी और अश्लील पुस्तकों के रचने वाले अपनी भाषा के शत्रु हैं। वे कदापि लेखक नहीं कहला सकते। वे केवल अपने बुरे ख़यालात का ताना बाना बुन सकते हैं।

पिछले दस वर्षों में राष्ट्रीय उत्थान के विचार देश में फैलने से शिक्षा की चर्चा अधिक होने लगी है। हिन्दी समाचार पत्रों तथा पुस्तकों के पढ़ने वालों की संख्या खूब बढ़ी है। जागृति होने के कारण देश भक्त सज्जन अपने धन को मातृभाषा की सेवा में लगाने पर कटिबद्ध हुए हैं। हिन्दी की पुस्तकें बिकने लगी हैं। ऐसे अवसर पर बहुत से स्वार्थी लोगों ने अपना अपना उल्लू सीधा करना शुरू किया है। पुस्तकें लिखना उनका पेशा है। वे चालीस पचास रुपये लेंगे और डबल क्राउन सोलह पेजी एक सौ पृष्ठ की पुस्तक झट से गढ़ देंगे। ये लेखक नहीं हैं बल्कि पुस्तक गढ़ने की मशीनें हैं। ऐसे लोगों की पुस्तकें पढ़ने से मानसिक विचारों की दद मालूम हो जाती है। इनके शब्दों में बल नहीं, उनमें

जीवन नहीं। पढ़ने वाला ऐसी पुस्तकों से कुछ लाभ नहीं उठा सकता; उस पर पुस्तक का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि जब लिखने वाला बिना उद्देश्य के लिखता है, वह केवल टका बटोरने के लिये लिखता है तो उसके वाक्यों का प्रभाव कैसे पड़ सकता है? असम्भव है। पुस्तक पढ़ने से मालूम हो जाता है कि लेखक का हृदय पुस्तक में नहीं है। उसके विचार अधकचरे तथा नीरस होते हैं। वह स्थान स्थान पर उपदेशक, सुधारक, नेता बनने का यत्न करता है, वह शब्द-जञाल से अपने पापी, थोथे विचारों को छिपाता है पर उसका मुलम्मा कुछ काम नहीं देता। वह पाठको को धोखा देकर बड़े लेखकों की नकल करता है पर नकल असल नहीं हो सकता। यदि पाठक को कुछ भी परख है तो वह फौरन उस मायावी लेखक के कपट जाल को पहचान लेता है और उस कोरी बातो की पिटारी गढ़ी हुई पुस्तक को फक देता है।

ऐसे गढ़कू लेखकों से बचना चाहिये। एक अच्छी, मौलिक, जीवनप्रद पुस्तक पढ़ो पर कोरी, घन्टों में लिखी हुई, मशीनी सैकड़ों पुस्तकें मत पढ़ो। ऐसी पुस्तकें पढ़ना समय नष्ट करना है। जीवन के असूल्य समय को नकली लेखकों के चोचलों में मत खर्च करो।

यदि इन नकली लेखकों से कोई इनकी अपनी लिखी हुई पुस्तकों के विषय पूछे तो वे 'लिक्खाड़' स्वयं उनको नही जानते। कारण यह है कि इनकी पुस्तकों का अच्छा भाग दूसरों की पुस्तकों से नकल किया हुआ होता है। इनको लिखने की जल्दी होती है, इसलिये झोंक में नकल करते चले जाते हैं और बीच बीच में अनापशनाप अपनी लेखनी का नमूना भी जताते जाते हैं, ताकि पाठक उस पुस्तक को इनकी

रचित समझे। परिणाम यह होता है कि इनके हृदय की कालक से वे चुराये हुए 'मोती' भी स्याह हो जाते हैं और वह पुस्तक अपने भयावने रूप में प्रकाशित हो जाती है।

कुछ लेखक ऐसे है जिनके पास अपने घर का तो कुछ होता नहीं पर वे दूसरों से पुस्तके लिखवा कर सम्पादक के रूप में लेखक बनना चाहते हैं या "समालोचक' के परमपद को प्राप्त कर मोक्षलाभ की इच्छा रखते हैं। सौ में से पंचानवे ऐसे लेखकों की पुस्तकें 'फौर्थ क्लास' ढङ्ग की निकलती हैं। यह बात अलग है कि लम्बे लम्बे विज्ञापन देकर अपनी पुस्तकों को साहित्य-शिरोमणि ठहरा लिया जाय, या किसी प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक की मित्रता का नाजायज़ फायदा उठा कर उससे 'युगपरिवर्तन' का सार्टिफिकेट ले लिया जाय पर इन सब चालों से लेखक नहीं बना करते। सच बात तो यह है कि दूसरों के किये हुए परिश्रम से झूठ मूठ अपनी बड़ाई लूटने वाले व्यक्ति लेखक नहीं हो सकते। लेखक बनने के लिये कुछ तपस्या की आवश्यकता है।

( ३ )

कुछ लोगों ने लेखक बन कर ख्याति प्राप्त करने का एक नया और सहज मार्ग निकाला है। वह क्या? सुनिये। महर्षि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास, कविकुल शिरोमणि कालिदास आदि प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवियों के ग्रन्थों के अनोखे संस्करण छापने आरम्भ किये है और नाम रखते हैं,—बाल महाभारत, बाल रामायण, बाल कालिदास, बाल पुराण, बाल गीता। सुना आपने? अब कसर केवल बालोपनिषद, बाल ब्राह्मण, बालायुर्वेद, बाल धनुर्वेद, बाल ऋग्वेद, बाल यजुर्वेद, की रह गयी हैं। ये भी निकलेंगे। ईश्वर इन 'बालोपकारी लेखकों'

को चिरञ्जीव रखे ! जिस महाभारत को हम साहित्य समुद्र कह सकते हैं, जिसमें बालकों के लिये उपयुक्त सैकडों पुस्तकें निकल सकती है, उस महाभारत को मथ कर इन हमारे लेखकों ने 'बाल महाभारत' रच डाला। धन्य इनकी बुद्धि और धन्य इनका साहित्य प्रेम ! साहित्य के उन सूर्यों के दैवी प्रकाश से ये लोग भी प्रकाशित होना चाहते हैं, पर कहां राजा भोज और कहां कानड़ा तेली ! सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने के लिये भी अपनी कुछ सम्पत्ति चाहिये, अपना कुछ शरीर चाहिये। कुछ भी तो तुलना हो।

यदि कोई महाशय यह कहें कि कौरवों और पाण्डवों की कथा तथा महाभारत के युद्ध की कहानी को बालकोपयोगी भाषा में लिख कर हमने बालकों के लिये उपयोगी साहित्य की रचना की है, इसमें क्या बुराई की है? उत्तर मे हम यह कहते हैं कि उस छोटी सी कहानी की पुस्तक का नाम बाल महा-भारत मत रखो। ऐसा नाम रखना लोगों को धोखा देना है और उस बड़े ग्रन्थ की कदर कम करना है। मैं जब उरदू पढ़ता था तो 'कसिसहिन्द' नामक उरदू की पुस्तक मे 'कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई सम्बन्धी एक बड़ा निबन्ध पढ़ा था जिस में उस कथा की मोटी मोटी बातें सब आगयी थीं। ऐसा करना ठीक है; उपयोगी है। हिन्दी पुस्तक प्रकाशकों और लेखकों को सोच समझ कर कार्य्य करना उचित है।

वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों को आदर्श रूप में सामने रख कर उन में लिखे हुए उपदेश, गाथा, इतिहास, जीवन चरित्र आदि सामग्री से विविध प्रकार की पुस्तकें रचनी चाहिये। उन में सैकड़ों पुस्तकों के लिये सामग्री मौजूद है। कथा, वार्ता, इतिहास, उपदेश जैसी सामग्री हो उसको

सरल भाषा में लिख कर और वैसा ही नाम देकर साहित्य क्षेत्र में लाना चाहिए। भ्रमोत्पादक नाम रख कर अपनी पुस्तक का महत्व बढ़ाना अनुचित है।

( ४ )

अच्छा लेखक होने के लिये दो बातों की बड़ी भारी आवश्यकता है—भ्रमण और स्वाध्याय। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिन्होंने स्कूल में शिक्षा नहीं पायी पर उनका अनुभव इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है कि वे बड़े बड़े विद्वानों से टक्कर मारते हैं। ऐसे मनुष्य थोड़े से भाषा-ज्ञान के द्वारा अच्छे लेखक हो सकते हैं। इसलिये लेख सम्बन्धी सामग्री इकट्ठी करने के लिये भ्रमण की बड़ी ज़रूरत है। प्रत्येक उन्नत भाषा-साहित्य की भ्रमण सम्बन्धी पुस्तकों में खास आकर्षण होता है; उनके पाठक अधिक होते हैं। नये नये शहर तथा देश घूमने से ज्ञान का दायरा बढ़ता है; तुलना करने की शक्ति उत्पन्न होती है; भांति भांति के दृश्य नयी नयी शिक्षा देते हैं; भिन्न भिन्न स्वभाव के मनुष्यों के मिलने से मनुष्य स्वभाव का परिचय मिलता है; सत्पुरुषों के साथ मुलाकात करने से अपने गुण दोषों का ज्ञान होता है; उन्नत देशों में घूमने से अपने देश की दीनता के कारण समझ में आते हैं और देशहित कार्य करने में नयी नयी बातें सूझती हैं। लेखक को भ्रमण से बड़ी भारी सहायता मिलती है।

यदि भ्रमण न हो सके तो दूसरों के रचे हुए ग्रन्थ पढ़ने चाहिये, इसके लिए अच्छे पुस्तकालय से सम्बन्ध जोड़ना उचित है। जो लेखक बराबर स्वाध्याय जारी रखता है, जो नित्य नये से नये विचारामृत का पान करता रहता है उसकी आन्तरिक शक्तियों का शीघ्र विकाश होता है और उसे नया

सन्देशा देने में बड़ी सहायता मिलती है। जितना मनुष्य अधिक विद्वान् होगा, जितना अधिक वह पुस्तकावलोकन का प्रेमी होगा उतनी ही अधिक उसके विचारों में गम्भीरता और परिपक्वता आ जायगी। लेखक को अपना पठन पाठन जारी रखना चाहिये, वह सदा अपने आप को विद्यार्थी समझे। नयी बात सीखने के लिये सदा तैयार रहे। जिसके पास जितनी अधिक सामग्री होगी उतना ही उसके लेख का गौरव बढ़ेगा। इसलिये अभिमान त्याग, अन्तःकरण को शुद्ध रख अपने निर्मल विचारों को लेखबद्ध करना चाहिये।

हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में यों तो लेखक ही इने गिने हैं पर जिनको ईश्वर की दया से कुछ लिखना आ गया है उनमें अभिमान भरा है। वे अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं। किसी पत्र या पत्रिका के सम्पादक क्या हो गये मानो साहित्य के सूर्य्य ही बन गये! जो इनकी खुशामद करे उसको तो आकाश पर चढ़ा दें, कालिदास का अवतार बना दें, पर जिनसे रुष्ट हैं बस उसको नीचा दिखाने में घृणित से घृणित उपायों का अवलम्बन करने से भी न चूकेंगे। दैवगति से समय भी इनके अनुकूल है। प्रेस एक्ट के मारे स्पष्टवक्ता क़लम उठा नहीं सकते, बस इसलिये इनकी चाँदी है। कैसा ही रद्दी इनका समाचार-पत्र तथा पत्रिका हो, उसके भी पढ़ने वाले मिल ही जांयगे, पर ऐसे दिन सदा न रहेंगे। एक न एक दिन 'प्रेस-स्वतन्त्रता' का सूर्य्य उदय होगा उस समय "निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते" वाली दशा न रहेगी।

स्मरण रखो, निरभिमानी और स्वार्थ त्यागी लेखक जिस जिस देश में उत्पन्न हुए हैं उन्होंने उस देश की भाषा को अजर और अमर बना दिया है। वाल्मीकि, वेदव्यास, कणाद,

कपिल, गौतम, पतञ्जलि आदि महर्षियों ने स्वार्थ त्याग कर लेखनी उठायी थी और जो कुछ लिखा वह अजर और अमर हो गया। आर्य्य जाति, आर्य्य सभ्यता लोप हो गयी; विदेशियों ने आर्य्य सन्तान को सैकड़ों वर्षों तक पाओं तले रौंद डाला, उनका इतिहास जला दिया, उनका मनुष्यत्व नष्ट करने में कोई कसर उठा न रखी पर जिन कवियों ने संस्कृत भाषा को मस्तक पर चढ़ाया था वे इन शत्रुओं से अधिक दीर्घद्रष्टा थे, उन्होंने पत्थरों के स्तूप रचने की बजाय संस्कृत साहित्य के ऐसे स्तूप रचे, जिनकी जड़ें पाताल तक पहुंचा दी! आज भी उन स्तूपों पर लिखे हुए उपदेश सभ्य संसार में हमारा मुख उज्वल करते हैं और हमारे प्राचीन गौरव की रक्षा कर रहे हैं।

आओ हम उन प्राचीन साहित्य-सेवियों से शिक्षा ग्रहण कर उनके पथानुगामी हों। जैसे वे हमारे लिये पवित्र ग्रन्थ-रत्नों की जायदाद छोड़ गये हैं वैसे ही हम भावी भारत के लिये साहित्य स्तूपों की रचना करें। जैसे उन्होंने साहित्य के लिये स्वार्थ त्यागा था, हम भी उनकी भांति स्वार्थ त्याग कर साहित्य-सेवा पर कटिबद्ध हों। यद्यपि वे अपनी जाति के यौवनकाल में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने समृद्धिशाली स्वतन्त्र भारत में रह, उसके सुख का अनुभव कर अपनी लेखनी से उसकी छटा दिखलाई थी, पर हमारे लिये उनसे भी बढ़ कर अच्छा अवसर है। जाति के अच्छे गुणों की पहचान उसकी परीक्षा के समय होती है। आज हमारी परीक्षा का काल है। यदि आज हम काल की घृणित प्रलोभनाओं से बच कर शुद्ध साहित्य की रचना करेंगे तो निश्चय ही हम भावी सन्तान के लिये अपने प्राचीन गौरवों को पुनर्जीवित करने की सामग्री छोड़ जाएंगे। हमें उस साहित्य की रचना करनी है जो भारत

में सत्ययुग की नींव डालेगा। इसलिये उन वीरों की जीवनियों को तलाश करो जिन्होंने पिछले हज़ार वर्षों के अन्दर भारत के गौरव की रक्षा के हेतु अपना सिर दे दिया। उन धर्मपुत्रों के कार्यों की छान बीन करो जिन्होंने भारतीयधर्मरक्षा के हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। भारत के पतन का सही सही इतिहास, उसके सच्चे सच्चे कारणों सहित लिखा जाना चाहिए। पाश्चात्य देशों के गुण, उनका विज्ञान, उनका कलाकौशल, उनकी राजनीति का व्योरा अपनी भाषा में लिख डालना चाहिये। लेखक वही है जो अपनी जाति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, उनमें नवजीवन भरने के लिये, लेखनी उठाता है। यह कार्य स्वार्थ त्याग किये बिना हो नहीं सकता।

गोस्वामी तुलसीदास जी का उदाहरण देखिये। उस काल जब कि संस्कृत का प्रचार करना कठिन था, हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को सर्वसाधारण तक पहुंचाने की जरूरत थी। गोस्वामी जी ने अपनी रसीली भाषा में ऐसे ग्रन्थ की रचना की जिसने भारत के सर्वसाधारण में धर्मभाव भरने के लिये सञ्जीवनी बूटी का काम किया। भारतवर्ष अशिक्षित है, उसके करोड़ों बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा से भी वञ्चित हैं पर भारत का शायद ही कोई अभागा ग्राम होगा जहां तुलसीदास जी का सन्देशा किसी न किसी रूप मे न पहुंचा हो। आहा! सच्चा लेखक क्या कुछ नहीं कर सकता। करोड़ों आत्माओं को सन्देशा देने वाले ग्रन्थ धन के लोभ से नहीं लिखे जाते। 'रूसो' ने अपना ग्रन्थरत्न धन के लिये नहीं लिखा था। रूस के पैगम्बर कोएट टालस्टाय ने स्वार्थ त्याग कर अपना सन्देश सुनाया था। धन के लोभ से ग्रन्थ लिखना साहित्य का गला घोंटना है। ऐसे रद्दी ग्रन्थ अपने पाठकों की बुद्धि

भ्रष्ट करते हैं। ऐसी पुस्तकों से बचो; उनको दूर से नमस्कार करो।

( ५ )

किसी भी भाषा के साहित्य में अनुवादक की गणना बड़े लेखकों में नहीं की गयी है। फ्रेञ्च, जर्मन भाषाओं के ज्ञाता अङ्गरेज़ अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद कर अङ्गरेज़ी साहित्य का भण्डार भरते हैं, पर उनके देशबन्धु कभी भी उनको बड़े लेखक कह कर नहीं पुकारते। बहुत से विद्वान् जर्मनों ने फ्रेञ्च पुस्तकों का अनुवाद कर अपनी भाषा का भण्डार भरा है लेकिन उन अनुवादकों की गणना जर्मन लेखकों में नहीं की जाती है। इसका कारण स्पष्ट है। अनुवादक दूसरे के उच्च विचारों को अपनी भाषा की पोशाक पहनाता है। वह केवल दुभाषिया है जो किसी विदेशी भाषा के लेखक की बातों को अपने देश-बन्धुओं को समझाता है। वह केवल एक दलाल है जो विदेशी माल को अपने देश में लाकर कमीशन खाता है। उसका अपना कुछ दिमाग़ खर्च नहीं होता, उसकी अपनी कुछ पूंजी नहीं, वह केवल दूसरे के कौशल को दिखलाने वाला है।

इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य-सेवा के क्षेत्र में अनुवादक की भी उपयोगिता है, नहीं नहीं बड़ी भारी उपयोगिता है। वह बहुत कुछ उपकार कर सकता है पर 'लेखक' की पदवी उसे प्राप्त नहीं हो सकती। वह भाषा का पण्डित है; वह भाषा को लच्छेदार बना उसमें मनोरञ्जकता भर सकता है; वह शृङ्गार करने में उस्ताद है; उसको भाषा के मुहाविरे भी खूब याद हैं; वह दूसरों की भाषा में गलतियां भी पकड़ सकता है पर ये सब गुण, ये सब बातें, उसको अपनी भाषा का पथ-

प्रदर्शक लेखक नहीं बना सकती । केवल भाषा का ज्ञान लेखक बनने के लिये 'पर्य्याप्त' नहीं है। लेखक के लिये मुख्य गुण भाव हैं। उच्च भाव यदि तोतली भाषा में भी हो, उच्च आदर्श यदि जङ्गली ग्राम्य-भाषा में भी कहे जांय तो भी वे उसके कहने वाले को 'लेखक' की पदवी से विभूषित कर देते है और बड़े बड़े भाषा-मर्मज्ञ उन आदर्शों की व्याख्या करने में अपना गौरव समझते है। क्योंकि यद्यपि मनुष्यों की भाषाएं भिन्न भिन्न हैं, उनके उच्चारण भिन्न भिन्न है, उनके व्याकरण अलग अलग है पर उच्च भाव, पवित्र आदर्श, आत्म स्थित उस दैवी सूर्य्य की किरणे है जो ब्रह्मरूप सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है, जिसका प्रकाश मनुष्य मात्र की साझी जायदाद है। 'लेखक' किसी ख़ास देश, किसी ख़ास भाषा, किसी ख़ास जाति से सम्बन्ध नही रखता। वह ईश्वर के उन आज्ञाकारी पुत्र और पुत्रियों में से है जो 'न्याय' और 'धर्म' की स्थापना हित लेखनी उठाते है। भाषा तो केवल एक साधन है; मुख्य शक्ति दैवी गुणो का विकाश है। जिसका हृदय उस पवित्र शक्ति द्वारा विकसित नहीं हुआ, वह केवल शब्द जञ्जाल की कोरी मशीन है।

इसलिये हिन्दी साहित्य प्रेमियों को सावधान हो कर चलना चाहिये। हिन्दीभाषा-भाषी, अनुवादकों को लेखक समझने लग गये है। हिन्दी पत्रिकायें अनुवादकों के शब्द जञ्जाल से भरी रहती है। अङ्गरेज़ी, उर्दू, बङ्गाली भाषाओ के लेखकों की पुस्तको का अनुवाद करने वाले 'लेखक' नहीं है। उनकी उतनी ही क़दर करनी चाहिये जितनी के वे अधिकारी हैं। यदि अनुवादकों को लेखकों की डिग्रियां दे देकर उनको पथ-प्रदर्शक समझा जायगा तो हिन्दी में मौलिक ग्रन्थों के लिक्खाड़ पैदा नहीं हो सकेंगे। अनुवादकों की संख्या कम

करो; उनके ग्रन्थों की डुग्गी मत पीटो। अनुवादकों की आवश्यकता है। हिन्दी में वैज्ञानिक, ऐतिहासिक ग्रन्थों का अनुवाद होना चाहिए। अनुवादकों को उनके परिश्रम का पुरस्कार भी मिले, धन से उनकी सहायता भी की जाए, ख़ास ख़ास योग्य व्यक्तियों को आर्थिक उत्साह देकर अच्छे अच्छे अङ्गरेज़ी, फ्रेञ्च, जर्मन ग्रन्थों का अनुवाद भी कराओ, पर ऐसा करते समय अपने भविष्य को मत भूल जाया करो। हिन्दी-साहित्य का गौरव डारविन, हक्सले, स्पेन्सर, नारमेन-एञ्जल आदि अङ्गरेज़ी विद्वानों के ग्रन्थों के अनुवादों से नहीं बढ़ेगा; बल्कि हिन्दी-भाषा-भाषियों के उन मौलिक ग्रन्थों से इसकी कीर्ति उज्ज्वल होगी, जो ग्रन्थ-रत्न भारतीय सामाजिक और राजनैतिक अन्याय की जड़ काटने वाले होंगे; जिनके द्वारा स्वार्थ, ईर्षा, द्वेष, विश्वासघात आदि शत्रुओं को परास्त किया जायगा, तथा जो सभ्य संसार में नवजीवन—नया प्रकाश—फैलाने में अग्रगामी होंगे।

अब पाठक समझ गये होंगे कि, मैं 'अनुवाद' के विरुद्ध नहीं हूं। मैंने साहित्य-क्षेत्र में अनुवादकों की स्थिति का निरूपण मात्र किया है, आप 'लेखक' और 'अनुवादक' के भेद को भली प्रकार समझ जायँ इसलिये मैंने इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने का यत्न किया है।

( ६ )

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो लेखक तीन प्रकार के दृष्टिगोचर होंगे। एक तो ऐसे लेखक हैं जो बिना सोचे समझे लिखते हैं। इनको लिखने की बीमारी है। ये धन के लोभ से लिखें; या ईर्षाद्वेष वश, या झूठे नाम की इच्छा से—इनकी लेखनी मशीन है—ये बिना विचारे लिख कर फेंक देते हैं। इनको सबसे निकृष्ट दर्जे का लेखक समझना चाहिये।

दूसरे लेखक वे हैं जो लिखते हुए सोचते हैं—साथ साथ लिखते जाते हैं और सोचते जाते हैं। उनको अपने पर झूठा विश्वास होता है। वे समझते हैं कि जब हम लिखने बैठेंगे तो हमार दिमाग़ से विचार समुद्र उमड पडेगा। वे अपने 'शीर्षक' के लिये कुछ भी सामग्री इकट्ठी नही करते; उसके लिये पहले से कुछ भी तैयारी नहीं करते। ऐसे लेखक मध्यम दर्जे के लेखक हैं।

तीसरे और सब से श्रेष्ठ लेखक वे हैं जो अपने विषय को लिखने से पहले अच्छी प्रकार विचार कर लेते हैं; जो 'Look before you leap कूदने से पहले खूब देख भाल लो' वाली उक्ति पर चलते हैं। ऐसे लेखक बहुत कम हैं। ऐसे ही लेखकों से साहित्य का गौरव है।

इस प्रकार के सच्चे लेखकों के लेखों में क्या गुण होते हैं? उन बनावटी लेखकों से इनमें क्या विशेषता होती है? इन प्रश्नो का उत्तर देता हूं।

(१) सब से पहला गुण इन लेखकों के लेखों में यह होता है कि इनके शब्दों का प्रभाव पड़ता है। जैसे आतशी शीशे को सूर्य्य के सामने करने से-उसका फोकस हो जाने से-किरण समूह में जलाने की शक्ति हो जाती है ऐसे ही विचारशील और वृत्तियों का निरोध करने वाला लेखक अपनी मानसिक शक्तियों को एकाग्र कर जब लेखनी उठाता है तो उसके शब्दों में जलाने की शक्ति आ जाती है। जो कोई उसके लेख को पढ़ता है उस पर उन शब्दों का विचित्र प्रभाव पड़ता है। यह बात बनावटी लेखक में कदापि नहीं आ सकती।

(२) सच्चा लेखक जिस समय अपने उद्देश्य को निश्चित कर-अपने सन्देशे की महत्ता को समझ कर-लिखना आरम्भ करता है तो उसके लेख मे 'जीवन' आ जाता है। उसके शुद्ध

अन्तःकरण से निकले हुए शब्द उसके पाठक में जीवन प्रदान करते हैं। वह अपने विचारों से, अपनी संजीवनी शक्ति से एक एक शब्द में जीवन फूंक देता है।

(३) यदि लेख में 'आनन्द' भरना हो, यदि शब्दों में 'सरूर' लाने की शक्ति डालनी हो तो वह बिना अपने आपको 'सरूर' मे डाले नहीं आ सकती। सच्चा लेखक जिस विषय को उठाता है उसके रङ्ग मे रङ्गा हुआ होता है। यह 'रङ्ग' युक्ति-सगत लेख में जो क़ायल करने की शक्ति होती है, उससे भिन्न है। धन कमाने की इच्छा से काग़ज़ काले करने वाले तथा ईर्षा द्वेष से क़लमें तोड़ने वाले लेखकों मे यह गुण कदापि नही आ सकता।

(४) जैसे स्रोत से बहने वाला जल ताजा होता है और उसको पीने वाला शारीरिक पुष्टि लाभ करता है ऐसे ही दैवी अमृतसागर से सम्बन्ध रखने वाले लेखक-प्रवर के हृदय स्रोत से निकले हुए शब्द अपनी ताज़गी ( Freshness ) से पाठकों के अन्दर आत्मिक वल भर देते है। उस आत्मिक वल से वलिष्ठ मनुष्य, कठिन से कठिन कार्य्य के करने मे भी नहीं हिचकता। क्या यह वात नक्काल, वनावटी लेखकों में आ सकती है ? कदापि नही। कदापि नहीं।

( ७ )

लेखक एक चित्रकार है जो अपनी सुन्दर, ललित वाक्य-रचना से नैसर्गिक, मानसिक और आत्मिक दृश्यो की छटा को दिखलाता है। रङ्ग विरंगे भावों के द्योतक शब्दों को अपने लेखन-कौशल द्वारा प्रयोग मे लाकर वह भय, करुणा, वीरता, प्रेम, अभिमान आदि मानुषी लीलाओं का चित्र खींचता है।

परन्तु कोई भी चित्रकार अपने मन मे गन्दे अश्लील आदर्शों को रख कर सती साध्वी सीता का चित्र नहीं खींच

सकता। वह मनुष्य जो स्वयं कायर है, महाराणा प्रताप की हल्दीघाटी के युद्ध का चित्र कैसे खींच सकता है ? नौकरी करते करते खुशामद से जिनकी कमरें झुक गयी हैं वे महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र लिख भारतोत्थान का सन्देशा कैसे दे सकते हैं ? पुलिस के डर के मारे जिनका पेशाव निकलता है और झूठी खुशामद में जो पद्य रचना करते हैं वे भारत के राष्ट्र कवि कैसे बन सकते हैं ? स्मरण रखो, लेखक बनने के लिये यह परमावश्यक है कि जिस भाव का चित्र आप अपनी पुस्तक में भरना चाहते हैं, उसका आदर्श आपके हृदयपट पर खचित होना चाहिये। बिना ठीक फोटो सामने हुए चित्रकार चित्र नहीं बना सकता। जब तक लेखक अपने आदर्श से भर न जाय, उसका लेखनी उठाना निरर्थक है। बड़े बड़े लेखकों ने अपना अधिक जीवन तैयारी में खर्च कर तब पुस्तकें लिखी थीं। वे अपने विषय में लीन हो कर, उसके सारे साधनों से सम्पन्न हो कर, तब लेखनी उठाते थे। भला वह कठोर हृदय मनुष्य, जिसने कभी भी अपने देश के दुखी भाइयों के लिये अश्रुपात नहीं किया, किस प्रकार भारत के दुर्भिक्ष का चित्र अपनी पुस्तक में खींच सकेगा ? कदापि नहीं। जिसने करुणा रस का आस्वादन नहीं किया, जो दया के स्रोत से सम्बन्ध नहीं रखता, भला वह कैसे दूसरो के कष्ट को समझ सकता है।

इसलिये लेखक को सब से पहले अपना आदर्श, अपना विषय, निश्चित करना चाहिये। जब उसका उद्देश्य निश्चित हो जाय तब फिर उसके प्रत्येक साधन को इकट्ठा करने का उद्योग करना उचित है। उदाहरणार्थ यदि आप वीरकेसरी गुरू गोविन्दसिंह जी का जीवनचरित्र लिखना चाहते हैं तो आपको सब से पहले उस काल के इतिहास का पाठ करना

आवश्यक है जिसमें वे उत्पन्न हुए थे। उस काल का पूरा फोटो आपके मन में आ जाना चाहिये। सिखों और मुसलमानों के बीच में जो झगड़ा था; सिख धर्म में क्षात्रत्व शक्ति प्रधान होने के जो कारण थे, उनकी गाथा विस्तार से जानना उचित है। इसके बाद उन स्थानों नगरों में जाना आवश्यक है जिनके साथ गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवनी का विशेष सम्बन्ध है। पञ्जाब के माझा मालवा प्रान्त का भ्रमण अच्छी प्रकार होना चाहिये। जब उस महापुरुष की जीवन कथा से संपूर्ण सम्बन्धि हो जाय तब फिर लेखनी उठानी चाहिए। इतने परिश्रम के बाद जो ग्रन्थ लिखा जायगा वह अपने ढङ्ग का अकेला ही होगा।

पर हिन्दी-साहित्य-संसार की दशा बड़ी विचित्र है। यहाँ भांग छानने वाले, नाच देखने वाले, सत्य की अवहेलना करने वाले हिन्दू समाज के उपन्यास लिखते हैं। आदर्श हिन्दू समाज कैसे उच्च भावों के द्योतक शब्द हैं; उन उच्च भावों का चित्र खींचने के लिये कैसे पवित्र हृदय की आवश्यकता है। प्रभु के दैवी स्रोत से सम्बन्ध हुए बिना, क्या आदर्श हिन्दू समाज के अलौकिक गुणों—ब्रह्मचर्य, सतीत्व धर्म, सत्यव्रत, कर्मनिष्ठा, श्रद्धा, भक्ति आदि—के दिव्यदर्शन कोई लेखक अपनी लेखनी द्वारा हमें करा सकता है? कदापि नहीं। दुकानों पर बैठ कर झूठ मूठ सौदा तौलने वाले, अदालत में जाकर झूठे मुक़दमे लड़ने वाले, नौकरी की ज़ञ्जीरों में जकड़े हुए खुशामदी अपनी लेखनी द्वारा किसी जाति के पथ-प्रदर्शक नहीं बन सकते। हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि इसका साहित्य ऐसे ही लोग भर रहे हैं। पर यह दशा शीघ्र सुधरेगी। ज्यों ज्यों लोगों में शिक्षा होने से परख करने की शक्ति

आती जायगी त्यों त्यों अच्छे लेखकों का आविर्भाव होता जायगा।

( ८ )

लेखक को पुस्तक का नाम सोच विचार कर रखना चाहिये। नाम एसा हो जिसके सुनने से ही पुस्तक के विषय का पता लग जाय। भ्रम पैदा करने वाला नाम रखना उचित नही। एक सज्जन मुझसे मिलने आये। उनके हाथ में एक पुस्तक थी। पूछने पर मालूम हुआ कि उस पुस्तक का नाम 'आत्मप्रकाश' है। मैंने समझा कि वेदान्त का ग्रन्थ होगा। जब उस सज्जन ने मुझे बतलाया कि यह वैद्यक का ग्रन्थ है तो मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। नाम 'आत्मप्रकाश' और हो वैद्यक की पुस्तक! उस लेखक ने ऐसा भ्रमोत्पादक नाम क्यों रखा था? मालूम हुआ कि लेखक का नाम 'आत्माराम' था, उसी अपनी आत्मबुद्धि के प्रकाश हेतु उसने अपने ग्रन्थ का नाम 'आत्मप्रकाश' रखा था।

लम्बा नाम भी किसी काम का नहीं होता। नाम छोटा पर विषय द्योतक होना चाहिये। लम्बे नाम भद्दे मालूम होते हैं। उनका स्मरण रखना कठिन हो जाता है। छोटा नाम हो और साथ ही अर्थ में भी सरल हो। ऐसा न हो जिसके अर्थ समझने में 'भाषा शब्दसागर' में गोता लगाना पड़े। हिन्दी कविता की एक नयी पुस्तक छपी है उसका नाम है—प्रिय-प्रवास। 'प्रियप्रवास' नाम छोटा है पर अपने विषय का द्योतक नही है। मेरे जैसा पुरुष उस नाम से कुछ भी चित्र अपने सामने नहीं ला सकता। ऐसा बेंडा नाम नही रखना चाहिये। इस नाम से क्या कोई जान सकता है कि इस पुस्तक में भगवान् कृष्ण के प्रेम-रहस्य की गांठें है, या कृष्णचन्द्रजी की

प्यारी राधाजी की जीवनी के साथ इसका कुछ सम्बन्ध है। ऐसा नाम रखना ठीक नहीं।

पुस्तक का ऐसा नाम भी रखना ठीक नहीं जो चुराया हुआ मालूम हो। दूसरी किसी अच्छी पुस्तक का नाम चुराना लेखक में मौलिकता का अभाव सिद्ध करता है। लेखक को सदा इससे बचना चाहिये। पण्डित माधव शुक्लजी ने अपनी पुस्तक का नाम 'भारत-गीताञ्जलि' रख कर बड़ी भूल की है। बङ्गकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताञ्जलि' के प्रसिद्ध होने के बाद अपनी पुस्तक का नाम 'भारत-गीताञ्जलि' रखना अनुचित था। उनको कोई नया फड़कता हुआ नाम घड़ना था। किसी की छाया के नीचे चलना निर्बलता का चिन्ह है, जहां तक हो सके अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करना चाहिये। और फिर 'भारत-गीताञ्जलि' में वैराग्य और खण्डनमण्डन के गीत तो बिल्कुल शोभा नहीं देते; उसमें केवल देशभक्ति के गीत होने चाहियें।

मैं अन्त में हिन्दी प्रेमी सज्जनों से प्रेमपूर्वक क्षमा चाहता हूं। मैंने जो कुछ कहा है वह देशसेवा के नाते से कहा है। मैं चाहता हूं कि हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़े, इसका मुख उज्ज्वल हो। मैं अपने देश के बच्चों के हाथों में शुद्ध साहित्य की पुस्तकें देखना चाहता हूं। इसीलिये 'लेखन-कला' सम्बन्धी कुछ विचार प्रकट किये हैं। यह विषय बहुत बड़ा है। इसपर अच्छी प्रकार विवेचना करने के लिये बहुत समय चाहिये, तो भी मैं लेखन-कला सम्बन्धी कुछ अत्यावश्यक नियम तथा सूचनायें अपने प्रेमी पाठकों के उपकारार्थ लिखता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी-संसार को उनसे बहुत कुछ लाभ पहुंचेगा।

—:o:—

# लेखन-कला



## प्रारम्भिक बातें

लेखन-कला की परिभाषा में, विचारों को नियमानुकूल सूत्रबद्ध करने की शैली को निबन्ध-रचना अथवा प्रबन्ध कहते हैं। किसी एक विषय पर अपने विचारों को स्पष्ट और सरल भाषा में प्रगट करने का नाम निबन्ध-रचना है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि कुछ कहा जाए—कुछ कहने की सामग्री हो, उसको अच्छी प्रकार साधुभाषा में कहना, यह दूसरा लक्ष्य है।

बहुत से लोग लेखन-कला को शब्द-जाल की माया तथा मन के हवाई घोड़े दौड़ाने वाली कल्पना-शक्ति समझते हैं। उनकी सम्मति में यह एक ऐसी कला है जो इने गिने लोग ही जान सकते हैं। उन्होंने इन कला-सम्पन्न व्यक्तियों का पृथक वर्ग स्थिर कर लिया है। वे इसको लौकिक-व्यवहार का साधन नहीं समझते, वल्कि वे इसे मन के मोदक खिलाने वाली, रंग विरंगे शब्दों से भाषा को अलंकृत करने वाली मनमोहिनी अप्सरा मानते हैं।

उनकी यह भारी भूल है। लेखन-कला का हमारे व्यवहारिक जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह साहित्याचार्यों का न्यारा पन्थ कायम नही करती; बल्कि मनुष्य को मनुष्य के साथ मिलाने, उनमें भ्रातृ-भाव पैदा करने, उनको ईश्वर-रचित पदार्थों का आनन्द-रस पान कराने का मुख्य साधन है। समाज में जितने झगड़े फसाद फैले हुए हैं, जो कुछ ईर्षा-द्वेष देखने मे आता है, वह अधिकांश आपस में ठीक समझौता न होने के कारण है। ज़रा सी ग़लतफहमी से सैकड़ों हज़ारों के वारे न्यारे हो जाते हैं, शब्दों के थोड़े से हेर फेर से कुछ का कुछ हो जाता है। इसलिये पाठशालाओं तथा स्कूलों में लेखन-कला की शिक्षा अत्यावश्यक है। प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को इसका अभ्यास करना चाहिए। "मैं इस विषय को जानता तो हूं पर समझा नही सकता"—ऐसा हमने बहुत से पढ़े लिखे बन्धुओं को कहते सुना है। भला जब हम अपने विचारों को, अपने भावों को, दूसरों के सामने प्रगट नही कर सकते तो फिर समाज में एकता, प्रेम और उन्नति कैसे हो सकती है। निबन्ध-रचना सिखलाने का अभिप्राय यही है कि हम शब्दों का यथार्थ उपयोग जानें, उनका ठीक ठीक प्रयोग सीखें, ताकि हम कठिन से कठिन विषय को भी सीधी सादी सरल भाषा में दूसरो को समझा सकें। तभी भाषा सार्थक हो सकती है और हमारे जीवन का उद्देश्य भी तभी पूर्ण हो सकता है।

निबन्ध-रचना के इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ लेखक की जीवन-चर्य्या का गहरा सम्बन्ध है। उसी लेखक की भाषा में बल आ सकता है जिसके चरित्र में बल हो। यदि आप अपने लेख में शुद्धता भरना चाहते है तो इसके लिए शुद्ध विचार की आवश्यकता है। जिसका अपना जीवन पवित्र

नहीं है उसके लेख में पवित्रता कहां से आ जाएगी। जो लोगों को दिखलाने के लिए—धोखा देने के लिए—अस्वाभाविक तौर पर अपनी प्रवृत्ति के विरुद्ध बन कर चलते हैं, वे स्वयं धोखा खाते हैं। जिस कला-कौशल में प्रवीण होकर हम संसार में कुछ करना चाहते हैं उसका हमारे व्यवहारिक जीवन—हमारी नित्य की दिनचर्य्या—के साथ बड़ा भारी सम्बन्ध है। किसी विद्वान् ने सच कहा है—

"Style is the man himself."

लेखन-शैली लेखक का अपना स्वरूप है। नवयुवक हिन्दी लेखकों को यह उक्ति अपने हृदयपट पर लिख लेनी चाहिये।

—:o:—




१ विषयों की अभिज्ञता—जब किसी विषय पर कहने अथवा लिखने की इच्छा हो तो विद्यार्थी को अपनी योग्यता, रुचि, अनुभव और शक्ति—इन चार बातों को—देख लेना चाहिए। जिस विषय का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, जो उसकी रुचि के प्रतिकूल है, जिसका उसे कुछ भी अनुभव नहीं, ऐसे विषय पर लेखनी चलाना समय को व्यर्थ खोना है। जिसके पास निज की कुछ भी पूंजी नहीं है उसे निबन्ध-रचना में हाथ नहीं डालना चाहिए। आप उस विषय के सम्बन्ध में क्या जानते हैं? आपका उसके सम्बन्ध में क्या

अनुभव है? आपका उद्देश्य क्या है? आपके पास निज की सामग्री कितनी है? ऐसे ऐसे प्रश्नों द्वारा पहले अपनी स्थिति ठीक कीजिए। जब सामग्री जुट जाए तो फिर लेख लिखने में बड़ी आसानी हो जाती है।

२ **विषय-तत्व**—जो नौसिखिए हैं उन्हें धैर्य्य, क्षमा, आशा, सन्तोष आदि अमूर्त अथवा सात्विक विषयों पर कलम चलाना उचित नहीं। उन्हें पहले नित्य की साधारण बातों पर—मामूली खेल कूद आदि विषयों पर—कुछ लिखने का अभ्यास करना ठीक होगा। उन्हें पहले निरीक्षण करने की आदत डालनी चाहिए। अमूर्त और अनभ्यस्त विषयों पर लेख लिखने से उनकी मानसिक-प्रवृत्ति बिगड़ जायगी और वे निश्चित विचारशील न बन सकेंगे।

३ **निबन्ध की सीमा**—एक बात और भी। जिस शीर्षक पर निबन्ध लिखना हो उसकी सीमा बांध लेनी उचित है। विषय जितना सूक्ष्म होगा उतनी ही आसानी विषय-पूर्ति में होगी। उदाहरणार्थ किसी ने अपने निबन्ध का शीर्षक "जल" अथवा "फोटोग्राफी" या "स्वामी रामतीर्थ" रखा। ऐसे शीर्षक की पूर्ति करना लेखक के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। उसको अधिक सामग्री जुटानी पड़ेगी; लम्बा चौड़ा लेख लिखना होगा; अपने विषय को विस्तार पूर्वक कहने के लिए वह वाध्य हो जाएगा। इसलिए उन शीर्षकों की बजाए—"जल की बनावट", "फोटोग्राफी का शिक्षा पर प्रभाव", "स्वामी रामतीर्थजी का देशहित"—इस प्रकार विषयों की सीमा निर्धारित कर देने से लेखक को लेख लिखने में बड़ी आसानी हो जाएगी और वह उसे अच्छी प्रकार लिख सकेगा। निम्नलिखित विषयों को सूक्ष्मरूप में लाइए—

१. वायु
२. पुस्तकावलोकन
३. स्वामी दयानन्द
४. नील
५. देश-सेवा
६. मनुष्य जन्म
७. विद्या
८. हिन्दी-साहित्य
९. देश-भक्ति
१०. मूर्ति-पूजा

४ **विषय-भेद**—लेखन-कला में विषयों के चार स्वाभाविक भेद हैं—कथात्मक, वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, और तार्किक। अंग्रेज़ी में इनको Narrative, Descriptive, Expositary और Argumentative कहते हैं। उपाख्यान प्रायः कथात्मक होते हैं; यात्रा में विशेष कर वर्णन की अधिकता होने से उसे वर्णनात्मक समझिए। उपन्यासों में दोनों का मेल होता है। वैज्ञानिक लेख अथवा विद्वत्ता-पूर्ण निबन्ध व्याख्यात्मक होते हैं। धार्मिक, दार्शनिक और राजनैतिक विषयों की मीमांसा करने वाले लेखों की गणना तार्किक में की जाती है। इतिहास में प्रथम तीन किस्मों का मेल होता है, और यदि इतिहासकार चार क़दम आगे बढ़ कर किसी विषय पर अपनी तर्क लड़ाने लगता है तो चारों भेदों का समावेश केवल इतिहास में हो जाता है। अब हम प्रत्येक भेद की पृथक पृथक व्याख्या करते हैं—

(क) कथात्मक निबन्ध वह है जिसमें किए हुए—दुखान्त, सुखान्त—कार्य्यों की कथा हो, अर्थात् जिसमें उन अनुभवों या चेष्टाओं का ज़िकर हो जिनका समय-स्थित घटनाओं के साथ सम्बन्ध है। वह घटना चाहे किसी एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र के रूप मे हो अथवा इतिहास में।

(ख) जो निबन्ध आकाश-स्थित प्राकृतिक पदार्थों का याथातथ्य निरूपण करते हैं, जो व्यक्तिओं के गुण और उपा-

पहले दो मिश्रित हैं । "भावी-विप्लव" में तीनों का थोड़ा बहुत समावेश है। इसी प्रकार-'सत्य-ग्रन्थ-माला' की पुस्तकों में बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

---

# सामग्री

१-इसकी प्राप्ति—निबन्ध के लिए सामग्री जुटाने के दो मुख्य साधन हैं। मनुष्य का अपना अनुभव और दूसरों का अनुभव-जन्य ज्ञान । अपने अनुभव से मनुष्य भ्रमण सम्बन्धी पुस्तकें, विज्ञान सम्बन्धी मौलिक वर्णनात्मक लेख, महापुरुषों की जीवन-घटना अथवा अपनी निज की जीवन-चर्य्या लिख सकता है। और यदि उसकी कल्पना-शक्ति ईश्वर दत्त हुई तो वह अपनी मानसिक उडान से सामग्री जुटा उत्कृष्ट कविता या गद्य लिख सकता है । ऐसे लोग हैं जिन्होंने अधिक भ्रमण नहीं किया, परन्तु उन्होंने दैवी-दृष्टि से देख कर जो कुछ लिख दिया, वह अजर और अमर हो गया। ऐसी आत्मायें विरली होती है। दूसरा साधन इतिहास या विद्वानों के लिखे हुए वृहत् ग्रन्थ हैं। महाभारत और रामायण दो हमारे पूज्य ग्रन्थ हैं। सैकडों लेखकों को उनके पाठ से प्रेरणा मिली और भविष्य में मिलेगी। इसी प्रकार टाड़ साहेब के राजिस्थान के इतिहास में से भिन्न भिन्न घटनाओं को लेकर लेखकगण अपने जौहर दिखाते हैं।

(क) सामग्री जुटाने का सब से प्रथम ढंग, जो व्यक्ति को सच्चा लेखक बनाता है, यह है कि—

"अपनी आखें खोल कर चलो।"

इससे स्वयं निरीक्षण करने की शक्ति आती है और दैवी गुणों के विकास का साधन प्राप्त होता है। हां, यह आवश्यक है कि देखने की भी बुद्धि होनी चाहिए। बहुत से लोग देखते हुए नहीं देखते, और सुनते हुए नहीं सुनते। फ्रांस का प्रसिद्ध लेखक डीमुपाज़ां कहता है—

"निरीक्षण करने की उत्कृष्ट शक्ति यही है कि जिस दृश्य को आप वर्णन करने लगे हों, उसे ध्यान पूर्वक देखने से आप कोई ऐसी विशेष बात ढूंढ निकालें जो किसी दूसरे ने न कही हो।" अपने विषय के सामने बैठ जाओ और एक कुशल चित्रकार की भांति उसका सच्चा चित्र खींचो।

जितने बड़े बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए हैं, जिन्होंने अपने निज अनुभव-जन्य ज्ञान से संसार को आनन्दित किया है, वे प्रकृति के सच्चे उपासक थे। वे सदा आँखें खोल कर चलते थे और अपने इर्द गिर्द की छोटी छोटी बात को अपने अन्दर रख लेते थे। उनके उस अमोघ खज़ाने में भिन्न भिन्न प्रकार के संस्कारों का संग्रह रहता था, और वे फुरसत के समय उन संस्कार रूपी पुष्पों को तरीक़े से सजा कर रंग विरंगे गुलदस्ते बनाते थे। उनके गुलदस्तों से निकली हुई सुरभि साहित्य-क्षेत्र को सुगन्धित करती थी। इसलिए लेखक काग़ज़ पेन्सिल सदा साथ रखे, और जो कुछ देखे उसको नोट करता जाय।

स्वतन्त्रता से सामग्री इकट्ठी करने का अभ्यास डालने के लिए निम्नलिखित ढंग उपयुक्त है—

(१) सवेरे उठ कर घूमने जाइए। रास्ते में जो कुछ अत्यन्त रुचिकर जचे उसको नोट कीजिए। उसे इस ढंग से लिखिए कि भविष्य में जब कभी उसी प्रकार की सैर का वर्णन करना हो तो वे नोट अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हों।

(२) किसी अत्यन्त परिचित सड़क पर घूमने जाइये और ऐसी कोई वस्तु तलाश कीजिए, जिस पर पहले कभी आपका ध्यान ही न पड़ा हो; उसको भी नोट कर लीजिए।

(३) अपने कमरे का ऐसा छोटा, परन्तु सुथरा, वर्णन लिखिए कि जो किसी दूसरे कमरे से समता न रखता हो।

(४) तीन ऐसे विशेषण, अपने किसी प्यारे मित्र के लिए, तलाश कीजिए जो आपके किसी अन्य मित्र पर न घट सकें।

(५) एक सप्ताह की दिनचर्य्या लिखते रहिए। सप्ताह के बाद उस पर—"मेरे जीवन के सात दिन"—शीर्षक देकर एक छोटा निबन्ध लिख डालिए।

(६) अमरीका-भ्रमण में से दो सप्ताह की दिनचर्य्या लेकर अमरीकन-कृषि-जीवन पर एक छोटा पच्चीस सतरों का लेख लिखिए।

(७) सरस्वती, मर्य्यादा, हिन्दी-चित्रमय जगत, प्रभा, किसी एक पत्रिका के वर्षभर के अंकों में से, शिक्षा सम्बन्धी जो लेख हों, उनका सार अपने शब्दों में लिख डालिए।

(८) श्रीतिलक महाराज की गीता-रहस्य की प्रस्तावना पढ़ कर ग्रन्थकार के ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य पर एक सुन्दर निबन्ध लिखिए।

इस प्रकार अभ्यास करने से लेखक को स्वतन्त्र सामग्री इकट्ठी करने की आदत पड़ जायगी और उसे निबन्ध-रचना का आनन्द आने लगेगा।

( ख ) सामग्री प्राप्त करने का दूसरा ढंग यह है कि दूसरों के अनुभव से फ़ायदा उठाया जाय। इसके दो साधन हैं। प्रथम तो वे पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ, ताम्रपत्र, सरकारी रिपोर्टें आदि हैं जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार की सामग्री तो है, पर उनमें से सार वस्तु निकालने की बुद्धि चाहिए। ऐसी पुस्तकों से लाभ उठाने वाले को बड़ी इमान्दारी से काम करना होगा। अट का सट नक़ल करने वाला और अर्थ का अनर्थ करने वाला अपने लेखक-पन के कर्तव्य का पालन नहीं करता। वह दूसरों को धोखा देकर केवल अपनी कीर्ति में कालिमा लगाता है।

सामग्री प्राप्त करने का दूसरा साधन नवीन और प्राचीन ग्रन्थकारों के भिन्न भिन्न विषयों के ग्रन्थ हैं। जिस ग्रन्थ से जो सामग्री ली जाय, उसके मूल लेखक का धन्यवाद सदा स्वीकार करना चाहिए। ख़ास ख़ास उच्च कोटि के ऐसे भी लेखक हुए हैं जिन्होंने दूसरों की सामग्री लेकर उस पर अपना ऐसा पक्का रंग चढ़ाया है कि उस सामग्री में बिल्कुल नवीनता आ गयी है; कुशल लेखक अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को उसमें भर उस सामग्री का रूप बदल देता है। अंग्रेज़ी में इसी कोटि के लेखक—मेकाले और इमरसन—हुए हैं। परन्तु सब किसी के लिए यह मार्ग नहीं है। निबन्ध-रचना सीखने वालों को दूसरों की सामग्री चुराने की आदत कभी नहीं डालनी चाहिए। वे जब कहीं से कुछ लें तो उसे अवतरण-चिन्हों में रख दें, जिससे पाठक को मालूम हो जाय कि यह कहीं का उद्धृत वाक्य है।

२—सामग्री का उपयोग—सामग्री इकट्ठा करने के बाद दो बातों का ध्यान रखना होगा। एक तो यह कि कौन सी सामग्री काम आने योग्य है और दूसरे यह कि कौन सी धर रखने के

लिए है। विषय के शीर्षक को सदा आंखों के सम्मुख रखना चाहिए। कोई ऐसी सामग्री काम में न लाई जाय, जिसका उक्त विषय से सीधा अथवा स्पष्ट सम्बन्ध न हो। धींगा धींगी, खींचातानी से, असंगत बातों से लेख को लाद देना लेखक में विचार-शक्ति की निर्बलता सिद्ध करता है। विषय की सीमा को ध्यान में रख कर जो कुछ कहा जाय, वह सब बराबर विषय का पुष्टिकारक हो, यदि आपका विषय "भारत-वर्ष का इतिहास" है तो उसमें वेद, भागवत, कुरान, और अंजील का मुकाबिला तथा ईश्वरीय-ज्ञान के झगड़ों का पचड़ा लाना पाठकों का समय नष्ट करना है। निबन्ध-लेखकों में व्यवच्छेदक-शक्ति का होना परमावश्यक है।

जो विषय वैज्ञानिक और शिक्षाप्रद हैं, और जिन्हें सर्वांग-पूर्ण लिखना है, उनके स्पष्टीकरण में तो भले ही उस सम्बन्ध की सभी बातें कह दीजिए, परन्तु जो विषय दूसरों के मनोरंजनार्थ लिखे जाते हैं, जैसा कि प्रायः साहित्य में होता है, उनमें अधिकांश बातें तो केवल इशारे से सुझाई जाती हैं और बहुत सी बातें बिलकुल छोड़ दी जाती हैं ताकि पाठक ऊब न जायें। क्योंकि—

"*The art of boring people is to tell every thing.*"

दुनियाँ भर की बातें ठूंस देना ही श्रोताओं को उबा देने का साधन है। कोई भी लेखक अपने पाठकों की उपेक्षा कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रकार के पाठकों को उसे अपने सत्य-सिद्धान्त अथवा अपने उन्नत विचारों को बतलाना है, उनकी योग्यता, उनके धार्मिक भाव, उनके पक्ष-पात—इन सब बातों का ध्यान रख कर उसे लेख लिखना उचित होगा।

लेख की लम्बाई का प्रश्न भी बहुत सी बातें तै कर देता है। यदि छोटा लेख लिखना है तो मुख्य मुख्य बातों, उदाहरणों तथा तर्कों को लिखकर ही लेख की पूर्ति करनी पड़ेगी। जो ख़ास बात हम कहना चाहते हैं उसी को प्रधानता देकर अपने मत को पुष्ट करना होगा, उसी के विस्तार को अधिक स्थान दिया जायगा। उदाहरण अधिक उपयोगी होते हैं, परन्तु उनमें से भी जो स्पष्ट रीति से हमारा अभिप्राय सिद्ध करें वे ही काम में लाने ठीक होगे। लेखक के लिए प्रायः अपनी विस्तृत सामग्री को सुरक्षित कर, लेख की सीमा तदनुकूल करना अधिक उपयुक्त होता है। क्योंकि—"Condensation is a safer process than expansion"—विस्तार से बात कहने की अपेक्षा थोड़े में कहना अधिक नीति-संगत है। परन्तु इसका फैसला भी लेख के परिमाण पर निर्भर है।

सच तो यह है कि लेखन-कला में वही व्यक्ति निपुण होगा जिसके पास भरपूर सामग्री हो, और वह उसमें से थोड़ा ही भाग अपने पाठकों को दे। लेखक की दशा ठीक उस सेनापति की तरह है जिसके पास काफ़ी फौज युद्ध करने के लिए है, और जो अवसर के अनुकूल थोड़े बलिदान से अपना युद्ध कौशल दिखलाता है। उसको अपने ऊपर दृढ़ विश्वास होता है। इसी प्रकार लेखक और पाठक दोनों तभी विश्वास से परिपूर्ण रहेंगे यदि वे जानेंगे कि अभी बहुत सी संचित सामग्री धरी है; ख़ज़ाना खाली नहीं हो गया। उत्कृष्ट निबन्ध-रचना का यही रहस्य है। अपने आपको सामग्री से भर लो। जहां तक आपकी पहुंच है वहां से जो कुछ आपको अपने विषय पर प्रकाश डालने के लिए मिलता है, उसे ले आओ; खूब सामग्री जुटाओ। जितनी अधिक सामग्री आपके पास है उतनी ही सुगमता आपको अपने

विषय के प्रतिपादन करने में रहेगी, और आपके श्रोता उतनी ही अधिक श्रद्धा से आपकी बात सुनेंगे। आप स्वेच्छानुकूल शब्द चुन सकेंगे; स्वतन्त्रता से उदाहरणों का चुनाव होगा; अच्छी से अच्छी दलीलें सूझेंगी; मोतियों की भांति प्रत्येक तत्व—प्रत्येक घटना—को माला में पिरो सकेंगे। सच्चा लेखक बनने का यही श्रेष्ठ मार्ग है।

**३—सामग्री का संगठन**—जब सामग्री इकट्ठी हो जाय तो उसका बड़ी चतुराई से संगठन करना चाहिए। सब से पहले "संघ" इस शब्द के अर्थ समझ लीजिए। अवयवों का समुदाय जब किसी विशेष उद्देश्य के निमित्त संगठित किया जाय तो उसको संघ कहते हैं। प्रत्येक संघ के कई अवयव होते हैं, परन्तु यह (संघ) अवयवों का समूह नहीं है। प्रत्येक अवयव का एक दूसरे के साथ आवश्यक सम्बन्ध है; केवल निकटस्थ सम्बन्ध ही नहीं है। वे एक दूसरे पर ऐसे निर्भर हैं कि उनका भिन्न अस्तित्व रह ही नहीं सकता। इस सहजीवी और आवश्यक सम्बन्ध के कारण संघ में एकता आती है; उसको हम एक जुदा वस्तु कहते हैं। यदि आप शरीर के अंग—हाथ—को काट डालें तो वह अंग पृथक होने से नाकारा हो जाता है। जैसे शरीर एक संघ है और इसमें भिन्न भिन्न अवयव अपना जुदा जुदा उद्देश्य रखते हुए भी शरीर के मुख्य धर्म के हेतु जीते हैं, परन्तु शरीर से पृथक होते ही उनका अस्तित्व मिट जाता है, इसी प्रकार लेख रूपी शरीर के प्रत्येक अंग एक दूसरे के साथ इस प्रकार संगठित होने चाहियें कि एक, दूसरे के विना, वे जी ही न सकें। यही लेख-सामग्री का संगठन कहलाता है।

( क ) लेखन-कला की परिभाषा में सामग्री-संगठन के प्रथमगुण को एकता (unity) कहते हैं। इस एकता के भिन्न

भिन्न अंग होते हैं, उन अंगों को भी भिन्न भिन्न खण्डों में विभक्त किया जाता है। यह एकता उन्हीं पृथक पृथक खण्डों, विभागों तथा अंगों को सहजीवी सिद्धान्त पर मिलाने से आती है।

(ख) संगठन का दूसरा गुण यौक्तिक-क्रम (Logical Sequence) है। अर्थात् प्रत्येक अंग एक दूसरे के बाद स्वाभाविक गति में रखा जाना चाहिए। लेख में इस क्रम के लाने के निमित्त दो प्रधान बातों का देखना उचित है—प्रथम समय, दूसरा कारण कार्य्य सम्बन्ध। प्रथम की आवश्यकता कथात्मक लेखों में पड़ती है और दूसरे की तार्किक लेखों में। व्याख्यात्मक में दोनों का उपयोग है। वर्णनात्मक में हम वस्तु का यथातथ्य वर्णन करते हैं इसलिए उसमें जो जो पदार्थ हमारे सामने आते जाते है उनको उसी सिलसिले में वर्णन करते हैं। कभी किसी विशेष गुण पर तुरन्त दृष्टि पड़ती है तो उसी का वर्णन प्रथम होता है, और बाद में अधिक ध्यान से देखने पर अन्य गुणों का वर्णन करते हैं। परन्तु इसमें भी भिन्न भिन्न लेखकों का भिन्न भिन्न ढंग होगा। एक वैज्ञानिक किसी उद्यान का वर्णन करते समय अपने विकास सिद्धान्तानुसार उसकी प्रथमावस्था पर अवश्य कुछ न कुछ कहेगा, क़िन्तु एक सैलानी व्यक्ति, पाठकों की मानसिक कल्पना-शक्ति को जगा कर, जो जो पदार्थ उसके सामने आते जायेंगे उनको वह तदनुरूप कह डालेगा। उसके लिए यही स्वाभाविक ढग है। सौ बातों की एक बात यह है कि लेखन-शैली में कोई न कोई स्वाभाविक क्रम होना चाहिए, अर्थात् उसका किसी न किसी ढंग पर विकास होना उचित है।

(ग) लेख में गौरव अथवा प्रभाव (emphasis) का होना भी भारी गुण है। इच्छानुकूल प्रभाव डालने के लिए सब से

प्रथम अंगों का विस्तार निश्चित करना है। जिस बात पर आप अत्यन्त बल देना चाहते हैं, जिसकी ओर आप अपने पाठकों का ध्यान खञ्चित करने की अभिलाषा रखते हैं, उस बात को मुख्य रख लीजिए। प्रभाव डालने के स्थान लेख के प्रारम्भिक और अन्तिम भाग हैं। सारे निबन्ध में, प्रभाव डालने का मुख्य स्थान, अन्तिम भाग है। सारे लेख में बराबर गौरव भरने से उस गौरव का बल कम हो जाता है। साधारण बातो को आरम्भ में स्थान देना चाहिए; विशेष कर उस दशा मे, यदि उनके कथन से, विषय में प्रवेश होता हो, नहीं तो लेख के मध्य में साधारण सामग्री को स्थान देना चाहिए। यह नियम कथात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक लेखों के लिए है।

**४–निबन्ध का ढांचा**—निबन्ध-रचना से पहले उसका ढांचा बना लेना बड़ा ज़रूरी है। यद्यपि सैकड़ों पुस्तकें ऐसी लिखी गयी है कि जिनका सिद्ध-हस्त लेखक यह नहीं जानता कि एक पृष्ठ के बाद दूसरे पृष्ठ में क्या रहेगा, किन्तु ऐसे लेखक कम होते हैं और उनके लिए नियम नहीं बनाए जाते। वे अपवाद स्वरूप हैं। उस रामभरोसे-ढग पर चलने वालों के लिए, निबन्ध में एकता और सौष्ठव (Symmetry) लाने की संभावना बहुत कम रहती है। यह मार्ग मशीनी तथा गढ़कू लेखकों के लिए भले ही अनुकूल हो, धन-लोलुप भले ही इस प्रकार से पुस्तकें लिखें, परन्तु जो सच्चे लेखक बनना चाहते हैं उनके लिए यह उचित मार्ग नहीं है। जो लेखक अपने जीवनोद्देश्य की पूर्ति के हेतु लेखनी उठाता है, उसे निबन्ध-रचना के लिए बड़ी तैय्यारी करनी पड़ती है। वह चार सतरें लिखेगा, परन्तु जो कुछ लिख देगा, वह अपने ढंग में निराला होगा।

व्याख्यात्मक और तार्किक लेखों के लिए पूर्व ही से सामग्री जुटाना अत्यावश्यक है। यदि पहले से ही विचार पूर्वक लेख के लिए नोट नहीं लिए जाते, युक्तिओं का संग्रह नहीं होता तो लेख लिखते समय उसमें स्वाभाविकता लाना दुस्तर हो जायगा। लेख का विकास उसके प्रथम ढांचे के अनुसार होगा। लेख की इसी प्रथमावस्था—उसकी गर्भावस्था—पर हमें विचार करना है।

इसका ढंग यही है कि पहले विषय सम्बन्धी सभी बातों को टीप लीजिए, बाद में एकता और यौक्तिक-क्रम के सिद्धान्तों के अनुसार उन सब को तरतीब में लाइए। जिनका निकट-वर्ती सम्बन्ध है उनको निकट लिखिए; दूसरों को दूर रखिए। इस प्रकार उनके समुदाय ( Groups ) बनेंगे। फिर उन समुदायों को परस्पर मिलाने वाला अर्थात् उन पर राज्य करने वाला एक ख़ास सिद्धान्त तलाश कीजिए। जब सिद्धान्त निश्चित हो जाय, समुदाय बन जायें और उनकी तरतीब जम जाय तो प्रत्येक समुदाय को जुदा जुदा निबन्धों की भांति लेखबद्ध करना सहज हो जायगा। इस ढांचे से लेखक स्वेच्छानुकूल निबन्ध लिख कर अपनी उद्देश्य-पूर्ति कर सकता है।

व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों का ढांचा तीन मुख्य विभागों में बट सकता है। उनको भूमिका ( Introduction ) विकास ( Development ) और परिणाम ( Conclusion ) कहते हैं। विषय सम्बन्धी मुख्य मुख्य बातें भूमिका में निर्दिष्ट की जाती है; विकास में विषय का उत्थान, उसका विस्तार, रहता है; परिणाम में निबन्ध का सार, उसका निचोड़ पाठकों के सामने धर कर, उन पर प्रभाव डालने का, यत्न किया जाता है।

---

# ढांचे के उदाहरण

## पढ़ने के लाभ

भूमिका

शिक्षित पुरुष की पहचान—

सत असत विवेकिनी बुद्धि और आत्मज्ञान-शक्ति।

इस शक्ति के साधन—

निरीक्षण।

मनन।

स्वाध्याय—पुस्तकावलोकन।

विषय-निरूपण

पढ़ने की महत्ता—

मानसिक-शक्ति की शुद्धि का साधन।

दूसरों के अनुभव-जन्य ज्ञान की प्राप्ति।

घर बैठे विद्वानों का सत्सङ्ग।

निरीक्षण और अनुभव का शिक्षक।

सामग्री संग्रह कराने वाला।

परिहार-योग्य दोष—

दुश्चित्तापन—पढ़ रहे हैं ध्यान नहीं है।

अन्धविश्वास—बिना समझे निगल लेना।

पक्षपात—पहले से ही विरुद्ध भाव रख कर पढ़ना।

पढ़ने के अन्य उपयोग—

सार्वलौकिक ज्ञान वृद्धि।
चैतन्यता।
चरित्र संगठन।
व्यवहारिक ज्ञान।

परिणाम

विद्वानों का पुस्तकों द्वारा सत्सङ्ग, शुद्ध अन्तःकरण और दृढ़ भक्ति से उनके वचनों को धारण करने का उपदेश।

—:०:—

# विद्यार्थियों के कर्तव्य

## भूमिका

१. विद्यार्थी अवस्था जीवन की सब से श्रेष्ठ अवस्था है।

(क) इस समय संस्कारों का दृढ़ प्रभाव होता है।
(ख) ये संस्कार भावी जीवन की नीव बांधते हैं।

२. विद्यार्थियों के बनने अथवा बिगड़ने पर जातिओं का बनना बिगड़ना निर्भर है।

३. विद्यार्थियों को प्रारम्भ से ही उनके कर्तव्य-ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए।

## निबन्ध का विकास

१. प्रथम कर्तव्य—आज्ञा पालन

(क) माता पिता की आज्ञा।
(ख) गुरू का उपदेश।
(ग) योग्य, विद्वान बड़ों का कथन।

२. दूसरा कर्तव्य—समय का उपयोग

(क) दिनचर्य्या बनाना।

(ख) गप्पबाज़ी छोड़ना।

(ग) समय नष्ट करने वाले खेलों का परित्याग।

३. तीसरा कर्तव्य—व्यवस्था-बद्ध जीवन, इसके लाभ

(क) उद्दण्डता नष्ट होती है।

(ख) आदतें सुधरती हैं।

(ग) आज्ञा पालन का अभ्यास बढ़ता है।

(घ) संघ के गुणों का ज्ञान होता है।

(ङ) मिलकर कार्य्य करने की शक्ति आती है।

४. चौथा कर्तव्य—स्वत्वाभिमान

(क) निर्भय रहें।

(ख) झूठ न बोलें।

(ग) निन्दा चुगली छोड़ दें।

(घ) चोरी न करें।

(ङ) कमीनी बातों से घृणा।

५. पांचवां कर्तव्य—वीर्य्य-रक्षा

(क) नित्य प्रति व्यायाम।

(ख) आपस में अश्लील बातों से घृणा।

(ग) गन्दे उपन्यासों से परहेज़।

(घ) सादा जीवन।

(ङ) बुरी संगत से बचना।

६. छठा कर्तव्य—स्वावलम्बन

(क) अपना पाठ आप तय्यार करना।

(ख) दूसरों की नकल से घृणा ।

(ग) मेहनत मज़दूरी की आदत डालना ।

७. इन कर्तव्यों पर आरूढ़ रखने वाले साधन—

(क) ईश्वर पर विश्वास ।

(ख) नित्य प्रति व्यायाम ।

(ग) महापुरुषों की जीवनियों का पाठ ।

(घ) सेवा धर्म का अमली सेवन ।

(ङ) अपने देश का हित-चिन्तन ।

### परिणाम

१. विद्यार्थी जीवन जीवन-संग्राम की तय्यारी का समय है ।

२. प्रत्येक विद्यार्थी को बड़े परिश्रम से अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ होना उचित है ।

—:०:—

## जातीय त्योहारों की उपयोगिता

### भूमिका

१. जातीय त्योहारों का उत्पत्ति कारण—

(क) जाति की कोई महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटना ।

(ख) जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले महापुरुषों के जन्म दिन ।

(ग) ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी दिवस ।

## विचार

१. जातीय त्योहार राष्ट्र-निर्म्माण के सहायक हैं। क्योंकि-

(क) इनके द्वारा इतिहास की शिक्षा दी जाती है—जैसे रामलीला।

(ख) देश से बाहर प्रवास करने वाले लोगों में जातीय जीवन बना रहता है।

(ग) महापुरुषों के जन्मदिन मनाने से उनके निर्दिष्ट पथ का ध्यान रहता है।

(घ) सर्वत्र, सब स्थानों में नियत तिथियों पर, त्योहार मनाने से लोगों में एकता के भावों का सञ्चार होता है।

२. ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी त्योहारों के लाभ—

(क) ये त्योहार हमें प्रकृति के सौन्दर्य्य का पाठ पढ़ाते हैं।

(ख) मूढ़ से मूढ़ पुरुष को भी इनके द्वारा, अपने जीवन को ऋतु के अनुसार बनाने की, शिक्षा मिलती है।

३. हमारे प्रसिद्ध त्योहारों की नामावली और उनका संक्षिप्त ब्योरा—

(क) होली। (घ) विजयादशमी।
(ख) कृष्णाष्टमी। (ङ) दीप-माला।
(ग) रामलीला। (च) रक्षा बन्धन।

## परिणाम

१. जातीय त्योहारों को मनाना हमारा कर्तव्य है।

२. इनको वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार बनाना उचित है।

३. हमें अपने बच्चों को बचपन से ही जातीय त्योहारों की महत्ता सिखलानी चाहिए।*

—:०:—

## ढांचा बनाइए

निम्नलिखित विषयों के ढांचे बनाइए—

१. भारत में एक भाषा की आवश्यकता क्यों है?
२. प्रारम्भिक शिक्षा से लाभ।
३. राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का स्थान।
४. श्रीतुलसीदास जी की साहित्य-सेवा।
५. माननीय गोखले का विद्यार्थी-जीवन।
६. भारत की निर्धनता दूर करने के उपाय।
७. गो-रक्षा के लाभ।
८. पुस्तकालयों की उपयोगिता।
९. राजा राममोहन राय का सुधार कार्य्य।
१०. म्युनिसिपल कमिश्नर के कर्तव्य।
११. अवध प्रान्त में कृषि जीवन।
१२. भारतीय धनिकों की फ़ज़ूल खर्ची।
१३. प्रेम-महाविद्यालय में विद्यार्थी-जीवन।



---

*आवश्यकतानुसार इन ढांचों को बढ़ा घटा सकते हैं। मैंने केवल उदाहरणार्थ इन्हें लिखा है—लेखक

# निबन्ध-रचना

**१–शीर्षक**—निबन्ध-रचना से पहिले उसका शीर्षक निश्चित कर लेना परमावश्यक है। निबन्ध की एकता, उसके प्रत्येक अङ्ग का शीर्षक के साथ स्पष्ट सम्बन्ध होने पर, निर्भर है। शीर्षक के निश्चित हो जाने पर लेखक को, विषय से इधर उधर, भटकने की सम्भावना कम रहती है; और असली विषय की सीमा उसके मन में अच्छी प्रकार निर्धारित हो जाने के कारण उसे लेख लिखना सहज हो जाता है। इसके अतिरिक्त, शीर्षक के अनुसार विषय का लेखबद्ध करना, लेख के पूर्ण होने पर शीर्षक निश्चित करने की अपेक्षा, सुगमतर है। यदि निबन्ध पहिले लिख लिया जाय तो बाद में उसके अनुकूल शीर्षक मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में निबन्ध का शीर्षक या तो विषय की सीमा को उल्लङ्घन कर जाता है, अथवा उसे संकुचित बना देता है। अगर शीर्षक पहिले निश्चित कर लिया जाय तो लेखक लिखते समय निबन्ध की तदनुकूल काट छाँट कर सकता है, और उसे अपने विषय की निश्चित सीमा के अनुसार लेख-पूर्ति करने में सुगमता मिलती है। उदाहरणार्थ जब हम "पालतू पशुओं के स्वभाव" शीर्षक लेख पढ़ें और उसमें केवल लेखक की घरेलू गैया का ही वर्णन पाएं तो उस लेख को पढ़ने वाला यह भांप जायगा कि लेखक ने निबन्ध लिखने के बाद अपना शीर्षक निश्चित किया है; क्योंकि कोई भी समझदार व्यक्ति उपर्युक्त शीर्षक रख कर उसमें केवल अपनी घरेलू गैया का ही वर्णन नहीं

करेगा। शीर्षक निश्चित किए बिना लेख लिखना ऐसा ही है जैसे सिर का आकार जाने बिना टोपी ख़रीदने जाना। ऐसी दशा में या तो टोपी बड़ी ही होगी या छोटी ही—कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य ही रह जायगी। इसके विपरीत यदि पहले से ही सिर का आकार निश्चित करके टोपी ख़रीदी जाय तो वह अपनी इच्छानुकूल मिल सकती है। यही बात शीर्षक के सम्बन्ध में है।

अब हम शीर्षक चुनने के नियम बतलाते हैं—

(क) शीर्षक स्पष्ट होना चाहिए। अनिश्चित, सन्दिग्ध, अस्पष्ट और वक्र शीर्षक त्याज्य हैं। विषय की विचित्रता वश यदि शीर्षक के भास में विलक्षणता आ जाए तो वह क्षन्तव्य है, परन्तु उस विलक्षणता में असभ्यता का आभास न होना चाहिए। यदि लेखक, केवल पुस्तक विक्रयार्थ अथवा कौतूहल वश, शीर्षक में विलक्षणता भरता है तो उसका वह कर्म अति निन्दनीय समझा जायगा।

(ख) शीर्षक छोटा तो हो, परन्तु अपने विषय का स्पष्टता से द्योतक होना चाहिए। शीर्षक की सूक्ष्मता विषय का विस्तार कर देती है, इसलिए जहां तक हो सके शीर्षक को विषय की सीमानुकूल जामा पहिराना उचित है। शीर्षक में यथासम्भव क्रियाओं को स्थान देना ठीक नहीं।

(ग) शीर्षक निबन्ध की ध्वनि तथा उसके गुण का सूचक होना चाहिए। उदाहरणार्थ प्रश्नात्मक शीर्षक तार्किक निबन्ध का द्योतक होता है। "गंगा-प्रवाह में अंधेरी रात"—शीर्षक, विषय की भयङ्करता जनाता है; "तिरिया-चरित्र' में स्त्रियों के चरित्र-दोष की ध्वनि आती है। इसी प्रकार लेखक को अपना शीर्षक बड़ी सावधानी से चुनना चाहिए।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि शीर्षक ऐसा होना चाहिए कि देखने वाला फौरन निबन्ध की नाड़ी पहचान जाय। बहुत सी पुस्तकें अस्पष्ट शीर्षकों के कारण ही नहीं पढ़ी जातीं। बहुतों के नाम पाठकों को भ्रम में डाल देते हैं। इन सब दोषों से बचने के लिए ऊपर के नियम लिखे गए हैं।

—:o:—

## अभ्यास (Exercise)

१. निम्नलिखित शीर्षकों की परीक्षा कीजिए—

१. काल।
२. मनुष्य और संसार।
३. प्रारम्भिक-शिक्षा।
४. लार्ड मेकाले।
५. किसान और सरकार।
६. आंख की किरकिरी।
७. मनुष्य का कर्तव्य।
८. कर्तव्य-कर्म।
९. पावस-परमा।
१०. स्वर्ग लोक।
११. हमारी यात्रा।
१२. जीवन विजय।
१३. राष्ट्र-भाषा।
१४. पतन और उत्थान।
१५. जापान की उन्नति।
१६ आत्म-विचार।
१७. सूरदास।

२. निम्नलिखित शीर्षकों को संक्षिप्त रूप में लाइए—

(१) स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए लाभकारी बातें।

(२) भारतीय किसानों के सब दुःख दूर करने का एक मात्र वैज्ञानिक तरीका।

(३) मांस-भक्षण वेदानुकूल है या नहीं ? इसकी यथार्थ दार्शनिक मीमांसा।

(४) धर्मात्मा मनुष्य ही मोक्ष को पाता है।

(५) मुसलमानी धर्म के दोष और हिन्दू धर्म की महत्ता पर विचार।

(६) रुपया पैसा पैदा करने के उपाय।

(७) व्यायाम करने के वे साधन जिनका प्राणायाम के साथ सम्बन्ध है।

(८) जापान वाले किस प्रकार खाना बनाते हैं, उसका यथाविधि वर्णन।

(९) हिन्दी-भाषा सीखने की सब से पहली पुस्तक।

(१०) ग्रामीण लोगों की दशा सुधारने वाली सभा समितियां।

* * * * *

२—भूमिका—(क) भूमिका में निवन्ध सम्बन्धी सिद्धान्त की स्पष्ट और उदार विज्ञापना होनी चाहिए। लेखक को यहां विषय सम्बन्धी आवश्यक सीमा निर्धारित करने और अपनी स्थिति जतलाने का वहुत अच्छा अवसर मिलता है। जहां तक हो सके पाठकों को लेखक के उद्देश्य का परिचय शीघ्र होना चाहिए। लेखक और पाठक में परस्पर सहानुभूति स्थापित होना दोनों के लिए लाभकारी है॥

(ख) भूमिका में लेखन-शैली का ढंग बतला देना भी उचित होगा। यह बात लेखक की संगृहीत सामग्री और उसके उद्देश्य पर निर्भर है। लेखक उस निबन्ध को क्यों लिखने लगा है? उसका पाठकों पर क्या अधिकार है? उसकी योग्यता पर पाठक क्यों विश्वास करें? इत्यादि प्रश्न स्वभावतः ही पाठकों के हृदय में उठते हैं। इस हेतु लेखक को अपनी विद्या, अनुभव तथा उत्कृष्ट विचारों का नमूना भूमिका में अवश्य दिखलाना होगा, जिससे कि पाठकगण दत्तचित्त होकर लेखक की बात सुनें, और उसके एक एक शब्द पर विचार करते हुए उसके अनुभव से फ़ायदा उठावें। यदि पाठक आरम्भ से ही लेखक के अभिप्राय को समझ जाते हैं और उनका ध्यान लेखक की विद्वत्ता, योग्यता और अनुभव की ओर खिंच जाता है तो उनके लिए विषय का समझना सुलभ हो जात।है अपने पाठकों को पहले से ही अंधेरे में रख—उनकी उपेक्षा कर—कोई भी लेखक अपने उद्देश्य का पालन नहीं कर सकता।

(ग) निबन्ध की भूमिका लेख के अनुरूप होनी चाहिए; अर्थात् जितना बड़ा निबन्ध हो उसी की सादृश्य-समता ( Proportion ) के अनुसार भूमिका भी हो। बड़े निबन्ध की छोटी भूमिका होना अच्छा है, किन्तु छोटे निबन्ध की बड़ी भूमिका होना ठीक नहीं। लेखन-कला में इसका कोई ख़ास नियम तो है नहीं, क्योंकि बड़े बड़े प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों में कहीं कहीं भूमिका पुस्तक के परिमाण से बढ़ गई है, तोभी यथासम्भव नवीन लेखकों को लेख के अनुरूप ही भूमिका की सीमा रखनी चाहिए।

(घ) लेख को आरम्भ करने में सब से प्रथम उसके उद्देश्य का ध्यान रखना उचित है। यदि लेखक स्वयं अपने

उद्देश्य में अनिश्चित है, तो उसके पाठक कभी भी उसके आशय को नहीं समझ सकेंगे, इसलिए लेखक को अपना लक्ष्य निश्चित कर फिर विषय में प्रवेश करना ठीक होगा। पहले हम इस सम्बन्ध की मुख्य मुख्य बातों पर विचार करते हैं—

(१) सब से बड़ी कठिनाई लेख के आरम्भ करने में है। किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाय कि पाठक का ध्यान विषय की ओर खिंचे। यहां असत् से सत् का भाव दिखलाना है। आरम्भ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें विचारों का शृङ्खला-बद्ध विकास हो। विशिष्ट संज्ञा का परिचय कराये बिना सर्वनाम से विषय का आरम्भ करना उचित नहीं। किसी भी दशा में विषय का अस्पष्ट होना पाठक की रुचि को कम कर देता है। अतएव लेखक को विषय का प्रारम्भ किसी भ्रमोत्पादक शब्द अथवा वाक्य से नहीं करना चाहिए।

(२) बहुत से लेखक निबन्ध के शीर्षक का नाजायज़ फायदा उठाते हैं। वे शीर्षक को प्रथम वाक्य का रूप देकर विषय का विस्तार करने की चेष्टा करते हैं, यह शैली भी भ्रमोत्पादक है। प्रारम्भिक वाक्यों का शीर्षक से स्वतन्त्र, किन्तु सार्थक, अस्तित्व होना चाहिए। शीर्षक को निबन्ध का अंग बनाने से उसका प्रभाव कम हो जाता है। तात्पर्य यह है कि भूमिका का शीर्षक से पृथक, परन्तु सुबोध, होना आवश्यक है।

(३) विषय से दूर हटी हुई बड़ी लम्बी चौड़ी भूमिका बांधना लेखन-शैली का भारी दोष है। इससे पाठक व्यर्थ ही भूल में फंस जाता है। उसके मन में विषय-सम्बन्धी स्पष्ट संस्कार न जमने से वह लेखक के अभिप्राय से दूर हट जाता है, और बाद में जब उसे अपनी भूल मालूम होती है तो उसका लेखक पर विश्वास नहीं रहता।

(ङ) भूमिका लिखने में सफलता प्राप्त करने के हेतु विद्वान् लेखक प्रायः निम्नलिखित युक्तियां काम में लाते हैं—

(१) किसी कथा द्वारा, जो विषय के स्पष्ट करने में सहायता दे, लेख को आरम्भ करना अच्छा है। बड़े बड़े विद्वान् लेखक किसी कहावत अथवा आख्यायिका द्वारा भूमिका बांध अपने पाठकों को वश में कर लेते हैं। कई प्रश्नात्मक वाक्यों द्वारा विषय को आरम्भ कर, अपने पाठक में कौतूहल उत्पन्न कर, फिर धीरे धीरे निबन्ध को रोचक बना अपने विषय में प्रवेश करते हैं।

(२) विषय में सीधा प्रवेश करने की शैली सर्वोत्तम है। प्रायः आधुनिक लेखक इसी शैली का अनुकरण करते हैं। इससे लेखक को विषय-पूर्ति करने में बड़ी सुगमता होती है; क्योंकि पाठक लेखक के मन की बात समझ उसका साथ देने के लिए तत्काल तय्यार हो जाता है। कथात्मक लेखों में वर्णन की अपेक्षा घटना के कार्य्य-क्रम से आरम्भ करना विषय को अधिक मनोरंजक बनाता है। जब पाठक की रुचि जाग उठे तो फिर धीरे धीरे वर्णन का सिलसिला छेड़ना उपयुक्त होगा। पाठक को जबतक लेख में मज़ा आने नहीं लगता तबतक वह अपना समय विषय सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों में ख़र्च करने के लिए उद्यत नहीं होता। इसलिए कुशल लेखक भिन्न भिन्न प्रयोगों से अपने उपन्यासों अथवा कहानियों में आरम्भ से ही मनोरंजकता भरते हैं। उदाहरणार्थ—

"बँग ! बँग !

"संध्या का समय था। कलकत्ता के वीड्न स्केअर में सैकड़ों मनुष्य हवाखोरी कर रहे थे। विद्यार्थियों के झुण्ड के झुण्ड

इधर उधर हरी घास में बैठे हुए ठण्डी पवन का आनन्द ले रहे थे। इतने में 'बैंग! बैंग!' की आवाज़ ने सब को चौकन्ना कर दिया। लोग घबरा कर इधर उधर देखने लगे। थोड़ी देर सन्नाटा रहा। इसके बाद 'बापरे! मुझे गोली लगी' की आवाज़ आई। लोग उधर दौड़े तो एक विचित्र दृश्य देखने में आया।"

इस प्रकार का आरम्भ पाठक को अपनी ओर खींच लेता है। अच्छे अच्छे कथा-लिक्खाड़ तथा उपन्यासकार ऐसे ही भिन्न भिन्न प्रयोगों को काम में लाकर अपने लेख की भूमिका को मनोरञ्जक बनाते हैं। नाटक के तौर पर बातचीत से भी कथा का प्रारम्भ किया जाता है, पर उस वार्तालाप में विशेष चित्ताकर्षक मसाला रहना चाहिए। कथा की भूमिका का एक ढंग यह भी है। जैसे—

"वह धीरे धीरे दबे पाओं जा रहा था। दूर से किसी को लालटेन लिए हुए आते देख वह फौरन एक ईंटों के ढेर के पीछे बैठ गया।"

इतनी भूमिका ही पाठक का चित्त पकड़ लेती है और दो वाक्यों में बहुत सी बातें कह दी जाती हैं। फ्रांसीसी लेखकों में एल्ज़ेण्डर डूमा ( Alexander Dumas ) के उपन्यास देखने योग्य हैं। उसकी वर्णन-शैली बड़ी ही रोचक है। हमारे हिन्दी पाठकों में जो अंग्रेज़ी जानते हैं उन्हें उस जगत-प्रसिद्ध लेखक के उपन्यासों का आनन्द अवश्य लेना चाहिए।

कथात्मक, वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों की भूमिका तथा उसके उत्थान आदि के विषय में हम विशेष रूप से आगे चल कर कहेंगे।

**३-विषय का विकास**—विषय के विकास के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहले कह दिया जा चुका है। अब यहां संक्षेप रूप से दो चार मोटी मोटी बातें लिख देते हैं—

(क) विषय के विकास में एकता ( unity ) मुख्य चीज़ है, उसका बराबर ध्यान रखना चाहिए। विषय से बाहर भागने वाला लेखक अपने आपको हास्यास्पद बनाता है।

(ख) एकता के साथ साथ लेख में ध्वनि का सादृश्य होना भी ज़रूरी है। यदि लेख तार्किक है तो उसमें सिलसिले वार तर्क द्वारा सब बातें सिद्ध कीजिए; यदि व्याख्यात्मक है तो उसका ताल वही रहे, व्याख्या का क्रम टूटने न पाए। वैज्ञानिक लेखों में भावपूर्ण कवित्व-शैली ( sentiments ) से काम नहीं चलता, वहां तुली हुई बातें, शुद्ध तर्कना, निर्दोष निरीक्षण-शक्ति चाहिए। जैसा विषय हो और जिस प्रकार के पाठकों के लिए निबन्ध लिखा जाय, उसी के अनुसार लेख में बराबर ध्वनि रहनी उचित है।

(ग) यौक्तिक-क्रम ( Logical Sequence ) के विषय में पहले लिख चुके हैं।

(घ) विषय के विकास में उसके भागों की लम्बाई का ध्यान भी रखना होगा। कोई हिस्सा बढ़ने घटने न पाये, विषय का सर्वाङ्ग पूर्ण विकास हो; तभी उसमें सुन्दरता आ सकती है।

**४-परिणाम**—लेख को पूर्ण करने का स्वाभाविक ढंग तो यही है कि जब आप अपना कथन पूरा कर चुकें तो लेख को समाप्त कर दीजिए। परन्तु वे लोग जो किसी निश्चित उद्देश्य से कलम उठाते हैं, अन्त में अपने अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने और पाठकों पर अपना प्रभाव डालने

के लिए थोड़े, किन्तु प्रभावशाली, शब्दों में अपने लेख का निचोड़ लिखते हैं। कुछ लेखक अन्त के भाग में पहुंच कर विषय को समेटते हैं और धीरे धीरे विषय का संक्षेप (Summary) करते हुए बड़ी खूबसूरती से उसको समाप्त करते हैं।

परन्तु विषयों की विभिन्नता के कारण उसकी समाप्ति के ढंग भी अलग अलग हैं। यदि विषय ऐतिहासिक हो तो लेखक को भविष्यद्वक्ता की तरह अन्त में भावी विचार प्रगट करने होंगे। छोटी छोटी कथाओं के अन्त करने का पुराना ढंग यह है कि फल-स्वरूप कोई उपदेश-तत्व नीचे धर देते हैं, जैसे पचतंत्रादि पुराने संस्कृत के ग्रन्थो में पाया जाता है। बहुत से लेखक विषय को पूर्ण करते समय, भूमिका को छूते हुए, अन्त को निचोड़-स्वरूप शीर्षक को लिख कर विषय की समाप्ति कर देते हैं। यह भी अच्छा ढंग है। कुछ लेखक अपने विषय का अन्त, विना अपने पाठकों को सावधान किए ही, कर देते हैं। पाठक वेचारा सन्न सा रह जाता है कि यह क्या हो गया। उसकी इच्छा पूरी किए विना ही कुशल लेखक उसको दमझांसा दे जाता है। यह प्रयोग नौसिखिए लेखकों के लिए उपयुक्त नहीं। इसमें वड़ी चतुराई की ज़रूरत है।

उपर्युक्त सब बातों को स्पष्ट करने के लिए हम आगे चल कर निवन्ध के एक एक भेद को पृथक पृथक लेकर, उसकी आवश्यक बातों की छानवीन करेंगे। यदि हो सका तो उसके नमूने दिखला अपने प्रेमी पाठकों के संशय दूर करने का यत्न करेंगे। पहले हम निवन्ध-विच्छेद तथा चिन्ह-विचार पर कुछ लिखते हैं, ताकि साधारण तौर पर निबन्ध-रचना विषय की पूर्ति हो जाय।

---

८

# निबन्ध-विच्छेद

सभी प्रकार के बड़े बड़े निबन्ध अपनी लम्बाई और जटिलता के अनुसार भिन्न भिन्न भागों और उपभागों में विभक्त किए जाते हैं। उनको पुस्तक, काण्ड, समुल्लास, खण्ड, पाद, परिच्छेद, प्रकरण, पाराग्राफ और वाक्य इत्यादि नामों से पुकारते हैं। उनकी लम्बाई और परिमाण का कोई विशेष नियम नहीं है; निबन्ध के आन्तरिक प्रबन्ध के अनुसार उनका परिमाण घट बढ़ सकता है।

इन भागों उपभागों के व्यवस्थापक नियम भी वैसे ही हैं, जैसे कि सारे निबन्धों के, जिन बातों का उल्लेख निबन्ध के सम्बन्ध मे पीछे किया गया है वही क़ायदे इन पर भी लागू समझने चाहियें। केवल भेद यह है कि इनके व्यवस्थापक नियमों की दो जातियां हैं, एक इनकी अपनी अन्दर की बनावट को ठीक रखती है और दूसरी इनके बाहर का सम्बन्ध स्थिर करती है।

उस बाहरी सम्बन्ध की स्थिरता के लिए लेखक महाशय आवश्यकतानुसार शब्द, उक्ति, वाक्य अथवा पाराग्राफ का प्रयोग करते हैं। यदि विचारों का आपस का सम्बन्ध क्रमबद्ध और स्पष्ट हो तो इस प्रकार के ढंगों की ज़रूरत ही नहीं रहती, और लेखन-कला सीखने का सब से श्रेष्ठ मार्ग तो विद्वान साहित्य-सेवियों की लेखन-शैली का विचार पूर्वक अध्ययन और मनन है, तो भी निबन्ध-विच्छेद के कुछ नियम हम अपने प्रेमी पाठकों की सेवार्थ उपस्थित करते हैं। विशेष

कर पाराग्राफ़, वाक्य और शब्दों के सम्बन्ध में मोटी मोटी बातें लिख कर हम इस विषय की पूर्ति करेंगे।

**१-पाराग्राफ़**—सब से पहले, पाराग्राफ क्या है? यह जानना ज़रूरी है। जब हम किसी विषय पर निबन्ध लिखने का विचार करते हैं तो हमारे मन ही में उस मज़मून के कई टुकड़े हो जाते हैं; और जब कुछ और गम्भीर विवेचना होती है तो उन टुकड़ों के भी छोटे छोटे टुकड़े निकल आते हैं। अब जब आप उन मानसिक संकल्प विकल्पों को लिखने बैठते हैं, तो अपने पाठक को मन की बात समझाने के लिए—उन छोटे छोटे विचारों का बोध कराने के लिए—कोई तरीका काम में लाते है। लेखन-कला की परिभाषा में, जब हम मुख्य विषय के किसी प्रकरण को आरम्भ करते समय पहली सतर का कुछ हाशिया छोड़ कर लिखते है तो, उसको पाराग्राफ करना कहते हैं। इस तरीके से पाठक को मुख्य विषय समझने में बड़ी सहायता मिलती है और वह बराबर एक प्रकरण के बाद दूसरा प्रकरण समझता चला जाता है।

इसमें दो मुख्य बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक तो यह कि क्या इस ढंग से उस विषय के स्पष्टीकरण में विशेष सहायता मिलती है? दूसरे, क्या इस पाराग्राफ का सारे निबन्ध से शुद्ध सम्बन्ध है?

**२-पाराग्राफ़ की लम्बाई**—पाराग्राफ बनाने का असली सिद्धान्त यह है कि यह मुख्य विषय के किसी एक विशेष भाग की व्याख्या करता है। जब उसकी व्याख्या हो चुकी तो पाराग्राफ पूर्ण हो जाता है, और नए प्रकरण से नया पाराग्राफ चलता है। जब लेखक एक पाराग्राफ खतम करके दूसरा आरम्भ करता है तो पाठक फौरन सावधान होकर नई बात

सुनने के लिए तय्यार हो जाता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि लेखक दो दो तीन तीन सतरों के बाद पाराग्राफों का तांता बांध देगा तो पाठक के लिए पाराग्राफ मामूली बात हो जायगी और उसका असली उद्देश्य नष्ट हो जायगा। इसलिए साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि पाराग्राफ उतना ही लम्बा होना चाहिए जिसमें एक कल्पना क स्वच्छन्द उद्भव हो सके; हां इतना लम्बा न हो कि पाठक बेचारा उकता जाय। लगभग एक सौ शब्दों से लेकर चार सौ शब्दों तक की लम्बाई के पाराग्राफ दक्ष लेखकों की पुस्तकों में देखे जाते हैं; अधिक संख्या सौ शब्दों तक के पाराग्राफ की ही निकलेगी। थोड़ा कहना और मतलब का कहना, यही प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है।

यह तो निश्चय हो गया कि प्रत्येक पाराग्राफ में ख़ास प्रकरण हो और उस पाराग्राफ का संगठन निवन्ध के अनुसार रहे, किन्तु यह भी देखना है कि प्रकरणों के अन्य जो भेद होंगे उनके पाराग्राफों की लम्बाई क्या होनी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर निवन्ध की निश्चित लम्बाई पर निर्भर है।

उदाहरणार्थ यदि निवन्ध का शीर्षक हो—"मेरे तीन मित्र" और उसकी लम्बाई आठ सौ शब्दों की ही रखनी पड़े तो मामूली तौर पर तीन मित्रों के लिए तीन पाराग्राफ ठीक जचेंगे। परन्तु आप की इच्छा तीन से अधिक पाराग्राफ करने की है तो उस दशा में—

१. मेरे पहले मित्र का जीवन-चरित्र।
२. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।
३. मेरे दूसरे मित्र का जीवन-चरित्र।
४. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।

५. मेरे तीसरे मित्र का जीवन-चरित्र।

६. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।

इस प्रकार आप छः पाराग्राफ बना कर अपने निबन्ध को प्रभावशाली बना सकते हैं। केवल भेद यही होगा कि पहले तीन बड़े पाराग्राफों की अपेक्षा अब आप छः छोटे पाराग्राफ कर सकेंगे।

**३-पाराग्राफ का भावपूर्ण वाक्य**—पाठक की आसानी तथा अपनी नीति-स्थिर रखने के लिए लेखक को अपना निश्चित अभिप्राय पाराग्राफ के आरम्भ अथवा अन्त में लिखना चाहिए। आधुनिक शैली के अनुसार पाराग्राफ के आरम्भ में एक भाव-पूर्ण वाक्य लिख दिया जाता है और बाद के वाक्य उस भाव का विकास और स्पष्टीकरण करते हैं।

कथात्मक लेखों में ऐसा करने की कम आवश्यकता है। वहां घटनाओं का क्रम बना रहना अत्यावश्यक है। पाठक उस क्रम को बड़ी आसानी से पकड़ लेता है। वहां भाव-पूर्ण वाक्यों में माथापच्ची करने से उसकी कथा का मज़ा जाता रहता है।

—:o:—

## अभ्यास (Exercise)

१. आठ सौ शब्दों के निम्नलिखित निबन्धों के लिए पाराग्राफ-प्रकरण बतलाइए—

(क) गुरू गोविन्द सिंह जी का बलिदान।

(ख) मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की पितृभक्ति।

(ग) द्रोपदी का स्वयम्वर।

(घ) क्रिकेट का खेल।

(ङ) गन्दे उपन्यासों का विद्यार्थियों पर प्रभाव।
(च) कालेज में मेरा प्रथम दिन।
(छ) पत्र-सम्बाददाता के कर्तव्य।

२. निम्नलिखित पाराग्राफों के लिए भाव-पूर्ण वाक्य लिखिए—

(क) मेरी लम्बी सैर।
(ख) शिवाजी का औरङ्गज़ेब को चकमा।
(ग) मेरा नौकर।
(घ) कालेज बोर्डिङ्ग हौस में विद्यार्थी-जीवन।
(ङ) झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता।
(च) महात्मा हंसराज जी का स्वार्थ-त्याग।
(छ) आम का मज़ा।
(ज) बुद्धू कहार की धूर्तता।
(झ) यदि मैं करोड़पति बन जाऊं।
(ञ) मेरी पूज्या माता।
(ठ) काशी–विश्वनाथ के दर्शन।

**४–पाराग्राफ की सामग्री का प्रबन्ध**—निबन्ध आरम्भ करने से पहले प्रत्येक पाराग्राफ की मुख्य बात का अच्छी प्रकार मनन कर लीजिए। प्रत्येक पाराग्राफ को एक छोटा निबन्ध समझ कर उसका वैसे ही संगठन कीजिए। जब निबन्ध अपने पाराग्राफों के निश्चित उद्देश्यों के साथ चित्र-वत् आपके सामने खड़ा हो जाय, और आप निबन्ध के शरीर का भली प्रकार संगठन कर लें तो फिर प्रत्येक पाराग्राफ की सामग्री का प्रबन्ध सहज हो जाता है। प्रत्येक पाराग्राफ में एकता, यौक्तिक-क्रम और ओज का वैसे ही ध्यान रखना पड़ेगा।

**५-पाराग्राफ और निबन्ध का पारस्परिक सम्बन्ध**—मोटे तौर से तो हम इस विषय को ऊपर बतला चुके हैं, परन्तु एक बात और है। जैसे कुशल शिल्पी जब मकान का नक़शा बनाता है तो वह पत्थर, लकड़ी आदि सामान का आकार, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, पहले निश्चित कर लेता है। सब चीज़ें गिनी हुई संख्याबद्ध आती हैं और उनको अपनी अपनी जगह धरते हैं। परन्तु केवल धर देने से काम नहीं चलता, उनको अपनी अपनी जगह बिठलाने के लिए सीमेन्ट, तार आदि वस्तुओं की ज़रूरत पड़ती है। यही दशा पाराग्राफों की है। उनको ऊपर नीचे एक दूसरे के साथ सीमेन्ट करने के लिए शब्दों, उक्तियों तथा वाक्यों का प्रयोग किया जाता है, ताकि एक पाराग्राफ स्वाभाविक रीति से दूसरे के साथ जुड़ जाए, बीच में कोई छिद्र, कोई छूट, न रहने पावे। उन शब्दों उक्तियों तथा वाक्यों का प्रयोग पाराग्राफ के आरम्भ में किया जाता है। उदाहरणार्थ "शिक्षा का आदर्श" में, विषय-योजना, का प्रकरण देखिए—

(१) किसी जाति में प्रचलित, शिक्षा-प्रणाली की पहचान, उसके इतिहास से होती है।

(२) भारतवर्ष के इतिहास में जिस समय हम महमूद गज़नवी के सत्रह धावों का वर्णन पढ़ते हैं तो चकित हो जाते हैं। ।

(३) भारतवर्ष और रूस के लोगों में इतना भेद क्यों ?

(४) इतनी दूर क्यों जाते हो ?

(५) भारतीय समाज में संघ-शक्ति का ऐसा प्रभाव क्यों है?

(६) चरम सीमा पर पहुंचे हुए इस व्यक्ति-वाद की शिक्षा ने भारत की सब नसें ढीली कर दी हैं।

(७) इस व्यक्ति-वाद का भयङ्कर प्रभाव भारत पर पड़ा।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रत्येक पाराग्राफ का पहला वाक्य ऐसा होना चाहिए कि वह पिछले पाराग्राफ का सम्बन्ध बराबर कायम रखे। पाराग्राफों में परस्पर सम्बन्ध जारी रखने के चार तरीके हैं—

(क) वाक्यों द्वारा पिछला सम्बन्ध जताया जाता है, जैसे-

"यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिए।"

(ख) सम्बन्ध स्थिर रखने वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे—पहला, दूसरा, अन्त में, इसके अनन्तर, फिर, किन्तु, परन्तु, लेकिन, तौभी, इसके विपरीत, अस्तु, अन्यथा, इससे, क्योंकि, क्योंकर, तब, बहुधा, अतएव, कम से कम, इसलिए, अच्छा, इसके अनुसार, सारांश, परिणाम, इस कारण, विशेष कर, इस हेतु, इस प्रकार, इस दशा में, यदि, ऐसा, यद्यपि, तदपि, तथापि, यथा, उपर्युक्त, प्रायः, साधारणतया, सामान्यतया, थोड़े में, इत्यादि।

(ग) शब्दों तथा उक्तिओं को दोहराने से भी पहले का सम्बन्ध स्पष्ट किया जाता है, जैसे—

प्राणायाम के चार तरीके विद्यार्थियों के लिए . . उनमें से . .. ..सब से आसान तरीका. . . दूसरे तरीके में एक विशेष बात . . . . . .. . . ..

* * * * *

पाराग्राफ के सम्बन्ध में जो बातें ऊपर बतलाई गई हैं वे अत्यन्त उपयोगी है, विद्यार्थियों को उनसे बड़ा लाभ पहुंचेगा। परन्तु यह हम बल-पूर्वक कह देते है कि नियम उपनियम कुछ काम नहीं देते, यदि स्पष्ट विचार करने की आदत न हो। सब से पहली आवश्यकता निर्दोष-चिन्ताशील बनने की है। विद्यार्थियों को शुद्ध मनन करने का अभ्यास डालना चाहिए।

—:०:—

## वाक्य-रचना

वाक्य में तीन ख़ास बातों का ध्यान रखना पड़ता है— स्पष्ट सम्बन्ध, निर्दोष संगठन, और शुद्ध व्याकरण। नौसिखिए लेखकों के लिए वाक्य-रचना टेढी खीर मालूम होती है; जिनको अभ्यास है उनके लिए यह साधारण बात है। पटु-लेखक वाक्य को तोड़ मरोड़, भेद छेद, अंग भंग, बढ़ा घटा, अदल बदल, छोटा बड़ा, जैसे उसकी मौज हो, कर सकता है। उसके लिए यह बच्चों का खेल है। लेखन-शैली तथा ओज के ख़्याल से शुद्ध व्याकरण की अपेक्षा वाक्य-विन्यास-चातुरी अधिक आवश्यक वस्तु है। व्याकरण की अशुद्धियों को तो चैतन्य पाठक थोड़े परिश्रम से ठीक कर लेता है, किन्तु वाक्यों की भद्दी रचना गड़बड़ाध्याय कर देती है। वाक्य-रचना के साधारण नियम वे ही हैं जो पाराग्राफ में कह चुके हैं। यदि इस विषय में अधिक जानना हो तो अन्य हिन्दी व्याकरणों में देख लीजिए। पुस्तक बढ़ जाने के भय से हम इस पर अधिक नहीं लिख सकते।

—:o:—

## शब्द-कोष

यदि लेखक का शब्द-भण्डार अत्यन्त परिमित है तो उसकी विचार-शक्ति भी वैसी ही समझिए। शब्द, भाव का निश्चित चिन्ह है, इसलिए शब्द-कोष, लेखन-कला का मुख्य सहायक है।

कोई भी लेखक अपनी लेखनी मे वल, ओज, और प्रभाव नहीं भर सकता, यदि उसके शब्द-कोष मे तीन प्रधान गुणों का अभाव है—प्रथम सत्यता ( Exactness ), दूसरे व्यंजकता (Suggestiveness), तीसरे औचित्य ( Propriety ), अब हम एक एक की व्याख्या करते है।

**१–सत्यता**—शब्द-कोष में सत्यता के अर्थ यह हैं कि लेखक के शब्द उसके अभिप्राय को ठीक ठीक प्रगट करें। प्रायः, उचित शब्द विशेष जाति का बोधक होने के कारण, संकीर्ण भाव रखता है। पशु सामान्य व्यापकता-बोधक शब्द है, घोड़ा विशेष जाति-बोधक होने से संकुचित अर्थों का द्योतक है। लिखने की सामग्री सामान्यार्थक है; कागज, स्याही, कलम विशेष अर्थों को जनाते हैं। कुछ दूर पर सामान्यार्थक है; एक मील पर विशेष अर्थ का निरूपण करता है। दुराचारी सामान्य शब्द है; पर-स्त्रीगामी विशेषार्थ द्योतक है। साधु साधारण शब्द है; कनफटा, निर्मला, उदासी विशेष अर्थों को जनाते हैं। लेखक को विशेषार्थक शब्दों का अधिकता से उपयोग करना चाहिए। इसके दो लाभ हैं—एक तो लेखक स्वयं अपना भाव स्पष्ट समझने में वाध्य हो जाता है और उसकी संदेहात्मक-विचार ( Vague thinking ) की हानिकारक आदत छूट जाती है; दूसरे अधिकांश लोग साकार भावों द्वारा चिन्तन करते हैं, निराकार द्वारा नहीं। विशेष शब्द साकार वस्तु का बोधक होने से तत्काल समझ में आ जाता है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समाचार देते हुए एक समाचार-पत्र का सम्वाददाता लिखता है—

"स्टेशन पर लोगों ने सभापति महोदय का सप्रेम-स्वागत किया। इसके बाद स्टेशन से सवारी चली।"

"सप्रेम-स्वागत" सामान्य, अनिश्चित अर्थों का द्योतक है। इसके स्थान पर—

"स्टेशन पर लोगों ने सभापति महोदय का फूलों की माला तथा पुष्पों की वर्षा द्वारा सप्रेम-स्वागत किया।"

ऐसा वर्णन अधिक स्पष्ट और निश्चित है। एक विद्यार्थी अपने घर पत्र लिखता है—

"जब से मैं यहां आया हूं मेरा समय बड़े आनन्द से बीतता है। यद्यपि पठन-पाठन में बहुत सी कठिनाइयां हैं, किन्तु वे सब जल्द दूर हो जायेंगी। मैंने आपको पिछले दो महीने से इसलिए पत्र नही लिखा कि यहां एक ख़ास घटना हो गई थी।"

इस चिट्ठी में कोई बात स्पष्ट नहीं, सब गोलमाल है। इसके लेखक को प्रमत्त-विचार (careless thinking) की बीमारी है। उसको लिखना चाहिए था—

"जब से मैं स्कूल-बोर्डिंगहौस में आया हूं कबड्डी, फुटबाल, क्रिकेट, कोई न कोई खेल बराबर होता ही रहता है; समय बड़े आनन्द से बीतता है। यद्यपि गणित का विषय मेरे लिए अभी बड़ा कठिन मालूम होता है और संस्कृत भी कुछ सरल नहीं, तोभी मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरी ये सब कठिनाइयां धीरे धीरे दूर हो जायेंगी। मैंने आपको पिछले दो महीने से इसलिए पत्र नहीं लिखा कि हमारे बोर्डिंगहौस का कुछ भाग वर्षा में गिर जाने के कारण हम लोग नया मकान बदलने के संकट में थे। अब हम नये मकान में आ गये हैं।"

यह चिट्ठी स्पष्ट है। इसमें सब बातें ठीक ठीक मालूम होती हैं; पढ़ने वाला लिखने वाले की यथार्थ कठिनाइयों को समझ जाता है। स्मरण रहे कि सत्य और यथार्थ लिखने के लिए अच्छा शब्द-संग्रह चाहिए। पांच चार सौ शब्द किसी विदेशी भाषा के जानकर उस देश में आसानी से सैर सपाटा तो हो सकता है, किन्तु किसी भाषा का अच्छा लेखक बनने के लिए कम से कम आठ नौ हज़ार शब्दों के जानने की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक शेकसपियर ने कुल १५,००० शब्दों द्वारा अपनी पुस्तकों में विविध मानुषी लीलाओं का चित्र खेंचा है। आप अपने शब्द-भण्डार की परीक्षा तो कीजिए?

प्रायः अधिकांश शिक्षित मनुष्यों के पास दो प्रकार का शब्द-संग्रह होता है—एक तो पुस्तक, कविता, लेख, बातचीत समझने के लिए, दूसरा अपने व्यवहार के लिए। बहुत से शब्द जब पुस्तकों में आते हैं तो हम उनके अर्थ समझ लेते हैं, परन्तु हम उन्हें प्रयोग में नहीं लाते ; हमें वे व्यवहार के समय सूझते ही नही। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि हमने उन शब्दों को अपनाया नहीं है। यदि हम अपनी बोल चाल, अपने लेख, अपनी कविता में नए नए शब्दों का प्रयोग किया करें तो निरन्तर व्यवहार से वे शब्द हमारे हो जांय और धीरे धीरे हमारा शब्द-संग्रह बढ़ता जाय। इसलिए जब कभी आपको लेख लिखते समय अपना विचार प्रगट करने में कठिनाई हो तो फौरन डिक्शनरी की शरण लीजिए। जो शब्द आपका अपना है, उसके दो चार पर्य्यायवाची शब्दों की तलाश कर, जो ठीक आपका अभिप्राय प्रगट करे, उसको काम में लाइए। यही मार्ग शब्द-संग्रह बढ़ाने का है।

शब्द-कोष में "सत्यता" का विषय अब स्पष्ट हो गया होगा। अधिक शब्द-भण्डार होने से ठीक अपने अभिप्राय का सूचक शब्द आसानी से मिल सकता है। जब हमारे पास हमारे विचारों को प्रगट करने के लिए शब्द ही नही है तो फिर 'सत्यता' कहां से आ सकती है।

**२—व्यंजकता**—भाषा में 'व्यंजकता' से अभिप्राय उस शक्ति से है, जो मानसिक-कल्पना में उत्तेजना उत्पन्न करती है। सब से अधिक व्यंजकता-पूर्ण शब्द वे है, जो हों तो आम बोल-चाल के, किन्तु जिनका नए रूप में व्यवहार किया जाय ; जैसे फूल खिलता है। खिलना आम मामूली बोलचाल का शब्द है। "फूल खिलता है", इसमें इसकी कोई व्यंजकता मालूम नहीं होती, परन्तु जब हम कहते हैं—"उस नवयुवक के चेहरे का

रंग खिल गया" तो इसमें मज़ा आने लगता है। हालां कि शब्द वही है, किन्तु उसका नए रूप में व्यवहार उसमें व्यंजकता भर देता है। और देखिए, "वह ग़रीब बेचारा आंसु बहाने लगा"। 'आंसु बहाना' मामूली क्रिया है; यहां इस वाक्य में इसमें कोई व्यंजकता नहीं, परन्तु—"हिमालय की चोटियां भी आंसु बहा रही हैं"—यहां उसी क्रिया में व्यंजकता आ गई। "मैंने घर में प्रवेश किया", यहां प्रवेश किया में कोई रोचकता, नवीनता नहीं है, परन्तु–"मैंने निद्रा देवी के भवन में प्रवेश किया"—यहां इसमें व्यंजकता आ जाती है। "पण्डित जी ने मुझे आशीर्वाद दिया"; आशीर्वाद यहां साधारण शब्द है, इसमें कोई ख़ास बात नहीं, परन्तु—"वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद दे रही है।" यहां आशीर्वाद में व्यंजकता है, इसका मज़ा कुछ और है। "उसने मेरी वस्तु चुरा ली।" यहां चुरा ली में कुछ भी ख़ास भाव नहीं है, परन्तु "भगवान कृष्ण अपने भक्तों का दिल चुरा लेते हैं", यहां उसमें कुछ आनन्द ही दूसरा है।

व्यंजकता लाने के लिए यह ज़रूरी है कि विशेष भावबोधक (Specific) शब्दों का प्रयोग किया जाय; अमूर्त (abstract) शब्दों में यह गुण प्रायः कम पाया जाता है। "अपना घर बड़ी खूबसूरती से सजाया था" यह खाली शब्द हैं; इनसे मानसिक-भावों में कोई जागृति नहीं होती। परन्तु, "उनका घर रंग-बिरंगी जापानी कन्दीलों से सजाया हुआ था।" इससे फ़ौरन एक चित्र सामने खड़ा हो जाता है।*

इसलिए नवीन लेखकों से हमारा नम्रता-पूर्वक निवेदन है कि यदि वे अपने विषय को रोचक और मनोरंजक बनाया

*आजकल हिन्दी गद्य तथा पद्य में जो पुस्तकें निकल रही हैं, पाठक महोदय कृपा कर उनमें व्यंजकता की तलाश किया करें—लेखक

चाहते हैं तो उन्हें विशेष ( Specific ) शब्दों के व्यवहार करने की आदत डालनी चाहिए।*

३—औचित्य—भाषा में शब्दों का उचित व्यवहार भी आवश्यक है। यद्यपि 'सत्यता' और 'व्यंजकता' का गौरव भाषा में विशेषतर है, तोभी औचित्य का भी अपना कुछ उपयोग है। यह बाहर का परदा है, इससे पहला संस्कार होता है। सत्य वीरता, क्षमा आदि बड़े अच्छे गुण हैं, परन्तु वे पराधीन जाति में कुछ जँचते नहीं। ऐसा क्यों है ? इसका उत्तर यही है कि सभ्य संसार उसको ऐसा ही समझता है।

यही दशा शब्दों की है। समाज के शिक्षित लोग जिन शब्दों का जैसा व्यवहार करते हैं वही व्यवहार उपयुक्त समझा जाता है। अंग्रेज़ी भाषा में ऐसे शब्द का उपयोग, जिनको समाज उचित नहीं समझता, barbarism कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो शब्द जिस अर्थ में समाज के विद्वानों में बोला जाता हो, उसको बिगाड़ कर दूसरे अनुचित अर्थों में उसका प्रयोग नही करना चाहिए; और जिन शब्दों को विद्वानों ने अभी स्वीकार नहीं किया, उनको ज़बरदस्ती व्यवहार में लाना असंगत है। शब्द-पाण्डित्य की परिभाषा में इसी को "औचित्य" कहते हैं।

परन्तु यह बन्धन है। प्रतिभाशाली लेखकों ने कभी बन्धन की परवाह नहीं की। इसलिए मैं यह 'औचित्य' का विषय दूसरे विद्वानों के लिए छोड़ता हूं। वे इस 'बन्धन' के विषय पर मुझसे कई दरजे अच्छा लिख सकेंगे।

---

*पुस्तक बढ़ने के भय से मैंने अलङ्कार आदि विषय का इस पुस्तक में समावेश नहीं किया, और न इसकी यहा इतनी बड़ी आवश्यकता ही थी—लेखक

# लेख-चिन्ह-विचार

**१—लेख-चिन्हों का उद्देश्य**—जब कोई व्यक्ति बात-चीत करता है, अथवा व्याख्यान देता है, तो उसकी आवाज़ कभी ऊंची हो जाती है, कभी नीची; कभी उसका स्वर ज़ोर-दार हो जाता है, कभी धीमा। निबन्ध-रचना में हम उस उत्थान और पतन को चिन्हों द्वारा प्रगट करते हैं।

लेख-चिन्हों के दो मुख्य उपयोग हैं—एक तो इनके द्वारा विचारों का आपस का सम्बन्ध स्पष्ट होता है, दूसरे विचारों के प्रगट करने में स्वेच्छानुकूल बल भरा जा सकता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्यों पर विचार कीजिए—

मैं वहां जाऊंगा।

मैं? वहां जाऊंगा!

आप मुझे पहचानते हैं, मैं आपके घर प्रायः आया जाया करता था।

आप मुझे पहचानते हैं? मैं आपके घर प्रायः आया जाया करता था।

देवीदत्त जैसे कवि आजकल मारे मारे फिरते हैं।

देवीदत्त, जैसे कवि आजकल मारे मारे फिरते हैं ......।

उपरोक्त उदाहरणों में चिन्हों के बदल देने से जो अर्थ-भेद हो जाता है उसको तो आपने जान लिया, अब नीचे लिखे वाक्यों में जो परिवर्तन होता है उसे भी देखिए—

आप मेरा यह काम कर दीजिए।
आप मेरा, यह काम कर दीजिए।
आप, मेरा यह काम कर दीजिए।
आप मेरा यह, काम कर दीजिए।

लेख-चिन्हों का पक्का नियम यह है—

उन चिन्हों को प्रयोग में लाइए जिनसे आपका अर्थ स्पष्ट होता हो।

अभिप्राय केवल स्पष्ट अर्थ से है। लेखक के दिल में जो सच्चा भाव हो, पाठक उसे यथार्थ समझ जाय। पुराने पण्डितों की भूलभुलैय्यां शैली, आधुनिक निबन्ध-रचना के नियमों के अनुसार, अत्यन्त दोष-पूर्ण और हानिकारक है। ऐसी ही शैली के कारण आज हमारे धार्मिक शास्त्रार्थों में किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता। लिखने का मतलब यही है कि पढ़ने वाला अर्थ का अनर्थ न कर सके। इसी लिए विद्वानों ने लेख-चिन्हों का नया तरीका निकाला है। उन्हीं चिन्हों के विषय में यहां लिखते हैं।

(क) यदि साधारण तौर से वाक्य पूरा हो जाय तो (।) खड़ी पाई लगाते हैं। इसे पूर्ण विराम भी कहते हैं; जैसे—

मैंने उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ लिया।

(ख) यदि वाक्य हर्ष, शोक, भय, विस्मय आदि भावों का सूचक हो तो (!) ऐसा चिन्ह लगाते हैं। इसको उद्गार-चिन्ह कहते हैं, जैसे—

मारो जयचन्द पापी को!

(ग) वाक्य यदि प्रश्नात्मक हो तो (?) ऐसा प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं; जैसे—

वह कौन आदमी है ?

वाक्य के अन्तर्गत विचार-भेद, उत्थान-पतन, तथा अन्य जो मानुषी भावों का परिवर्तन होता है उनके जतलाने के लिए 'कामा' ( पाद-विराम ), अर्द्ध-विराम ( Semicolon ), आदेशक ( Dash ) आदि चिन्हों का प्रयोग किया जाता है । अब हम सविस्तर एक एक के नियम लिखते हैं ।

**२–कामा (पाद-विराम)**—लिखने में जहां व्याकरण-पद-योजना ( Grammatical Construction ) अथवा विचार-क्रम ( Continuity of thought ) में थोड़ा सा भी व्याघात ( interruptions ) होता हो, वहां विषय को स्पष्ट करने के लिए "कामा" ( , ) का प्रयोग किया जाता है ।

(क) यदि किसी शब्द-मालिका ( Series of words ) अथवा शब्द-समूह ( Groups of words ) का प्रयोग दो दो की संख्या में किया जाय तो उनको जुदा जुदा करने के लिए 'कामा' नही लगाते; हां यदि समूह बहुत लम्बे हों तो 'कामा' का प्रयोग करते हैं, जैसे—

पञ्जाब में गेहूं और चना बहुत उत्पन्न होता है ।

रामचन्द्र जी ने खर और दूषण को मार डाला ।

उसने अपने व्याख्यान में हिन्दुओं की शारीरिक-निर्बलता और उनके झूठे वैराग्य का खण्डन किया ।

उसने अपने व्याख्यान में भारत के भिन्न भिन्न मतावलम्बियों के आपस के द्वेष-पूर्ण लडाई झगडों, और उससे उत्पन्न होने वाले भयङ्कर परिणामों का हृदय विदारक फोटो खींच कर श्रोताओं को विह्वल कर दिया ।

(ख) यदि उस मालिका मे तीन या उससे अधिक अवयव संयोजक-शब्दो ( Conjunctions ) से एक दूसरे के साथ मिले हुए हों तो 'कामा' की जरूरत नहीं, जबतक कि मालिका अथवा समूह लम्बा न हो जैसे—

पण्डित जी का कालिदास और भवभूति और माघ के ग्रन्थों में भली प्रकार प्रवेश है।

पण्डित जी कालिदास, और माघ, और भवभूति, और बाण, और भारवि, और भर्तृहरि के ग्रन्थों से भली प्रकार परिचित हैं।

आर्मस-एक्ट की डीबेट के समय न तो मालवीयजी की मधुर वाणी, न बाबू सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी की वाक्पटुता, न माननीय गोखले की विद्वत्ता ने ही कुछ काम दिया।

(ग) यदि तीन या अधिक अवयवों की मालिका (Series) में संयोजक-शब्द ( Conjunctions ) न हों, केवल अन्त के दो अवयवों में हो, तो प्रत्येक समुदाय के बीच में 'कामा' दिया जाता है ; जैसे—

उसने बड़ा मधुर, ओजस्वी, और प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

राजपूत सैनिकों की वीरता, उनके सेनापतियों की सरलता, और उनकी स्त्रियों का सतीत्व-धर्म जगत प्रसिद्ध है।

(घ) 'इत्यादि' के पहले "कामा" आना चाहिए।

(ङ) साधारणतया, जिन पदों ( clauses ) का प्रारम्भ ऐसे संयोजक-शब्दों, जैसे—"और", "परन्तु", "यदि", "जब कि", "जैसे", "जिस प्रकार", "तब से", "क्योंकि", "पश्चात्", "यद्यपि", "जब", "अन्यथा", "इन कारणों से", "तब तो", इत्यादि—से किया जाय, उनको शेष वाक्य से पृथक करने के लिए "कामा" लगाना चाहिए ; जैसे—

जब वह रेल के स्टेशन पर पहुंचा तो रेल छूट गई, और उसका मित्र, जो उससे अन्तिम भेंट करने स्टेशन पर आया था, बिना किसी सूचना के चल दिया था। अब, जब कि तीन घंटे तक कोई दूसरी गाड़ी जाने वाली नहीं थी, उसने शहर में घूमने का विचार किया, यद्यपि वहां देखने लायक कुछ भी न था।

यदि उपर्युक्त संयोजक-शब्दों से प्रारंभित पद अपने प्रथम पद के साथ यौक्तिक सम्बन्ध रखता हो ( उसके बिना सम्बन्ध पूरा न होता हो ), तो "कामा" का प्रयोग नहीं करना चाहिए; न ही "किन्तु", "यदि", "लेकिन" और "यद्यपि", इन संयोजक-शब्दों के पहले, जब इनका प्रयोग संक्षिप्त और संयुक्त वचनों में हो, 'कामा' लगाना ठीक होगा; जैसे—

सत्य तो हो लेकिन मीठा।

मैं आपके साथ तभी सहमत हो सकता हूं यदि आप मेरे नियम स्वीकार करें।

(च) ऐसे संयोजक शब्द, अव्यय, और शब्द-समुदाय, जैसे—"अब", "तब", "तथापि", "येन केन प्रकारेण", "किन्तु", "परन्तु", "पुनः", "सचमुच", "इसलिए", "और भी", "इसके आगे", "यद्यपि", "असल में", "सारांश", "उदाहरणार्थ", "अर्थात्", "बेशक", "इसके विपरीत", "दूसरी ओर", "आखिरकार", "निश्चित ही", "यथा", इत्यादि—यदि किसी वाक्य अथवा पद के आरम्भ में निर्णय या व्याख्यार्थ आवें तो उनके पीछे "कामा" लगाना चाहिए। यदि वे ( संयोजक शब्द, इत्यादि ) किसी वाक्य या पद के बीच में विचार अथवा रचना के व्यतिक्रम के लिए आवें, अथवा उनका प्रयोग किसी प्रकरण का सारांश कहते समय किया जाय, या किसी नई बात का समावेश करते हों तो उनके आगे पीछे "कामा" लगाए जाते हैं; जैसे—

सचमुच, उसके व्याख्यान की यही पहली दलील थी; अब, प्रश्न यह है........। तथापि, उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया; इसके आगे, बस पूछिए नहीं; बेशक, निश्चित ही, बात तो बेढब है; इस बात का, इसलिए, निर्णय होना कठिन है।

वाक्य-रचना में यदि उपर्युक्त शब्दों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो और कोई आवश्यकता न जँचे तो निम्नलिखित दशाओं में "कामा" लगाना अनुचित होगा—

(१) "इसलिए", "तथापि", इत्यादि यदि क्रिया के ठीक पीछे व्यवहृत हों।

(२) "सचमुच", जब किसी विशेषण, अथवा क्रिया विशेषण के ठीक पहले, अथवा बाद में आवे।

(३) "शायद", "भी", "इसी प्रकार", इत्यादि अवयवों के साथ ; जैसे—

वह बीमार था इसलिए आ ही नहीं सका ; यह आश्चर्य्य-जनक है तथापि सत्य है, उसकी दशा सचमुच धीरे धीरे सुधर रही है; वह शायद भविष्य का विचार कर रहा है; वह पुरुष विद्वान् है और सदाचारी भी।

(छ) कामा का प्रयोग "न कि" से पहले ऐसे वाक्यों में नहीं आता ; जैसे—

आदमी की परीक्षा उसके चरित्र से की जाती है न कि तुम्हारे जैसे बकवादी की गप्पों से।

(ज) यदि एक विशेष्य के पहले कई विशेषण हों, और अन्त के विशेषण का सम्बन्ध दूसरों की अपेक्षा विशेष्य के साथ अधिक स्पष्ट हो, तो उसके आगे कामा की ज़रूरत नहीं; जैसे—

अमरीका की प्रशंसनीय राजनैतिक संस्थाएं... ..............।

एक सुन्दर युवा सन्यासी ... ..............................।

(झ) जो पद ( Participial Phrases ) मुख्य वाक्य की व्याख्या करते हों, वे प्रायः 'कामा' के अधिकारी होते हैं, जैसे-

काम में मग्न होने के कारण, उसने मेरी आवाज़ नहीं सुनी।

दिन भर के परिश्रम से थक जाने के कारण, वह अचेत सो गया।

(ञ) यदि किसी वाक्य के बीच में विरोधात्मक-पद (antithetical clause) का समावेश किया जाय तो उस विरोधात्मक-पद के पहले "कामा" लगाते है; जैसे—

हमारे वीर केशरी कांग्रेस में गये थे, इसलिए नहीं कि उन्हें कुछ कनवनशनिया कांग्रेस से सहानुभूति है, बल्कि उन्होंने तो वहा भी नरमदल-वालों की धज्जियां ही उडाई।

(ट) प्रासंगिक (Parenthetical), अव्ययी भावात्मक (adverbial), अथवा समानाधिकरण (appositional), पदों का वाक्य में पृथक रचना-सम्बन्ध दर्शाने के लिए 'कामा' लगाते हैं। यदि उनका समावेश अनधिकार चेष्टा सम हो तो दोनों ओर डैश लगाना उपयुक्त होगा; जैसे—

फ्रांसीसी जाति, आम बोलचाल में, कला-निपुण कही जाती है; अंग्रेज लोग, प्रजातंत्र राज्य-प्रिय जैसे कि वे हैं, तोभी अपने राजनीतिक और सामाजिक-संगठन में कुलीनता को ही मुख्य समझते हैं। तारकदास ने क्या किया—उसकी धूर्तता की बातें पीछे बतलाऊंगा—मेरे विरुद्ध सब लोगों को भडकाना आरम्भ किया।

(ठ) एक ही प्रकार के दो घनिष्ठ शब्द-समूहों को पृथक करने के लिए "कामा" लगाइए, यदि उनका पृथक्त्व आवश्यक जचता हो; जैसे—

वह कौन था, यह मालूम नहीं हुआ।

खैर जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ।

(ड) भिन्न भिन्न नामों को "कामा" से पृथक करना चाहिए। जैसे—

लक्ष्मण जी, रामचन्द्र जी को, पिता तुल्य मानते थे।

पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त से, आबादी में कम है।

चील, कौए से, बडी होती है।

लखनऊ, इलाहाबाद से, बडा शहर है।

(ढ) गणित के अङ्कों को पृथक करने के लिए भी "कामा" का प्रयोग ज़रूरी है; जैसे—

३१४ के बाद ५२५, ५२५ के बाद ६१७ लिखिए; नवम्बर १, १६११।

(ण) विशेषणात्मक पद, जिनमें प्रशंसात्मक अथवा विरोधात्मक विशेषण हो, यदि किसी विशेष्य के पहले मुख्य विशेषण के सम्बन्ध में जोड़ा जाए तो उसको 'कामा' से पृथक करना चाहिए; जैसे—

ऐसा कठोर, यद्यपि सत्य और न्यायानुकूल, वचन उनको नहीं निकालना था; अब हम इतिहास के उस जगत-प्रसिद्ध, किन्तु भारत के लिए प्रलयकारी, युद्ध का वर्णन करते हैं; उस नाटक का अत्यन्त हृदय-विदारक, नहीं नहीं भारत माता के कलेजे को टूक टूक करने वाला, दृश्य लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है।

(त) यदि किसी शब्द अथवा शब्दों के समुदाय को वाक्य में दुबारा कहने की आवश्यकता न हो तो उसका संक्षिप्त रूप दर्शाने के लिए "कामा" लगाते हैं; जैसे—

लाहौर में ऐसे पांच कालिज हैं; आगरे में, तीन; प्रयाग में, दो। मूल्य, दो रुपये।

(थ) साधारणतया, उद्गार-सूचक "हाय" के बाद 'कामा' लगाते हैं; जैसे—

हाय, मैं जन्मते ही क्यों न मर गया!

(द) लिखते समय यदि किसी पुस्तक का निर्देश ( Reference ) करना पड़ जाय तो क्रमागत पृष्ठों में 'कामा' नहीं लगाते, बल्कि छोटा डैश लगाते हैं; जैसे—

देखो पृष्ठ संख्या ७, १०–११।*

---

*बाकी नियम 'डैश' प्रकरण में देखिए—लेखक

(ध) तिथि अथवा पृष्ठ-निर्देश को छोड़कर यदि सहस्रों की गणना को अङ्कों में लिखना हो तो सहस्र के बाद 'कामा' लगाना उचित है; जैसे—

१, ७५६; १०, ५२०।

पृष्ठ २५६०।

ईसा से २००० वर्ष पहले।

(न) महीना, वर्ष, और समय के ऐसे ही विभाग करते समय 'कामा' लगाना उचित है; जैसे—

फाल्गुण कृष्ण पक्ष, १६७१; वैसाख, १६७०; शुक्रवार, मई ३।

३—अर्द्ध-विराम—एक वाक्य में, व्याकरण-रचना अथवा भाव के, स्पष्ट भेद को दिखलाने के लिए अर्द्ध-विराम (;) का प्रयोग होता है; जैसे—

क्या हम इसी प्रकार मरे ही पड़े रहेंगे, चाहे कितना ही अत्याचार हम पर क्यों न हो; अथवा हम संसार को कुछ करके दिखलायेंगे?

यह सिद्धान्त वैज्ञानिकों के लिए ऐसे ही महत्व का है जैसे कि राजनीतिज्ञों के लिए; सचमुच इसपर ससार की भावी उन्नति निर्भर है।

(क) गणना में अङ्कों को 'अर्द्ध-विराम' से पृथक कर देना चाहिए। यदि वे बहुत लम्बे हों और व्याकरण-रचना के अनुसार उनमें पूर्ण-विराम, उद्गार-चिन्ह या प्रश्नात्मक चिन्ह आदि लगाना पड़े तो उस दशा में अर्द्ध-विराम की आवश्यकता नहीं; जैसे—

कांग्रेस कमेटी में प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी—पञ्जाब, ६; बंगाल, ७; मदरास, ६; बम्बई, ८, इत्यादि। परन्तु इन प्रश्नों ने, "आप कौन ब्राह्मण हैं?" "आप की शाखा क्या है?" "आपका गोत्र कौन सा है?" उस छद्मवेशी ब्राह्मण टिकटिकी की सारी पोल खोल दी।

(ख) यदि "ओह" अथवा "हाय" के पीछे और भी उद्गार-सूचक शब्द आ जायें तो (अत्यन्त असाधारण दशाओं को छोड़ कर) इनके बाद कामा लगा कर उद्गार-चिन्ह अन्त में आता है; जैसे—

"हायरे, मैं लुट गया!" "ओ हो, यह बात है!"

(ग) उद्गार-चिन्ह, अवतरण अथवा कोष्टक का भाग होने की दशा में, उनके अन्दर ही रखा जाता है। उदाहरण दे चुके हैं।

**६–प्रश्नात्मक-चिन्ह**—प्रश्नात्मक-चिन्ह (?) प्रश्न पूछने अथवा शंका प्रगट करने के सम्बन्ध में प्रयोग किया जाता है; जैसे—

"यह कौन है?" कनफटे बाबा जी ने अदालत में अपना नाम माना यशवन्तराव, कानपुर के प्रसिद्ध नाना साहेब का पोता, बतलाया?

(क) जो प्रश्न अस्पष्ट रूप में हों उनके पीछे प्रश्नात्मक-चिन्ह की ज़रूरत नहीं; जैसे—

वे मुझे पूछते थे कि क्या पण्डित जी बीमार हैं। ऐसा क्यों हो गया, यह बात मेरे समझ में नहीं आई।

(ख) अवतरण-चिन्हों के अन्दर प्रश्नात्मक-चिन्ह तभी रखना चाहिए यदि वह उनका अंग हो; जैसे—

परन्तु प्रश्न यह है—"क्या मनुष्य संसार में दासता ही में लिए आया है?"

क्या आप कभी "पेशावर" में थे?

**७–अवतरण-चिन्ह** (Quotation marks)—यदि अपने लेख में किसी पुस्तक अथवा व्यक्ति का कथन उनके अपने शब्दों में उद्धृत करना हो तो उस कथन के आरम्भ

और अन्त, दोनों जगह, अवतरण-चिन्ह ( " " ) लगाते हैं; जैसे—

"विद्या विहीन पशु", ऐसा हमारे विद्वानों का मत है।

(क) कोई शब्द या उक्ति, यदि अपने अर्थों सहित लिखी जाय तो उसके इर्द गिर्द भी अवतरण-चिन्ह लगाते हैं; जैसे—

शब्द-पाण्डित्य की परिभाषा में "औचित्य" से अभिप्राय शब्दों का उचित प्रयोग करना है।

(ख) कोई असाधारण, पारिभाषिक, अथवा व्यंग-पूर्ण शब्द या उक्ति यदि वाक्य में आ जाय तो उसे भी उद्धरण-चिन्हों में धरते हैं; जैसे—

वह बात कहते समय "बूझी! बूझी!" कह कर चिल्लाता था, इसलिए मैंने उसका नाम "बूझी" रख लिया। वह बाजार में विचित्र "सुथरेशाही" पोशाक पहन कर निकला। वह "बम-पुलिस" का जमादार चुना गया; मैंने उसके "ग़रीब-खाने" की तलाशी ली; इससे फोनोग्राफ "महाशय" नहीं बन सकता।

(ग) जिन शब्दों अथवा पदों की ओर ख़ास ध्यान आकर्षित कराना हो, उनको भी उद्धरण-चिन्हों में रखना चाहिए; जैसे—

मानसिक-स्वतन्त्रता के इस गुण "सच्चरित्रता" की प्राप्ति........;

"विचार-स्वातन्त्र्य" से अभिप्राय, . ......।

परमात्मा की प्राप्ति का साधन "शरीर" यदि बिगड़ गया।

(घ) ग्रन्थ-माला के नामों को उद्धरण-चिन्हों में धरते हैं; जैसे—

"हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर" की पुस्तकें;

"हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक-मण्डली" खण्डवा के उपयोगी ग्रन्थ।

(ङ) छोटी कविताओं के शीर्षकों को भी उद्धरण-चिन्हों में रखना उचित है; जैसे—

पं० माधोप्रसाद मिश्र रचित कविता "युवा सन्यासी"; पं० प्रताप नारायण मिश्र रचित "श्री पञ्चमी"।

(च) जहां साधारण स्पष्ट उद्धरण-वाक्य हो तो दो दो उद्धरण-चिन्ह लगते ही हैं, किन्तु यदि उद्धरण के अन्दर उद्धरण आ जाए तो वहां एक एक चिन्ह लगाते हैं; जैसे—

उसने कहा, "मैं हूं।"

"अच्छा", परमहंस जी बोले, "जब मैंने उसे यह कहते हुए सुना 'मैं करूंगा', इसी से सब भेद खुल गया।"

" 'सौ स्याने एक मत' यह कथन बिल्कुल ठीक है", गुरु जी हंस कर बोले।

(छ) यदि लेखक का असली नाम देकर, पुस्तक के टाइटल पेज पर, उसका कथन उद्धृत करना हो तो उसके कथन के आगे पीछे अवतरण-चिन्ह नहीं लगाने चाहियें।

(ज) जब उद्धरण लिखते समय उसकी बीच बीच की बाधा का भी निर्देश कराना हो, तो उद्धरण-चिन्हों द्वारा यह भी किया जाता है; जैसे—

"मैं?" उसने धीरे से कहा। "आपका मतलब मुझसे नहीं? क्यों?"—वह कुछ मुस्कराया, "वे मुझे दूर मदरास में भी 'झक्की सुबरू' कह कर पुकारते थे।" वह फिर मुस्कराया। "नहीं, आपका मतलब मुझसे नहीं।"

८—डैश (आदेशक)—वाक्य-विच्छेद, वाक्य-विराम, वाक्य-परिवर्तन-स्थिति, वाक्य-रचना में सहसा परिवर्तन, वाक्य में लम्बा विश्राम, भाव में स्पष्ट और आकस्मिक परिवर्तन—ये मोटे कारण डैश ( — ) प्रयोग करने के हैं; जैसे—

वे भेजते हैं—उनमें शक्ति है—अपने लड़के को अमरीका भेजनें दो? कहां वीर युद्धोन्मत्त जाति के बच्चों का रंग ढंग, और कहां सैंकड़ों वर्षों से पराधीन जाति के बच्चों का खुशामदी जीवन—आकाश पाताल का अन्तर!

"संघ"—पाश्चात्य जातियों के इस शब्द में जादू भरा है।

आप इसे कर लेंगे—लेकिन नहीं, आप इसके सर्वथा अयोग्य हैं।

(क) उन प्रासंगिक (Parenthetical) पदों को, जो स्पष्ट तौर से स्वतन्त्र निवेशित लेख (Interpolation) की तरह हों, डैश में रखना चाहिए; जैसे—

यदि इतनी लम्बी तलवार हो—फरज़ कर लीजिए छः फीट—तो हमारा काम निकल सकता है।

(ख) वाक्य के किसी शब्द या वचन (जिन्हें दोहराना पड़े) की सहायता, व्याख्या, अथवा विस्तार के लिए जब कोई पद जोड़ा जाय तो उसके आगे 'डैश' आना ज़रूरी है; जैसे—

अब हम आपको मेवाड के प्रसिद्ध राजर्षि का पवित्र जीवन-चरित्र सुनाते हैं—ऐसा जीवन-चरित्र शायद ही कभी आपके सुनने में आया होगा।

मेरे लिए स्वामी रामतीर्थ जी का अमली वेदान्त मंगलमय है—वह वेदान्त जिससे देश का उत्थान हो।

(ग) किसी प्रासंगिक या प्रशंसात्मक पद के पहले यदि "जैसे" आ जाय तो वहां "जैसे" के स्थान पर "डैश" उपयुक्त होगा; जैसे—

नए नए प्रलयकारी यंत्र—पनडुब्बियां, भीमसेनी तोपें, ज़हरीली गैस, आकाशी विमान—ऐसे भयङ्कर निकले हैं कि जिनके आगे पुराना युद्ध-कौशल वृथा है।

(घ) जुदा जुदा टुकड़ों वाले वाक्यों में अन्त के सार रूप पद के पहले "डैश" लगाना चाहिए; जैसे—

स्वामी विवेकानन्द, वेदान्त के प्रतिनिधि होकर आये थे; श्रीवीरचन्द गान्धी, जैन धर्म के मुख्य स्पीकर थे; मिस्टर जोज़फ स्मिथ, बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे—बस यही तीन मुख्य लेकचरार थे।

(ङ) "जैसे", "उदाहरणार्थ", "यथा" के बाद डैश लगाना चाहिए।

(च) जब किसी पाराग्राफ के प्रारम्भिक पद अथवा अपूर्ण वाक्य के बाद, उसी को दोहराते हुए कुछ सिलसिलेवार शब्द या शब्द-समूह पाराग्राफ के रूप में कहने पड़ें, तो उसके पीछे 'डैश' लगाना चाहिए; जैसे—

(क) मेरा हुकुम है—

१. इसको मारो।

२. इसको बेंत लगाओ।

(छ) किसी पुस्तक अथवा लेखक के वाक्यों का अवतरण करने के बाद, उस पुस्तक अथवा लेखक का नाम नीचे देते समय उसके आगे "डैश" लगाना उपयुक्त है; जैसे—

"मुझे दासता से घृणा है,
दासता भयङ्कर व्याधि है।"

—देवदूत

साधारणतया, डैश, पूर्ण-विराम को छोड़ कर अन्य लेख-चिन्हों के सम्बन्ध में प्रयोग नहीं किया जाता; हां यदि डैश-मध्ये उद्गार-चिन्ह-सूचक अप्रधान-पद वाक्य में आ जाय तो उद्गार-चिन्ह दूसरे डैश के आगे रहता है। यह अंग्रेज़ी क़ायदा है। हमारे हिन्दी लेखक भी, जहां दूसरे चिन्हों के सम्बन्ध में डैश का प्रयोग आता है, वहां "कोलन" (:) लगाते हैं। मैं इसके विरुद्ध हूं। "कोलन" से हमारे विसर्ग (:) का भ्रम हो जाता है, इसलिए मैं 'कोलन' के स्थान पर भी "डैश" का प्रयोग ही ठीक समझता हूं। अतएव कोलन के नियमों को डैश में शामिल कर इस विषय की पूर्ति करता हूं।

(ज) किसी वाक्य के बाद यदि दूसरा वाक्य पहले वाक्य के अर्थों की महत्ता अथवा उदाहरण देने के लिए आ जाए तो भी "डैश" का प्रयोग करना चाहिए; जैसे—

अधिकांश देशों के अपने अपने जातीय फूल होते हैं—फ्रांस का कमल, इङ्गलिस्तान का गुलाब।

(झ) यदि किसी दूसरे का कथन लिखना हो, अथवा कोई लिष्ट देनी हो, या संक्षेप कथन करना हो, अथवा कोई लम्बा उद्धरण-वाक्य देना हो, जिसमें 'कि' को स्थान न मिले, तोभी 'डैश' लगाना चाहिए; जैसे—

हम उसकी स्पीच में से उद्धृत करते हैं—

निम्नलिखित वाक्यों को देखिए—

उसका संक्षेप रूप यह है—

इसकी पूर्ति ऐसे हो सकती है—

(ञ) चिट्ठी लिखते समय अभिवादन-सूचक शब्दों के बाद, या व्याख्यान-दाता का श्रोताओं अथवा सभापति को सम्बोधन करने के बाद, 'डैश' आना चाहिए; जैसे—

मेरे प्यारे देश-बन्धु—; प्रियवर—; महाशय—; माननीय सभापति-महोदय, और श्रोतृवृन्द—

(ट) घड़ी का समय अथवा रुपया, आने, पाई आदि लिखने में भी 'डैश' का प्रयोग करते हैं; जैसे—

संध्या ६–३०; मध्यान्ह बाद ३–१५; प्रभात ५–१०;

१५ रु०—१० आ०—६ पा०

**६–बन्धनी या कोष्टक**—कोष्टक ( ) [ ] अंग्रेज़ी में दो प्रकार का प्रयोग होता है-पहले को "Parentheses" और दूसरे को "Brackets" कहते हैं। दूसरे (Brackets) ब्रेकट [ ] चिन्ह को, अवतरण-सामग्री में निवेशित लेख (Interpolation) प्रगट करने के लिए ही, लेखक लोग विशेष कर प्रयोग करते हैं। यहां हम कोष्टक ( ) के नियमों को लिखते हैं।

(क) लेख लिखने में, जहां अंकों अथवा वर्णों द्वारा भाग-

संख्या का बोध कराना हो, वहां उन अंकों अथवा वर्णों को 'कोष्टक' में रखते हैं।

(ख) कोष्टक का निम्नलिखित दशाओं में व्यवहार होता है—(१) किसी शब्द का अर्थ, व्याख्या, या नोट को वाक्य के अन्तर्गत करने के लिए, (२) किसी भूल का समाधान करने के लिए, (३) छूट की पूर्ति हेतु; जैसे—

वह बड़ा अजीबोगरीब ( विचित्र ) आदमी था।

उन्होंने (नरमदल वालों ने) अपने विचार प्रगट किए।

ज्यूंही पण्डित मदनसिंह (मदनमोहन) मालवीय संसकिरत (संस्कृत) बोलने लगे।

डाक्टर मूलचन्द टण्डन ( प्रयाग )।

१०—योजक-चिन्ह (Hyphen)—दो या दो से अधिक शब्दों के सामासिक पदों में योजना-सूचक चिन्ह "योजक चिन्ह" (-) लगाते हैं; जैसे—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पिष्ट-पेषण;

आश्चर्यजनक-घंटी; अमरीका-भ्रमण।

(क) लिखने में जहां सतर के अन्त में अधूरा शब्द रह जाय, वहां ऐसा चिन्ह देते हैं; जैसे—

धर्मात्मा मनुष्य वह है जो देश-सेवा को मुख्य कर्तव्य सम-झता है।

११—वर्जन—किसी उद्धरण में जहां वाक्य या शब्द समुदाय का किसी कारण वश, अनावश्यकता अथवा अस्पष्टता के हेतु, परित्याग करना पड़ता है वहां ( * * * ) ऐसे अथवा ( . . . . ) ऐसे चिन्ह लगा देते हैं। जहां प्रकरण में कुछ भाव पूरा कर नया भाव प्रारम्भ करना हो वहां भी इन चिन्हों के प्रयोग की शैली पड़ रही है।

* * * * *

कविता में पहली तुक के अन्त में एक पाई (।) और दूसरी तुक के अन्त में दो खड़ी पाई (॥) लगाने का पुराना नियम है। रामायण में सब जगह ऐसा है। आधुनिक हिन्दी लेखक कविता में अर्द्ध-विराम ( ; ) तथा कामा ( , ) को भी स्थान देने लगे हैं।

नए और पुराने ढंग के लेखक किसी किसी शब्द को संक्षिप्त करने में शून्य (०) का प्रयोग भी करते हैं।

---

# निबन्ध-भेद

## कथात्मक-निबन्ध

**१–कथा का लक्षण**—सत्य अथवा मन घड़न्त घटनाओं के लेखे को कथा कहते हैं। शुद्ध-कथा तो असंभव ही समझिए, हां छोटे छोटे टुकड़े भले ही शुद्ध-कथा का रूप धारण कर सकें, जैसे—

"मैं चौक गया और एक टोपी खरीद लाया"

यह तो हुई शुद्ध-कथा, परन्तु प्रत्येक सत्य घटना का सम्बन्ध स्थान और व्यक्ति से होता है, इसलिए उसमें कुछ स्थापना ( Setting ) और पात्र-समावेश करना ही पड़ता है। उसी स्थापना और पात्र-समावेश के कारण ही कथा में रोचकता और मनोरंजकता आती है; जैसे—

"अपनी पांच बरस की अवस्था में मैं एक दिन गरमी के

दिनों में अकेला ही चौक गया, और बिना किसी की सहायता के अपने लिए टोपी खरीद लाया।"

अब इसमें गरमी का दिन "स्थापना" और पांच वर्ष की अवस्था यह "पात्र-समावेश" कर दिया गया।

**२–कथा का उद्देश्य**—कथा का उद्देश्य मानसिक कल्पना में जागृति उत्पन्न कर घटना-क्रम में रुचि उत्पन्न करा पाठक को शिक्षा देना है। पढ़ने अथवा सुनने वाला घटना-क्रम को समझ जाए, इतना ही नहीं, बल्कि उसकी मनोरंजकता भी हो। मुख्य बात कथा में शिक्षा-प्रद मनोरंजकता है।

**३–कथा के ढंग**—यूं तो मुख्य तरीक़ा कथा कहने का यह है कि घटनाओं को उनके घटित क्रमानुसार कहता चला जाय, किन्तु प्रायः ऐसा करना नीति-विरुद्ध और असंभव भी हो जाता है। तोभी प्रसंग चलना चाहिए; कथा का तार क़ायम रहे। अतएव कथा आरम्भ करने से पहले चार मुख्य प्रश्नों पर विचार कर लीजिए—

१. घटना-क्रम किस प्रकार होना चाहिए?
२. कौन सी घटनायें कथा में रहेंगी?
३. पात्रों का समावेश कैसे किया जायगा?
४. कथा की स्थापना का परिचय कैसे देना होगा?

**४–घटना-क्रम**—समाचार-पत्रों* का ढंग तो यह कि वे सब से पहले घटना के फल-स्वरूप को पाठकों के सामने रखते हैं। यदि बाढ़ आ गई हो तो मोटे मोटे अक्षरों में कितने ग्राम डूब गए, धन जन की कितनी हानि हुई, कौन सी सरकारी इमारतें नष्ट हो गई, यह सब पहले आयेगा।

---

*हिन्दी-समाचार-पत्रों की हम बात नहीं करते। अभी उनकी प्रारम्भिक अवस्था है। उनकी उन्नति के लिए देश-काल अभी अनुकूल नहीं—लेखक

इस ढंग के अनुसार, समय समय पर अन्य लेखक भी चलते हैं। इसमें विशेषता यह है कि पाठक का ध्यान तत्काल आकर्षित हो जाता है; उदाहरणार्थ—"मैं वह लड़का हूं जो कनकौआ उड़ाता उड़ाता सातवीं मंज़िल से गिर गया था और ज़रा चोट नहीं लगी! आपको मैं अपनी कथा सुनाऊं?" फौरन ही उसकी कथा सुनने को चित्त चाहेगा। सातवीं मंज़िल से गिर कर बच जाना कोई ठट्ठा तो हैही नहीं।

कथा का मध्य पकड़िए—आप अपनी कथा का न तो फल ही बतलाइए, न उसको आरम्भ से ही कहिए; बीच का रास्ता अधिक अच्छा होगा। इससे कथा में तेज़ी और बल आ जायगा। फरज़ करो एक प्रसिद्ध गो-भक्त अपनी जीवन-घटना का वर्णन करने लगा है। आप आरम्भ करते हैं—"पांच वर्ष हुए मेरे जीवन में एक विचित्र घटना घटी। उसने मुझे वकील बनने की अपेक्षा गो-सेवक बना दिया। मुझे वह सुबह कभी न भूलेगी। इक्के में बैठा हुआ मैं ईसाइयों के कृषि-कालेज की ओर जा रहा था। जब जमुना जी के पुल के पास पहुंचे तो पुलीस वाले ने इक्का रोक दिया; कहा—'गोरू परली पार से आ रहे हैं, उनको निकल जाने दो।' पंद्रह बीस मिनट के बाद डेढ़ दो सौ गाय, बैल, और बछड़ों का झुण्ड पुल की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। उनके पीछे यमराज रूप छः कसाई बड़े बड़े लट्ठ लिए हंकाते आ रहे थे। नीचे गरदन किए हुए, अत्यन्त उदास, उन निरपराध पशुओं ने जब मेरी ओर देखा तो मेरी आंखों से आंसु बहने लगे। 'क्या इन दीनों की कोई नहीं सुनेगा?' यह शब्द मेरे मुंह से निकले। पशु तो चले गए, परन्तु मेरे जीवन में भारी परिवर्तन हो गया।

"इसके बाद मैंने क्या किया, यह बतलाने से पहले मैं आप को अपना कुछ परिचय देता हूं। मेरा जन्म फाल्गुण कृष्णपक्ष,

१९३०, में पंजाब के पेशावर नगर में हुआ था।" बस इतन काफ़ी है। अब हम उस धर्मात्मा पुरुष की जीवनी और उसवे व्रत-पालन की पूरी कथा सुनना चाहते है। उसने अपना जीव परिवर्तन करने वाली घटना को वर्णन कर अपना हृदय हमा सामने रख दिया है।

यदि कथा में एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र की वजाय एक से अधिक पात्रों का वर्णन करना हो तो काम कठिन हो जाता है फरज़ करो हमें शिवाजी की अफजुलखां से मुलाक़ात क वर्णन करना है। हमें पहले दोनों व्यक्तियों की मुलाक़ात के कारणों का वर्णन करना होगा। हमें एक के बाद दूसरे क परिचय देकर, फिर दोनों को इकट्ठा लाकर, उनकी मुलाक़ात के समय दोनों का साथ साथ व्योरा देना पड़ेगा। इसी प्रका जितने अधिक पात्र होंगे उन सब का पहले परिचय करा फि कथा में उनको यथास्थान वर्णन करना उचित है।

**५-द्वैधी भाव** (Suspense)—सब दशाओं में कथा का घटना-क्रम द्वैधी भाव की आवश्यकता पर अवलम्बित है। पढ़ने वाले के सामने यही प्रश्न रहता है-"इसके बाद क्या होगा?" यदि उसको निश्चय हो जाय कि यह होने वाला है तो वह पुस्तक को उठा कर रख देता है। यह द्वैधी भाव दो प्रकार का है—(१) वह कथा का परिणाम जानने का इच्छुक है, (२) वह परिणाम किस प्रकार निकलता है। जबतक वह दोनों बातें जान नहीं लेता, उसकी उत्सुकता कथा में बनी रहती है। इस-लिए पहले परिणाम बतला कर आप केवल उसकी उत्सुकता भले ही बढ़ा लें, परन्तु ज्यूंही वह उस परिणाम पर पहुंचने वाली सड़क को पहचान लेता है, उसकी उत्सुकता जाती रहती है। यही कारण है कि नवीन परिणाम-बोधक पुरानी कथा तथा साधारण परिणाम-सूचक नए ढंग की कथा, दोनों से ही पाठकों

का मनोरंजन होता है। इसके विपरीत यदि पाठक कथा की घुण्डी को स्वयं ही खोल लेता है तो फिर उसकी रुचि कथा से जाती रहती है।

**६–घटनाओं का चुनाव**—दूसरी बात घटनाओं के चुनने की है। यदि कहें कि सार्थक घटनाओं को चुनिए, तो प्रश्न होता है—"सार्थक क्या ?"

सब से पहले कथा सम्बन्धी आवश्यक घटनाओं को लीजिए। उनका चुन लेना सहज है, क्योंकि उनके बिना तो कथा बन ही नहीं सकती। आप नाव पर चढ़ कर गंगा जी में गए; रास्ते में नाव उलट गई; मल्लाह गंगा जी में कूदा; आप बच गए—यह तो मुख्य घटनायें हो गईं। इनका चुन लेना तो सहज है, कठिनाई तो इन्हीं मुख्य घटनाओं को विकास करने वाली बातों को चुनने में है।

**७–विकास करने वाली घटनायें**—विकास करने वाली वे घटनायें हैं जो मानसिक-कल्पनाओं को जाग्रत कर कथा में रुचि उत्पन्न करती हैं। मकान को आग लगी; वह जल कर राख हो गया; एक बच्चा जल मरा; दूसरा बच निकला—ये सब आवश्यक घटनायें हैं। अब इनमें रुचि कैसे उत्पन्न की जाय ? इसका उत्तर कथा की पोषक घटनायें देती हैं। इसी का कारण तलाश कर बालकृष्ण का उसमें प्रवेश कराइए। अपने छोटे भाई, कुञ्जी, के साथ वह घर की ड्योढ़ी में रखे हुए सूखे घास के पास खेलता है; एक पड़ोसी का लड़का मुन्नालाल वहां आ गया; उसकी जेब में चुरट थे; लड़के घास में खेलने लगे; अधजला चुरट घास में गिर गया। इसी प्रकार कथा का विकास होने लगता है और उसमें अन्य

सैंकड़ों बातों का प्रवेश करा देने से उसकी अच्छी कथा बन सकती है। घटनाओं को किस नियम से चुनते हैं?

**८–घटनाओं की स्वाभाविक चित्ताकर्षकता–** एक बात तो स्पष्ट है। कथा को विकसित करने वाली वे ही घटनायें हो सकती हैं जो स्वयं मनोरंजक हों। इसमें भि भिन्न रुचि होने से मत-भेद हो सकता है। जिस प्रकार लोगों के लिए कथा लिखी जाती है उनका भी ख़्याल करना पड़ता है, और स्वयं लेखक की अपनी रुचि पर भी बहुत कुछ निर्भर है। प्रत्येक ख़ास उदाहरण में लेखक अपने अभ्यासानुकूल रोचक घटनाओं को चुन सकता है।

**९–कथा के अभिप्राय का ज्ञान**—प्रत्येक कथा का मुख्य अभिप्राय होना चाहिए। आप जो कहना चाहते हैं उसका आपको विशेष ज्ञान होना ज़रूरी है। उसका पहले निश्चय कर लीजिए। समय नष्ट करने और ऐय्यारी के कुमकुमे छोड़ने के लिए कथायें नहीं लिखी जातीं। ऐसी पुस्तकें वे लिखते हैं जो स्वयं निकम्मे हैं और दूसरों का समय नष्ट कर धन बटोरना चाहते हैं। यदि आपने अपनी कथा में बालकृष्ण की वीरता, उसका आग से युद्ध, उसकी अपने भाई को बचाने की चेष्टा इत्यादि बातें बतानी हैं और वही आपकी कथा का नायक है तो अन्य सब घटनाओं को संक्षेप रूप दे बालकृष्ण के सम्बन्ध की बातों को अधिक कहना उचित होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि अनर्थक घटनाओं को बिल्कुल छोड़ कर जिस मुख्य उद्देश्य को आपने सामने रखा है, उसी का विकास करने वाली बातों, पात्रों, और घटनाओं का समावेश उपयुक्त होगा।

**१०–पराकाष्ठा ( Climax )**—कथा के उपर्युक्त मुख्य अभिप्राय को उसकी पराकाष्ठा कहते हैं। कथा में उसकी परा-

काष्ठा से अभिप्राय उसका सब से अधिक मनोरंजक स्थल है—वह स्थल जिसकी ओर सब घटनायें चलती हैं। ऊपर मकान के जलने के उदाहरण में कथा की पराकाष्ठा लड़कों के बच कर निकल भागने के स्थल में है। अफज़ुलखां और शिवाजी की मुलाक़ात में रोचकता की पराकाष्ठा अफज़ुलखां के घायल होकर गिरने में है। प्रसिद्ध युद्ध वाटरलु की कथा में पराकाष्ठा का स्थल नेपोलियन का परावर्तन ( Retreat ) है। आप अनर्गल बे सिर पैर के पोथे लिख कर दस बीस पचास सन्ततियां रच डालें, आप की कथा में निकम्मे लोगों का मन भी लग जाय, आप पुलीस के दफ़्र अथवा समाज की गंदगी छान कर हज़ारों "रहस्य" छाप डालें, परन्तु वे सब किसी काम के नहीं हैं। कथा का एक निश्चित मुख्य लक्ष्य होना चाहिए; एक ख़ास निशाना, एक ख़ास उपदेश, एक ख़ास सिद्धि होनी चाहिए। बिना उसके कथा ऐसी ही है जैसे उद्देश्य के बिना नौका; जो हवा में इधर उधर डोल रही है।

**११-घटनाओं का यौक्तिक-क्रम**—जब आप अपनी कथा का लक्ष्य, उसका उद्देश्य, उसकी पराकाष्ठा निश्चित कर लें तो प्रश्न यह होता है कि इस लक्ष्य की सिद्धि कैसे हो? छलांगे भरने से काम नहीं चलता; यहां घटनाओं का सिलसिला ठीक होना चाहिए। अफज़ुलखां, जो अपने बादशाह से यह कह कर चला था—"मैं उस पहाड़ी चूहे को मूसदानी में बन्द करके लाऊंगा"—जिसके पास इतनी ज़बरदस्त फौज थी, जो स्वय भी ग्रांडील था, उस पहाड़ी आदमी से कैसे मार खा गया। इस मुख्य बात को आपने अपनी कथा में दिखलाना है। इसके लिए आपको घटनाओं का यौक्तिक-क्रम ( Logical Sequence ) तलाश करना होगा; जैसे—

"एक कील के कारण, घोड़े की नाल न लग सकी; नाल के अभाव से, घोड़ा नहीं मिला; घोड़े के अभाव से, सवार नहीं पहुंचा; सवार के न पहुंचने के कारण, फौज हार गई; फौज के हारने से, राज्य हाथ से चला गया—ये सब घटनायें केवल एक कील के कारण हो गईं!" घटनाओं का यह ठीक क्रम है। आप इनका विकास कर सकते हैं। सत्य कथाओं में आप घटनाओं को चुनते हैं; काल्पनिक कथा में आपको घटनायें घड़नी पड़ती हैं। दोनों दशाओं में आपको विकास-क्रम का ध्यान रखना पड़ेगा।

**१२–पात्रों का समावेश**—तीसरा प्रश्न पात्रों के समावेश का है—"पात्रों" का कथा में प्रवेश कैसे कराया जाय? "पात्र" से अभिप्राय उनका है जो कथा में खिलाड़ी हैं; चाहे वह कुत्ता, बुद्धू, स्मिथ, देवदत्त, या आपकी मानसिक-कल्पना का कोई भूत हो।

(१) <u>पात्रों का कथा के आरम्भ में परिचय</u>—पहला तरीका यह है कि आप अपनी कथा के आरम्भ में प्रधान पात्रों का परिचय करा, पाठकों की उनसे मुलाक़ात करा दीजिए। जब वे उन खिलाड़ियों से परिचित हो जायेंगे तो उनकी रुचि कथा में लग जायगी। यह तरीका स्पष्ट है। इससे आप मज़े में अपने सब पात्रों को साथ लेकर कथा कह सकते हैं। पाठक के मन पर उनका संस्कार होने से वह आसानी से उनके कामों को समझ सकता है। यदि कथा लम्बी हो तोभी जब आप अपने किसी पात्र को सामने लायेंगे तो पाठक तत्काल उसको पहचान लेगा। यदि अन्य नये पात्रों का प्रवेश कराना होगा तो उनका भी कुछ परिचय करा कथा में शामिल करना सहज है।

(२) कथा के प्रसार के समय पात्रों का परिचय—दूसरा ढंग, पात्रों को बिना किसी परिचय के, मैदान में छोड़ देना है। जैसे जैसे कथा की वृद्धि होती जाय, उसी के अनुसार आवश्यकतानुकूल पात्रों का परिचय भी करा दिया जाय। यह साधारण ढंग है।

**१३–पात्र-परिचय में वर्णन और व्याख्या**—पात्रों का परिचय कराने में, वर्णन और व्याख्या, दोनों का काम पड़ जाता है—एक की सहायता से तो पात्र का चित्र पाठक के हृदय पर खिंच जाता है, दूसरी पात्र का स्वभाव-ज्ञान कराने में सहायता देती है। पाठक की बड़ी इच्छा कथा पढ़ते समय यह रहती है कि कहानी चलती चले। जहां पात्रों के सम्बन्ध में अधिक वादा-विवाद बढ़ाने के कारण कथा रुकी, पाठक का दिल फौरन ऊबने लगता है।

**१४–पात्रों के चरित्र-विकास का ढंग**—ऊपर जो कथन किया गया है वह पात्रों के परिचय के सम्बन्ध में है। पात्रों का चरित्र-विकास, व्याख्या और वर्णन को छोड़ कर, वार्तालाप और कथा द्वारा भी हो सकता है; अर्थात्—पात्र क्या कहते हैं, वे क्या करते हैं—आप इन दो तरीकों द्वारा पाठकों की उत्सुकता बढ़ा सकते हैं। कथा द्वारा उनके चरित्र-विकास की बात के विषय में विशेष क्या कहें, आप घटनाओं के क्रम को चतुराई से चुन कर अपने ख़ास ख़ास पात्रों में पाठक का अनुराग उत्पन्न कर सकते हैं।

**१५–कथा-स्थापना (Setting) का परिचय**—अब स्थापना के प्रारम्भ करने का प्रश्न सामने आता है। दो तरीक़े जो पात्र-परिचय के सम्बन्ध में बतलाये हैं—कथा के आरम्भ

में और कथा-वृद्धि के साथ साथ—उनका यहां पर भी विचार किया जाता है।

प्रारम्भ में कथा-स्थापना—यदि कथा की स्थापना आवश्यक, या जटिल, अथवा दोनों हैं तो उनको आरम्भ में ही स्थान देना चाहिए। फरज़ करो यदि युद्ध की कथा है तो पहले युद्ध-भूमि का वर्णन आवश्यक होगा। किसी बेलून की घटना की कथा में पहले बेलून की रचना का अति स्पष्ट विवरण ज़रूरी है; किसी रहस्य की कथा है तो रहस्य-पूर्ण घर का वर्णन नितान्त उपयुक्त है। परन्तु यह ध्यान रहे कि स्थापना का लम्बा वर्णन लम्बी कहानी का सूचक है। स्थापना की लम्बाई ऐसी न हो जाय कि पाठक रास्ता ही भूल जाय।

कथा-वृद्धि में स्थापना का परिचय—जैसा पहले पात्रों के विषय में लिखते हुए कह चुके हैं, परिचय का यह ढंग साधारण है। जैसे जैसे कथा का उत्तरोत्तर विकास होता जाय, उसी के अनुसार साथ साथ आवश्यक स्थापना भी कर सकते हैं। यहां इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि स्थापना-वर्णन जहां तक हो सके संक्षिप्त रूप में हो; कथा की गति रुके नहीं, चाहे वह छोटी कथा हो चाहे बड़ा उपन्यास। वर्णन और व्याख्या की कठिन समस्याओं को लेखक शीघ्र हल नहीं कर सकता; उसकी गति कम होही जाती है—वह ठोकर भी खा जाता है। कथा के आस पास, इर्द गिर्द, निकटवर्ती (Surroundings) पदार्थों का वर्णन स्पष्ट और संक्षिप्त होना चाहिए।

१६—"स्थापना" का लक्षण—कथा में "स्थापना" से अभिप्राय किसी दृश्य—खेत, जंगल, पर्वत, नदी, आदि—का वर्णन करना नहीं; बहुत से लेखक इसी में अपना समय खर्च कर उसे "स्थापना" के गले मढ़ देते हैं। "स्थापना" से अभि-

प्राय उस मञ्च से है जिस पर खेलाड़ी लोग आकर अपना खेल दिखलाते हैं। वहां स्थान-वर्णन ( Topographical ) सम्बन्धी आवश्यक व्योरे की ज़रूरत है; शीत, उष्ण, आवश्यक रंग, शब्द, और गंध सभी मेल ठीक ठीक रहने चाहियें। एक निपुण लेखक के हाथ में यह जादू है, वह इसके द्वारा कथा की रोचकता कई गुणा बढ़ा सकता है; नावाकिफ़ के हाथ में यह विष है।

**१७-कथा की भाषा**—कथा व्यक्ति की मानसिक-कल्पना और हृदय को उत्तेजना देती है, और क्यूंकि यह घटनाओं का प्रयोग करती है, इसलिए स्वाभाविक ही यह हलके भोजन की तरह शीघ्र हज़म होनी चाहिए; मार्मिक और दार्शनिक निबन्धों के लच्छों की इसमें आवश्यकता नहीं। इसके पाराग्राफ और वाक्य व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों की अपेक्षा छोटे होने चाहिये। अतएव कथा की भाषा का मूल गुण यह होना चाहिए कि पाठक पढ़ता जाय और समझता जाय; उसको भाष्य की ज़रूरत न पड़े। लम्बे पाराग्राफों में परिणाम देर से निकलता है, इस कारण वे गति के बाधक हैं। लम्बे वाक्यों में कई भाव एकत्रित होने से जटिलता आ जाती है, इसलिए वे भी कथा के उपयुक्त नहीं। छोटे वाक्य क्रमानुसार भाव प्रगट करते है, इस कारण वे घटना-क्रम वर्णन करने के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं; और वे आसानी से समझे भी जाते हैं। यह भी स्मरण रहे कि वाक्यों की लम्बाई तथा रचना में लगातार एक तान, एक स्वर, भी लेखन-कला का भारी दोष हैं।

इस दोष को दूर भगाने का उत्तम इलाज़ "क्रिया" का अनुकूल प्रयोग समझना है। कथा में मुख्य बात घटना है; घटना में कार्य्य प्रधान है; कार्य्य (action) का बोधक केवल क्रिया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि कथा-स्थापना करने में क्रिया-

प्रयोग ठीक जानना लाज़मी बात है। कथा में कर्म-वाच्य क्रिया की अपेक्षा कर्तृवाच्य क्रिया का प्रयोग अधिक उपयोगी है, जैसे—

"बहुत से अमरूद तोड़े गए थे। वे बड़ी मुश्किल से खाए गए। रात को बड़ी देरी से घर पहुंच सके थे।"

यह कर्मवाच्य क्रिया है। अब इसी का कर्तृवाच्य स्वरूप देखिए; जैसे—

"हमने बहुत से अमरूद तोड़े; बड़ी कठिनाई से हमने उनको खाया। रात को बड़ी देर से घर पहुंचे।"

**१८—वार्तालाप** ( Dialogue )—निबन्ध के अन्य भेदों में भी वार्तालाप का प्रयोग किया जाता है, किन्तु कथा में इसका ख़ास स्थान है। इसके दो उपयोग हैं—कथा की गति बढ़ाना और पात्रों का परिचय देना। उच्च कोटि की वार्तालाप-शैली से दोनों काम निकल सकते हैं। यह भी हो सकता है कि वार्तालाप के द्वारा ही कथा कही जाय, किन्तु यह उस समय जब कि लेखक का घटनाओं की अपेक्षा पात्रों से अधिक-तर अनुराग हो। इसके इस नाटकीय गुण की उपयोगिता स्पष्ट है। जो मज़ा पात्र के अपने कथन में आता है, जो चरित्र-विकास उसका अपना कथन सुनने से हो सकता है, वह पात्र सम्बन्धी बातें लिख देने से नहीं हो सकता।

**१९—वार्तालाप की रचना**—यदि बातचीत को ओजस्वी बनाना है तो उसे पात्र के अनुकूल बनाइए। इससे पाठक को पात्र का चित्र खेंचने में सहायता मिलती है। यह ज़रूरी है कि पाठक ने जो चित्र पात्र का खेंचा है, पात्र उसी के अनुकूल व्यवहार करे। राना प्रताप की बातचीत राना

प्रताप की शान के अनुसार हो; एक स्कूली लड़का स्कूली-लड़के की तरह बोले; एक भूत भूतों ही के तरह व्यवहार करे।

कुछ विशेष नियम वार्तालाप के भी हैं। वार्तालाप लम्बे वाक्यों में नहीं हुआ करता, इसलिए लेखक को वार्तालाप में छोटे वाक्यों का उपयोग करना चाहिए। संयोजक और अर्थ-व्यंजक पदों का भी कुछ काम नहीं, क्योंकि उनका प्रयोजन बोलने में स्वर को विकृत रूप (Inflections) देने से निकल आता है। प्रभावशाली वार्तालाप लिखने का एक मात्र उपाय यही है, चाहे ऐतिहासिक कथा हो अथवा मनघड़न्त उपन्यास, कि लेखक को अपने पात्रों का यथार्थ ज्ञान हो, और उसको इसका भली प्रकार अनुभव हो कि ख़ास अवस्था, ख़ास योग्यता, और ख़ास शिक्षा के पात्र स्वाभाविक ही किस प्रकार बोलते चालते हैं।

**२०—वार्तालाप का समावेश कैसे हो**—साधारण ढंग वार्तालाप समावेश का यह है कि वार्तालाप के आरम्भ करने से पहले उसने कहा, हरि ने कहा, कृष्ण ने कहा, आदि लिख कर वार्तालाप आरम्भ कर देते हैं। यह जी उबाने का तरीक़ा है। प्रकृति विभिन्नता चाहती है, और वह विभिन्नता बोलने वाले की आवाज़ के अनुकूल क्रिया का प्रयोग करना है; जैसे—उसने पुकारकर कहा, वह बक उठा, वह रो कर बोला, उसने मेरे कान में फुसफुसाया, वह चिल्लाया, वह भिल्लाया, वह धीरे से बोला, वह बिलबिलाया, वह बड़बड़ाया, उसने ज़ोर दिया, वह गर्जा, उसने सब उगला दिया, वह विलाप करने लगी। जहां दो व्यक्तियों की बातचीत हो वहां किसी परिचय-दायक क्रिया की ज़रूरत नहीं; वहां बातचीत ज्यूं की त्यूं रख देनी चाहिए।

**२१—गल्प** ( Short Story )—अब तक जो कह चुके हैं वह दोनों, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक, उपन्यासों के लिए बराबर उपयुक्त है। उपन्यास-भेद पर कोई विस्तृत विवाद यहां अनावश्यक है। अब हम केवल "छोटी कहानी" के सम्बन्ध में दो चार मोटी मोटी बातें कहते हैं।

(क) साधारण छोटी कहानी एक निश्चित घुण्डी से शुरू होती है और उसी निश्चित घुण्डी को खोलती है। इस घुण्डी के बीच जो गांठें हैं, कहानी का नायक उन्हीं को खोलता है। जैसी कठिन गांठे होंगी वैसी ही अधिक मनोरंजकता उस कहानी से होगी। लेखक की चतुराई इसी में है कि गांठों के भिन्न भिन्न रूप कर दे; उनके खोलने की कठिनाइयों को बढ़ा दे, और पाठक को गल्प के पात्रों से अच्छी प्रकार मिला दे। "आश्चर्य्य-जनक-घंटी" में घंटी आप ही आप बजती है, यह उसकी घुण्डी है। उसके खोलने में कई गांठों को खोलना पड़ता है; गांठ के बाद गांठ आती है; रोचकता बढ़ती जाती है। बेचारे स्काट के साथ हम बड़ी सहानुभूति करते हैं। गल्प में इन्हीं गांठों को "स्थिति" ( Situation ) कहते हैं।

(ख) गल्प की गांठों को "स्थिति" कहते हैं। बहुत सी ऐसी, पराकाष्ठा तक पहुंचाने वाली, गांठों की माला को गल्प-विन्यास ( Plot ) कहते हैं। इसका मोटा उदाहरण देखिए। बद्रीप्रसाद जंगल में लकड़ी काटने जाता है; वहां उसको शेर मिला। यह पहली स्थिति है। प्राण बचाने के लिए भागता हुआ वह नदी में घुसता है; यहां मगरमच्छ का सामना हुआ। यह दूसरी स्थिति है। वह मगरमच्छ से डर कर पीछे हट कर गिर जाता है; शेर उस पर से कूद कर मगरमच्छ के मुंह में जा गिरता है; वे दोनों एक दूसरे को मार डालते हैं। यह गल्प की पराकाष्ठा है। ऐसी स्थितियों का विकास करने के

लिए कल्पना-शक्ति चाहिए। विना कल्पना-शक्ति के कोई मनो-रंजक गल्प नहीं लिख सकता।

(ग) गल्प की स्थितियों का मनोरंजक होना ही काफी नहीं है, बल्कि उनका विकास भी यौक्तिक (Logical) होना चाहिए। पाठक की अभिलाषा दो प्रकार की होती है—वह एक स्थिति से निकल-कर दूसरी में अकस्मात ही प्रवेश करना चाहता है, और साथ ही छलांगें मार कर नहीं। "यह बात है! मैंने पहले नहीं समझा था!" ये शब्द उसके मुंह से निकलने चाहियें। इसी अचिन्तित-पूर्व और अवश्यम्भावी के ताने बाने को द्वैधावृत्ति कहते हैं। यही है जो कथा में बराबर रुचि बनाये रखती है।

(घ) स्थितिओं का पराकाष्ठा से ही यौक्तिक सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, वल्कि पात्र के साथ भी इनका वैसा सम्बन्ध दर्शाना आवश्यक है। अच्छी गल्प में पात्रों का सम्बन्ध बिगड़ जाने से स्थितियों में इच्छानुकूल रोचकता नहीं ला सकते। परिणाम कुछ का कुछ निकल आता है।

**२२—गल्प का मुख्य पात्र**—गल्प में पहले मुख्य पात्र का निश्चय कर लेना ज़रूरी है। पात्र लड़का है या लड़की; स्त्री है या पुरुष; जवान है या बुड्ढा—यह पहले तै कर लेना ज़रूरी है। एक दस वर्ष के लड़के ने अपने बाप की जेब में से अठन्नी चुरा ली है; बाप छिप कर उसकी चोरी देखता है। बाप स्वयं इस फिकर में है कि अपने बैंक से, जहां वह नौकर है, दस हज़ार के नोट चुरा ले। अब इस कथा में नायक कौन रहेगा? जो नायक होगा उसी की दृष्टि के अनुसार कथा लिखी जायगी। "आश्चर्य्यजनक-घंटी" में यदि स्काट की बजाय उसकी स्त्री घंटी का आप ही आप बजना सुनती तो

उस कथा का सारा रंग बदल जाता। पात्र चाहे कई हों, परन्तु मुख्य पात्र की दृष्टि के अनुसार, उसका पक्ष लेकर, गल्प लिखी जायगी, तभी उसका प्रभाव भी पड़ सकता है।

**२३–अन्य पात्रों का परिचय**—उपर्युक्त कथन से यह नहीं समझना चाहिए कि अन्य पात्रों की कुछ महत्ता ही नहीं। सब पात्रों के सम्बन्ध में प्रश्न यही रहता है—इनमें जान कैसे डाली जाय? लेखक उनका वर्णन करे, व्याख्या भी दे, किन्तु वह बहुत ही सूक्ष्म रूप में होनी उचित है। अच्छे उपन्यासकार दूसरे पात्रों द्वारा उनका विकास करते हैं। कुछ उनकी बातचीत से उनका पता चलता है, अन्त को जब वे कुछ करके दिखलाते हैं तो उनका अधिक भेद खुलता है। इसका सम्बन्ध गल्प की स्थिति से है। गल्प में, "स्थिति" प्रधान फलदायक तत्व है।



## अभ्यास (Exercise)

१—निम्नलिखित शीर्षकों में से किसी एक का, कालक्रमानुसार संक्षिप्त व्योरा लिखिए—

१. नौकरी की ढूंढ़।
२. स्कूल में मेरा पहला दिन।
३. मैं फुटबाल का कप्तान कैसे बना।
४. मैंने तैरना कैसे सीखा।
५. मेरी निराहार अंधेरी रात।
६. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का प्रथम दिन।

२—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर लम्बा पाराग्राफ लिखिए। पहले परिणाम दिखलाइए, बाद में अन्य बातों का ब्योरा दीजिए—

१. मोटरकार की घटना।
२. पिछले शनिवार का फुटबाल मैच।
३. पुस्तक की ख़रीद।
४. रहने के लिए कमरे की तलाश।
५. मेरा रिवालवर से पहला परिचय।
६. खोए हुए बच्चे की तलाश।

३—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक का ब्योरा, घटनाओं के यौक्तिक-क्रमानुसार, ठीक ठीक दीजिए—

१. पानीपत की पहली लड़ाई।
२. विश्वासराव की पूना से पानीपत को कूंच।
३. कालिज-समाचार-पत्र का प्रथम वार्षिकोत्सव।
४. मेरी बद्रीनारायण-यात्रा।
५. वंग-विच्छेद कथा।

४—निम्नलिखित गल्पों में से किसी एक के साथ सम्बन्ध रखने वाले दो तीन पात्रों का चरित्र-वर्णन कीजिए—

१. मेरी पहली मुक्केबाज़ी।
२. विष्णुदास के साथ नौका-भ्रमण।
३. सम्मेलन के सभापति का चुनाव।
४. तांतिया टोपी सम्बन्धी छोटी कहानी।
५. छौलदारी के नीचे पहली रात।

५—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर कथा लिखिए। पात्रों का चरित्र-परिचय कथा वृद्धि के साथ साथ कीजिए—

१. माधो से मेरी क्यों बिगड़ी।
२. हकीकतराय का बलिदान।
३. चतुर्वेदी की अनुदारता।
४. बिहारीलाल की भूल।
५. तेजसिंह का देश-द्रोह।

६—निम्नलिखित सूचनाओं में से किसी एक का सहारा लेकर वार्तालाप बनाइए—

१. हेमचन्द्र को उसका मित्र नौकरी से घृणा का उपदेश देता है।
२. शालिग्राम जगन्नाथ सेठ से नई पत्रिका निकालने में सहायता मांगता है।
३. अध्यापक विद्यार्थी से अन्त को यह सत्य उत्तर सुनता है—"जानता हूं पर बतला नहीं सकता।"
४. स्वराज्य का प्रेमी किसी बोदे राजनीतिज्ञ से मिलने जाता है।
५. रामचन्द्र, मौलवी कमालुद्दीन को, राष्ट्र-भाषा हिन्दी की महिमा समझाता है।
६. कोटूमल अपनी बहिन यशोदा को स्त्री-शिक्षा के गुण बतलाता है।

—:०:—

## वर्णनात्मक-निबन्ध

१—"वर्णन" किसे कहते हैं—जब आप किसी तसवीर को देखें, या कोई गीत सुनें, या कोई खुशबू सूंघें, तो उस समय दो में से एक अवस्था आप के मन की होगी।

आपका मन तसवीर का अभिप्राय, राग की बनावट, खुशबू का सारूप्य जानने का यत्न करेगा, अथवा उस पर अच्छे या बुरे नए संस्कारों की छाप लगेगी—वे संस्कार जो स्मरण-शक्ति अथवा कल्पना में जागृति पैदा कर उन्हें चैतन्य करते हैं। लेखन-कला में मन का ऐसा उद्योग, जिसमें वह उन उपर्युक्त संस्कारों के अर्थ समझने की चेष्टा करता है, व्याख्या या स्पष्टीकरण कहलाता है; मन का दूसरा उद्योग, जब वह उन संस्कारों को अनुभव-जन्य बनाने का यत्न करता है, वर्णन या विवरण करना कहते हैं। व्याख्या और वर्णन में असली भेद मन के इस उद्योग की विभिन्नता में है।

यह सच है कि वह लेख जो व्यक्तिगत पदार्थों का निरूपण करता है प्रायः वर्णनात्मक कहलाता है, और व्याख्यात्मक-निबन्ध की सीमा गुणों या जाति-संज्ञा निर्देश तक ही परिमित है, तथापि वर्णन से अभिप्राय किसी एक निश्चित वस्तु का वर्णन, उसकी स्थिति समझा देना, ही नहीं है। सच्चा वर्णन वह है जो चित्र ही न खेंचे, बल्कि चैतन्य करने वाले संस्कारों की जागृति भी उत्पन्न कर दे।

वर्णन-शैली में इसी ख़ास गुण को लाना हमारा लक्ष्य है। फरज़ करो कोई आप से अपने कमरे का विवरण लिखने के लिए कहे। आप झट अपने कमरे की लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, उसमें रखी हुई वस्तुओं के नाम, इस ढंग से लिखना आरम्भ करेंगे जैसे कोई अजायबघर की सूची तय्यार करता है। यह उसी दशा में ठीक हो सकता है जब आप साधारण तौर पर अपनी माता, या मित्र को अपने निवासस्थान का ब्योरा देने लगे हो; परन्तु यह प्रभावोत्पादक वर्णन नहीं कहलाता।

२—हृदय-ग्राह्य वर्णन का ढंग—अब प्रश्न यह है कि वर्णन को हृदय-ग्राह्य कैसे बनाया जाय, अर्थात् विचार-तत्व को

प्रयोग करने की अपेक्षा चित्र-शैली द्वारा मन पर प्रभाव डालने का तरीक़ा, कौन सा है? अच्छा परीक्षा कीजिए।

वर्णन में रोचकता का अधिकांश भाग वह होता है जो कर्म-इन्द्रियों—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—के संचालन द्वारा हम पर प्रभाव डालता है। पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए इनका संचालन सब से अधिक गौरव-युक्त है। दृष्टि-गोचर संसार में आंख को कौन सी वस्तु सदा आकर्षित करती है? गति (Movement)। वृक्ष से पक्षी उड़ता है, बछिया उछलती है, कनकौया उड़ता है, तालाब में मछली कूदती है, इन सब की ओर गति (संचालन) के कारण आंख का ध्यान खिंचता है, और हम उनको देखते हैं। इसलिए वर्णन में प्रभाव भरने के लिए इन्द्रियों का संचालन मुख्य साधन है।

**३—वर्णन "शब्दाडम्बर-चित्र" नहीं**—लेखक के मन में यह ख़ास बात अच्छी प्रकार खचित हो जानी चाहिए। वह वर्णन को शब्द-चित्र (Word-painting) समझता है, इसलिए चुन चुन कर अच्छे अच्छे विशेषण देकर वह अपने वर्णन को भर देता है। यह भारी भूल है। चित्र निश्चल है; उसमें गति नहीं। शब्द बराबर चलते हैं; एक भाव के बाद दूसरा भाव क्रम-बद्ध चलना चाहिए, उनकी समकालीन गति नहीं हो सकती। एक बात यह भी है कि चित्र (Painting) केवल आंख द्वारा मन को आकर्षित करता है; वर्णन में सब इन्द्रियों का काम है। अधिकांश लोगों के दिमाग़ में देखने की आंख ही नहीं; उनके सामने कुशल चित्रकार की तसवीर मामूली चीज़ है। बहुत से लोगों में सुस्पष्ट संस्कारों की जागृति शब्द, गन्ध और रस से ही हो सकती है। इसलिए अच्छा शुद्ध वर्णन

चित्रकारी नहीं; वर्णन वह कला है जिसमें चित्रकारी का प्रवेश भी नहीं हो सकता।

**४-वर्णन में विशेषता**—कोई वस्तु जो मानसिक-कल्पना में जागृति उत्पन्न करे, वर्णन-सीमा के अन्दर शामिल है। परन्तु मानसिक-कल्पना में जागृति उत्पन्न कौन करता है? विशेष ब्योरा। जैसे, यदि हम शाक तरकारी का वर्णन करें तो केवल "शाक" कह देने से बहुत कम लोगों में कल्पना-जागृति होगी, परन्तु यदि हम कहें "गोभी", "आलू", "भण्टा", "लौकी", "भिण्डी", तो उन तरकारियों की ख़ास शकलें हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं; उनका आकार, परिमाण, रंग, स्वाद, गन्ध, सब संस्कार जाग उठते हैं। "आलू-कचालू" कहने से मुंह में पानी भर आता है। यह परिणाम केवल मूर्तिमान पदार्थों का नाम ले देने से ही नहीं निकलता, बल्कि हमारी स्मरण-शक्ति सदा विशेष-संज्ञा-सूचक पदार्थों से ही जाग्रत होती है। जब हम उन विशेष पदार्थों का नाम लेते हैं तो हमारी स्मरण-शक्ति हमें सहायता दे झट उनका चित्र हमारे सामने ला उनके गुण-दोषों के संस्कारों को जाग्रत कर देती है। हम अपने मित्र की "नेकी" के गुण को स्मरण नहीं रखते, बल्कि उसकी शीलता के कामों को स्मरण रखते हैं—वे काम जिनमें उसने उस गुण को प्रगट किया है। उसकी साधुता के बाहर के चिन्ह—उसकी निर्मल आंख, उसकी प्रेमभरी हंसी, उसकी मीठी प्यारी आवाज़—हमें उसकी याद दिलाते हैं। इसलिए हमारी मानसिक-कल्पना, जो स्मरण-शक्ति का दूसरा स्वरूप है, विशेष-संज्ञा-बोधक पदार्थों के वर्णन से ही जाग्रत होती है।

फिर समझ लीजिए। हमारी मानसिक-कल्पना-शक्ति को जगाने वाली वह चीज़ नहीं, बल्कि हमारा उसके साथ सह-

ख़ास हमारी उस शक्ति का प्रेरक है। किसी नवयुवक का वर्णन करते समय यदि हम कहें–"उसके लाल लाल गाल और स्वच्छ सफ़ेद दान्त"—तो पढ़ने वाले पर बुरा संस्कार नहीं पड़ता, किन्तु यदि हम कहें—"उसके कुत्ते जैसे सफेद दान्त और गोभी के फूल जैसे लाल लाल गाल"—तो संस्कार बड़ा बुरा पड़ता है। क्या लाल गाल और सफेद दान्त दोनों में एक जैसे नहीं? हैं, किन्तु कुत्ते और गोभी के फूल के साथ तुलना कर देने से उनका सहवास उन अच्छे संस्कारों, लाल और सफेद, को भी मिटा देता है।

अतएव वर्णन के यथार्थ और पूर्ण अर्थ यह हैं कि पाठक की-स्मृति द्वारा उसकी मानसिक-कल्पना को प्रेरणा की जाय। वह स्मरण-शक्ति पाठक के संस्कारों का कोष है, जहां कर्म और ज्ञान-इन्द्रियों के संस्कारो का खज़ाना है। यदि आप मुझे किसी गैया का आकार समझाना चाहते हैं तो आप उसके साधारण गुणों का वर्णन मेरे सामने करेंगे, किन्तु यदि आप अपनी घरेलू गैया का वर्णन मेरे सामने कहते हैं—मुझे उस ख़ास निश्चित पशु से परिचित कराने के लिए—तो आप साधारण गैया सम्बन्धी सब बातों को तो कहेंगे ही, पर साथ ही उसका दहना टूटा हुआ सींग, उसके माथे का सफेद दाग़, उसके छोटे स्तन, इत्यादि वे ख़ास निशानों की ओर, जो उसे अन्य गायों से अलग करते हैं, मेरा ध्यान अधिक आकर्षित करेंगे। बस मेरा ध्यान खींचने वाले यही ख़ास निशान, यही विशेष निश्चित ब्योरा उस गैया का यथार्थ वर्णन है।

**५—वर्णन सामग्री का संगठन**—जैसे उत्कृष्ट व्याख्या और शुद्ध तर्कना शक्ति के लिए निर्दोष-मनन आवश्यक साधन है, ऐसी कोई शर्त वर्णन के सम्बन्ध में नहीं। इसी हेतु बच्चों को आरम्भ से ही वर्णन का अभ्यास कराना चाहिए; उनको इसमें

उत्साहित करना उचित है। वर्णन सामग्री के संगठन में तोभी दो चार मुख्य बातें हैं जिनका विचार आवश्यक है।

**६–दृष्टि** (Point of View)—पहले तो वर्णन लिखने वाले की अपनी दृष्टि होनी चाहिए। यदि उसकी वर्णन-दृष्टि में कुछ भेद हो जाय तो उसे पाठक को उसकी निश्चित सूचना देनी आवश्यक है। किसी पर्वत के शिखर पर बैठ कर जो कुछ आप सुनते हैं या देखते हैं, उसका वर्णन करते हुए आप दूरस्थ जंगल के देवदारों की सर सर ध्वनि अथवा पक्षियों की चहचहाहट का ज़िकर न करें, यह स्पष्ट है। परन्तु वहां, उस ऊंचाई पर, जो संस्कार–क्षोभ, चंचलता, अथवा मनोविकार–आपके शरीर पर होते हैं उनका वर्णन आप उस दृष्टि से कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि आप अपने किसी वाकिफकार से घृणा करते हैं तो उसका वर्णन करते हुए आप अपनी ओर से झूठ बातें न मिला कर भी, बुरा संस्कार दे सकते हैं। फरज़ करो महीने के बाद उसी के साथ आपकी मित्रता हो जाती है तो उस समय आप उसकी ज़रूरत से जियादा प्रशंसा कर देंगे। पहले आपकी दृष्टि उसकी तरफ़ रुचि की थी; बाद में वह अरुचि में बदल गई। इसलिए लेखक की दृष्टि (Point of View), उसका पक्ष, उसकी रुचि अरुचि लेख की वर्णन-सामग्री-संगठन करने का निर्णय करती है।

**७–कथा और वर्णन**—रुचि निश्चित हो जाने के बाद वर्णन-सामग्री की योजना कैसे हो? उसका एक अत्यन्त अच्छा ढंग तो कथा का उपयोग करना है। उसके दो तरीक़े हैं—एक तो आप स्वयं देखते हुए अपने रास्ते के पदार्थों का वर्णन करते चलें, दूसरे जिनका वर्णन आप करें वे आपके पास से गुज़रते जांय।

**८-भौगोलिक-सामग्री का संगठन**—यह स्पष्ट है कि जब किसी स्थान, व्यक्ति, पदार्थ का सविस्तर वर्णन करना हो तो उसको क्रम-बद्ध उस स्थान की भौगोलिक स्थिति के अनुसार लिख सकते हैं। किसी मनुष्य का वर्णन हो तो उसको सिर से पैर तक—केश, आंखें, नाक, मुख, ठोडी, कंधे, कमर, टांगें, पाओं—सब क्रमानुसार कहेंगे, किन्तु ऐसा ढंग कभी तो अच्छा होता है कभी नहीं। यदि मनोविकार-दृष्टि ( Emotional Point of View ) उसके अनुकूल नहीं, या कथा-कल्पना में कुछ बाधा पड़ती हो तो यह ढंग अच्छा नहीं। हां किसी बड़ी वस्तु का ब्योरेवार वर्णन करना हो तो यह तरीक़ा उत्तम है। ऐसी दशा में भी यह अच्छा हो यदि स्थान सम्बन्धी ख़ास ख़ास बातों का, स्थान के अपने क्रम के अनुसार, वर्णन किया जाय; प्रत्येक पदार्थ का कुल के साथ सम्बन्ध होने से जो संस्कार होता है उसको भी सविस्तर ब्योरे से पहले या पीछे कहते चलिए।

**९-वर्णन की भाषा**—जब वर्णन में ख़ास वृत्तान्त के वर्णन पर ज़ोर दिया जा चुका है तो यह स्पष्ट है कि विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों का भी व्यवहार किया जाय। परन्तु यह स्मरण रहे कि वर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए थोड़े चुने हुए शब्दों और शीघ्रगामी वाक्यों ( Rapid Sentences ) की नितान्त आवश्यकता है। यूं तो अभिप्राय-पूर्ण थोड़े वाक्य सभी निबन्धों में चाहियें, किन्तु वर्णन में तो इस नियम को तोड़ना बिल्कुल क्षन्तव्य नहीं। "व्याख्या" और "तर्क" में विषय को भली प्रकार स्पष्ट करने के लिए शब्द विस्तार हो जाय तो कोई बात नहीं, किन्तु वर्णन में मनोरंजकता का बलि-दान किए बिना स्पष्टता आनी चाहिए। चूंकि हमने मानसिक-

कल्पना को जगाना है, इसलिए उत्तेजना ( Stimulation ) हमारी वर्णन-पताका होनी चाहिए। कई व्योरे हों, किन्तु चुने हुए शब्दों में, यह नियम प्रत्येक व्योरा लिखने में मुख्य रखना चाहिए।

सब से पहले विशेषणों और क्रिया-विशेषणों को जवाब दीजिए। लेखकों को प्रत्येक नाम के साथ एक विशेषण और प्रत्येक क्रिया के साथ एक क्रिया-विशेषण लगाने की भद्दी आदत पड़ जाती है। बहुत से तो विशेषणों और क्रिया-विशेषणों का ढेर लगा देते हैं। यह सर्वथा निरर्थक है। प्रत्येक विशेषण और क्रिया-विशेषण का आदर कर उसके उचित स्थान पर उसका प्रयोग करना चाहिए। वह, लेखक की मेहरबानी से वहां पर उपस्थित न हो, बल्कि अपने अधिकार से उसने वह स्थान पाया हो। इसका आसान ढंग यह है— आप अपने वाक्यों की रचना ऐसी कीजिए कि विशेषणों और क्रिया-विशेषणों के बिना ही आपका अभिप्राय स्पष्ट हो जाय। इसके लिए आपको विशेष्य और क्रियाओं के चुनने में बुद्धि से काम लेना पड़ेगा। इस प्रकार के अभ्यास से आपकी वर्णन-शैली प्रभावोत्पादक हो जायगी और आप शब्दों का यथार्थ उपयोग करना सीखेंगे।

**१०—सारांश**—जब आप वर्णन करने लगें तो (१) विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों से स्मृति द्वारा मानसिक-कल्पना को उत्तेजित कीजिए, (२) अपनी एक निश्चित दृष्टि ( *Point of View* ) रखिए, या जब आप अपना पक्ष बदलें तो अपने पाठकों को उसकी सूचना दीजिए, (३) कथा द्वारा वर्णन-शैली की सहायता करने से न चूकिए, (४) अपने सविस्तर व्योरे को स्थान के क्रमानुसार रखिए ( यदि कोई और अच्छा उपाय न मिले ), (५) जहां तक हो सके वृत्तान्त कहने

में संक्षेप से काम लीजिए और उसमें विशेष्य और क्रिया का अधिक प्रयोग कीजिए। आपका वर्णन छोटा और विचित्र ( Striking ) हो। मानसिक-कल्पना-शक्ति ( घटना सम्बन्धी बातों को छोड़ कर ) अधिक प्रयोग से शीघ्र थक जाती है।

—:o:—

## अभ्यास (Exercise)

१—नीचे लिखे विषयों का, सुझाई हुई बातों के अनुसार, वर्णन कीजिए; अपनी निश्चित सम्मति (Point of View) रखिए—

(क) पुस्तकालय;

दरवाज़े—ऊंचाई, आकार, आवाज़।
खिड़कियां—ऊंचाई, आकार, स्थिति, रंग।
असबाब—आकार, स्थिति, रंग।
पुस्तकें—स्थिति, रंग, परिमाण।
पाठक—संख्या, भाव, पोशाक।
साधारण—कागज़ की खरखर, पैंसिल का हिलना, सांस, सूर्य्य की रोशनी, हवा।

(ख) बाज़ारी दृश्य—

स्थान—तंग, ऊंची इमारतें, धूल, इक्का, घोड़ा, गाड़ी, ठेला, कबूतर, फलों के टोकरे, खोंचा, धूयां।
लोग—रंग, गति, शोर।
व्यक्ति—छाबड़ी वाले, मेवाफरोश, गन्ने वाला, घासी-राम के चने, गांओं के लोग, यात्री, विदेशी घुमक्कड़, पुलीस का सिपाही।
साधारण—शोर, इक्के, गैया, कुत्ते, लू, गाड़ी, सौदा

बेचने वालों की आवाज़ें, गन्ध, हलवाई, मिठाई-वाला, चुरट, अमरूद, सड़क की कीच, गोबर, लीद, मोरी।

२—नीचे लिखे विषयों पर दो छोटे छोटे पाराग्राफ लिखिए। पहले में पाठक को समझाने की चेष्टा कीजिए; दूसरे में अनुभव कराने की—

(क) मेरा सहपाठी।
(ख) पढ़ाई के समय स्कूली कमरा।
(ग) मेरी पुरानी जान पहचान का मकान।
(घ) मेरा प्यारा कुत्ता।
(ङ) पहाड़ का ग्राम।
(च) इक्का।
(छ) पिछला मुहर्रम।
(ज) उजाड़ गली।
(झ) भरत मिलाप।
(ञ) आर्य्य-समाजी नगर-कीर्तन।
(ट) राधास्वामियों की संगत।

३—नीचे लिखे विषयों में रंग, गति, और शब्द का सविस्तर बोध कराइए—

(क) गंगातट पर सूर्य्योदय।
(ख) मन्दिर में पूजा।
(ग) स्कूल में आध घंटे की छुट्टी।
(घ) सभा विसर्जन।
(ङ) व्याख्यान से पहले सभा-मण्डप।

४—घर की रसोई, मित्र के यहां की दावत, ब्रह्मभोज को लिखते हुए उसमें गति, गन्ध और स्वाद का वर्णन कीजिए।

५—गंगा जी की बाढ़ का वर्णन गति और शब्द को मुख्य रख कर कीजिए—

६—कथा के ढंग से निम्नलिखित विषयों का वर्णन लिखिए—

(क) रेल से शहर में प्रवेश।
(ख) स्कूल से घर आना।
(ग) रेल की टक्कर।
(घ) दंगल।
(ङ) हरिद्वार।
(च) मसजिद में नमाज़।

—:o:—

## व्याख्यात्मक-निबन्ध

**१—व्याख्या की सामग्री**—व्याख्यात्मक-निबन्ध भावों को कथन करता है, पदार्थों को नहीं; यह सार्वलौकिक नियमों का बखान करता है, व्यक्तिगत नहीं। आप किसी ख़ास इञ्जिन का नाम लिए बिना स्टीम-इञ्जिन के मूल तत्त्व की व्याख्या कर सकते हैं; किसी ख़ास व्यक्ति को सामने रखे बिना दया के गुण का बखान कर सकते हैं; किसी विशेष व्यवसाय का नाम लिए बिना वाणिज्य-नियमो की महत्ता समझा सकते हैं। वह शब्द, जो सार्वलौकिक भाव का बोधक है, संज्ञा ( Term ) कहलाता है। व्याख्या का उद्देश्य इन संज्ञाओं को स्पष्ट करना है।

**२—वर्णन और कथा के साथ व्याख्या का सम्बन्ध**—किसी संज्ञा, जैसे पशु या पक्षी, को समझने के लिए

प्राय: हमारे सामने उस संज्ञा का प्रतिनिधि कोई मूर्ति रहती है, अर्थात् किसी विशेष पशु या पक्षी की आकृति। यहां वर्णन, व्याख्या की सहायता करता है; यहां, बेशक, इन दोनों के भेद की लकीर खेंचना कठिन है। यदि आप अपने किसी मित्र को पक्षियों के स्वभाव, उनकी उड़ान, उनकी किलोलों को समझाने की चेष्टा करेंगे तो बहुत संभव है कि आप किसी ख़ास पक्षी का वर्णन कर बैठें। उस एक पक्षी का उदाहरण सामने रख कर आप सामान्य पक्षि-जाति का विषय समझाते हैं। इसी प्रकार यदि आप क्षमा की व्याख्या करते हैं तो अपने किसी ख़ास मित्र का उदाहरण देकर उस विषय का सामान्य रूप से बोध कराते हैं; अर्थात् आप विशेष-संज्ञा से जाति-बोधक व्यापक-संज्ञा का परिज्ञान कराते हैं। व्याख्यात्मक-निबन्ध का यही "जाति-निर्देश" (Generalization) धर्म है। दो पशु एक जैसे नहीं होते, किन्तु उनमें कई बातें एक जैसी होती हैं। वर्णन केवल ख़ास व्यक्ति (Individual) पर ज़ोर देता है; व्याख्या उनके साधारण साझे गुणों को कहती है।

व्याख्या में जिस प्रकार वर्णन का प्रयोग करते हैं, वैसे ही कथा को भी काम में ला सकते हैं। "नौका कैसे बनती है" यह व्याख्यात्मक-निबन्ध है। इसी का शीर्षक बदल दीजिए— "मैंने कैसे नौका बनाई"—तो यह कथा हो गई, जिसमें घटनाओं का ब्योरा है, परन्तु वे घटनायें उन्हीं नौका बनाने के नियमों की व्याख्या करती हैं। पत्र और पत्रिकाओं के अधिकांश विशेष लेख ऐसी ही व्याख्यात्मक ढंग पर लिखे होते हैं। ऐतिहासिक लेख अधिकांश इसी प्रकार के होते हैं—रूप कथा का, किन्तु उद्देश्य व्याख्यात्मक।

२—लक्षण (Definition)—सामान्यतया, शुद्ध व्याख्या का आरम्भ लक्षण से होता है। यह एक विशेष संज्ञा को, जो

विचाराधीन है, उसकी अपनी जाति में प्रवेश तथा उसका उस जाति के अन्य सभ्यों से सम्बन्ध कराती है, जैसे—

टेनिस वह खेल है जिसमें रेकट से गेंद को मार कर चलता रखते हैं।

इसमें, टेनिस संज्ञा को जाति-वाचक खेल संज्ञा में प्रवेश करा, उसकी मुख्य बात कह कर, उसका उसकी अपनी जाति के अन्य खेलों से सम्बन्ध करा दिया है।

**४—व्याख्या का तरीक़ा**—लेकिन लक्षण तो व्याख्या का आरम्भ मात्र है। अब लक्षण के अन्तर्गत संज्ञाओं की व्याख्या होनी चाहिए। व्याख्या प्रायः एक संज्ञा का स्पष्टीकरण नही करती, बल्कि संज्ञाओं के संघात (Combination) की प्रकाशक है। यह एक भाव को प्रत्यक्ष नही करती, बल्कि एक स्थिति की आविष्कारक है। तब इसकी (व्याख्या की) विधि क्या है?

व्याख्या की विधि को थोड़े शब्दों में ऐसे कह सकते हैं—जो संज्ञा (Term) या स्थिति (Situation) के प्रतिनिधियों (Factors) को सामने रख कर पीछे से उनका सर्वाङ्ग-विस्तार करती है।

प्रतिनिधि या नियोजक (Factors) क्या बला है? सुनिए। गणित में छः और पांच, तीस के नियोजक हैं, इनको आपस में गुणा करने से तीस होता है। इसी सादृश्य से, किसी स्थिति को पैदा करने वाले कारण उसके नियोजक कहलाते हैं।

फरज़ करो, एक अनुभवी इञ्जीनियर के तौर पर, आपको मध्य भारत के किसी ऐसे भाग की दशा जानने के लिए भेजा गया है जहां एक धनिक पारसी लोहे की खान का व्यवसाय आरम्भ करना चाहता है। आपको इस व्यवसाय का पूर्ण ज्ञान है; दूसरे शब्दों में, आप लोह-खान सम्बन्धी नियोजकों

( Factors ) को समझते हैं। आप उन (एक एक नियोजक) के सहारे उस भाग की परीक्षा करते है, और प्रत्येक परीक्षा की महत्ता-पूर्ण बातों का पारस्परिक सम्बन्ध दिखला कर अपनी सम्मति को अपनी रिपोर्ट में विस्तार रूप से लिखते हैं; यही व्याख्या है। आपका धनिक पारसी उस भाग की दशा जानना चाहता है; आप उसकी व्याख्या करते है।

इसलिए शुद्ध निर्दोष व्याख्या दो बातों पर अवलम्बित हैं—

(१) स्थिति के प्रधान (underlying) नियोजकों का पता लगाने की योग्यता।

(२) विस्तार करने वाले वृत्तान्तों का अधिकता से समावेश।

पहली ( योग्यता ) की प्राप्ति के लिए कोई पुस्तक आपकी सहायक नहीं कर सकती।

बातें सोच निकालने की शक्ति—बुद्धि का उत्कृष्ट गुण आप स्वयं पैदा कीजिए। इसके बिना आप किसी बात को स्पष्ट समझा नही सकते। बाकी रहे विस्तार करने वाले वृत्तान्त, सो उनका विचार करते हैं।

**५—व्याख्या सम्बन्धी व्योरा**—आप अपने विषय का तीन प्रकार के व्योरों से विस्तार कर सकते हैं—(१) वह व्योरा जो आपके विषय का प्रतिपादक है; (२) वह व्योरा जो आपके विषय का विरोधक है; (३) वह व्योरा जो आपके विषय का सादृश्य ( Like ) और असादृश्य ( unlike ) बतलाता है।

अब ऊपर के उदाहरण को इनके अनुसार घटाइए। (१) जिस भू-भाग, खान, की आप परीक्षा करने गए थे, उसमें

कौन कौन खनिज पदार्थ थे ? (२) उसमें कौन कौन से नहीं थे? (३) किस किस धातु से उनका सादृश्य है ?

और उदाहरण लीजिए। अब्राहम लिङ्कन का चरित्र-वर्णन करना है। (१) वे जन-साधारण के प्रिय थे; वे निर्भीक थे; वे देश-भक्त थे; दीर्घद्रष्टा थे; वे क्षमाशील थे। (२) वे बड़े विद्वान नहीं थे; कभी कभी बोलने में सावधान न थे। (३) सादगी, स्वार्थत्याग, और देश-हित में वे गेरीबाल्डी के सदृश्य थे, किन्तु अन्य किसी बात में समता न थी। दूसरे इटेलियन नेताओं में से उनकी अधिक समता मेज़िनी से थी। जार्ज वाशिङ्गटन से उनका सादृश्य बहुत कम है; वेब्स्टर से उनकी प्रकृति, स्वभाव, और आदर्श में बहुत अधिक भेद था।

६—उदाहरणों की महत्ता—व्याख्या के वृत्तान्तों को सरल और स्पष्ट करने में उदाहरण सब से अधिक सहायता देते हैं। बहुत थोड़े लोग अमूर्त (abstract) विषयों को आसानी से समझ सकते हैं। उदाहरणों, सचित्र उदाहरणों से ही व्याख्यात्मक निबन्ध सुस्पष्ट होता है। आप अपने मित्र को ठोस नियमों द्वारा समझाना चाहते हैं। वह कहता है—"भई मिसाल देकर समझाइए।" अध्यापक के सामने आप तुलसीदास और भूषण की कविता की तुलना करते हैं; वह भी आप से उदाहरण पूछते हैं। सब जगह, सब देशों में विद्वान लेखक अपने विषय को व्यक्त करने के लिए उदाहरण पै उदाहरण देते हैं। इसलिए यदि आप अपने विषय को पाठकों के दिल पर बिठलाया चाहते हैं तो उदाहरण अधिक दीजिए।

७—व्याख्या-क्रम—व्याख्या के क्रम के विषय में हम काफी लिख चुके हैं। "ढांचा" लिखते समय उसकी मुख्य

बातों को समझा चुके हैं, तोभी दो विशेष नियमों को फिर लिख देते हैं—

(क) व्याख्यात्मक-निबन्ध से पहले उसका एक संक्षिप्त सार लिख लीजिए, जिसमें (१) आपको जो स्पष्ट करना है उसकी साधारण विज्ञापना हो; (२) इस व्याख्या के भागों का सारांश उनके क्रमानुसार एक एक वाक्य में लिख डालिए; यह दो आवश्यक बातें हैं। इस सारांश को पथ-प्रदर्शक के तौर पर पाराग्राफ रूप में लिख लेने से आपको अपनी व्याख्या लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी।

(ख) स्मरण रखिए, आपका निबन्ध इस विधि को बार बार दोहराता है—सामान्य, व्यापक सिद्धान्त की विज्ञापना और उसको विस्तार करने वाला ब्योरा। चाहे आपका विषय कितना ही बड़ा हो—"भारतवर्ष का इतिहास", "फ्रांस की राज्य-क्रान्ति", "वैदिक धर्म"—कोई विषय हो, आप चाहे उसके कई टुकड़े करें, परन्तु अन्त में बात वही होगी—व्यापक नियम के बाद व्यापक नियम अपने अपने विस्तार करने वाले ब्योरे के साथ चलता है। इस कारण प्रत्येक बड़े पाराग्राफ या छोटे पाराग्राफों के समुदाय में, व्यापक नियम और उसका विकास, यही रहेगा। जब यह सिलसिला बैठ जाता है तो फिर आप उदाहरणों और व्याख्यात्मक नोटों द्वारा भली प्रकार अपने विषय का विस्तार कर सकते हैं। अधिकांश व्याख्यात्मक निबन्धों का यही स्पष्ट सीधा मार्ग है।

**८—व्याख्या की रोचकता**—व्याख्यात्मक-निबन्ध का सम्बन्ध, क्योंकि सिद्धान्त और सम्मति के विकास के साथ है, इसलिए आवश्यक नहीं कि वह नीरस और अरोचक ही

हो। "लिखने में भाव को स्पष्ट करो" से अभिप्राय विषय को "निर्जीव" बनाना नहीं है। वाक्य-विन्यास-चातुरी, विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों का प्रयोग, मुहाविरों का ठीक उपयोग, ये सब बातें व्याख्यात्मक-निबन्ध को भी मनोरंजक बना सकती हैं।

—:o:—

## अभ्यास (Exercise)

निम्नलिखित विषयों का संक्षिप्त सारांश एक एक पारा-ग्राफ में लिखो—

१. शीतकाल में कृषि-जीवन।
२. कालेज और स्कूल के विद्यार्थी-जीवन में भेद।
३. म्युनिसिपल चुनाव।
४. पुस्तकालय का संगठन।
५. भारत-सेवा-समिति।
६. स्वामी विवेकानन्द जी का चरित्र-बल।

* * * * *

निबन्ध-भेद में चौथा नाम "तार्किक" निबन्ध का है। इसका विषय बहुत बड़ा है। इस पुस्तक में मैं इसको सम्मिलित नहीं करता। यदि ईश्वर ने चाहा तो कभी उस पर अलग पुस्तक लिखूंगा। मुझे दुःख है कि मैं प्रसिद्ध हिन्दी लेखकों के निबन्ध, उदाहरण के तौर पर, इस पुस्तक में शामिल नहीं कर सका। कथा, वर्णन, और व्याख्या में मुझे उनके अच्छे अच्छे अंशों को उद्धृत करना ज़रूरी था; मैं यह भी नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि मेरे पास वे ग्रन्थ मौजूद न थे, और न ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, के पुस्तकालय से मुझे कुछ सहायता मिली। खैर,

इसी पुस्तक का दूसरा भाग जब छपेगा, तो उसमें इस पुस्तक की पृष्ठ-संख्या देकर, परिशिष्ट रूप में, अच्छे अच्छे उदाहरण दिए जांयगे। पाठक महोदय निश्चिन्त रहें।

---

## लेखन-शैली (STYLE)

लेख में बल भरने के लिए चरित्र-बल की कितनी आवश्यकता है, यह हम पहले ( देखो पृष्ठ संख्या २६–२७ ) बतला चुके हैं। निर्मल भाव निर्मल मनन से ही आ सकते हैं, इसकी महत्ता भी जना दी गई है। अब यहां पर यह बतलाने की और आवश्यकता है कि सामान्यतया, लेख-द्वारा पाठकों पर प्रभाव डालने के कौन से नियम हैं, अर्थात् उत्कृष्ट लेखन-शैली के कौन ख़ास ख़ास गुण हैं।

सब से पहले, यह प्रत्यक्ष है कि पाठक लेखक का अभिप्राय समझे, उसको पता लगे कि लेखक क्या चाहता है; दूसरे, लेखक अपने पाठक की चित्त वृत्ति को वश में कर, किसी न किसी प्रकार उस पर प्रभाव डाले; तीसरे, पाठक लेख को पढ़ कर प्रसन्न या सन्तुष्ट हो।

इसलिए उत्कृष्ट लेखन-शैली का पहला प्रधान गुण, स्पष्टता ( Clearness )—जटिल से जटिल विषय को सुगम और सरल करने वाला बुद्धि-चमत्कार—है; दूसरा प्रधान गुण, प्रभावोत्पादक-शक्ति–ओज (Force) है, जिसका हृदय के साथ सम्बन्ध है; तीसरा प्रधान गुण, लालित्य (Elegance)—रुचि

को प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट करने वाला लालित्य-कला विशिष्ट गुण ( Esthetic Quality )—है। लेखन-शैली के यही तीन गुण व्यक्ति को उच्च कोटि का लेखक बनाते हैं। अब हमें इनकी प्राप्ति के साधनों का विचार करना है।

**१-स्पष्टता** ( Clearness )—यह बात स्वतः सिद्ध है कि आप अपने विचार दूसरों पर तभी स्पष्ट कर सकते हैं यदि आप स्वयं उनको स्पष्ट रूप से समझते हों। जब तक आप स्वयं अपने विचारों पर प्रभुत्व नहीं कर लेते तब तक दूसरो पर उनका प्रभाव डालने की संभावना बहुत कम है। अतएव, आप कभी भी किसी पदार्थ के ज्ञान को, चाहे वह साधारण हो या जटिल, अपना न समझें, जबतक कि आप उसका सुस्पष्ट और सीधा वृत्तान्त, अपने आपको अथवा दूसरों को, न कह सकें। आप विषय का निचोड़—उसकी सार वस्तु, मक्खन—निकालने की आदत डालिए, और अपनी साधारण बोलचाल अथवा लेख में सदा, सरल और स्वाभाविक तौर पर, अपनी वाक़फियत को प्रगट किया कीजिए।

तथापि स्पष्टता और यथार्थता ( accuracy ) में भेद है। फरज करो एक दरज़ी कपड़े की काट छांट का ब्योरा दो आदमियों को समझाता है। यद्यपि दोनों की स्कूली शिक्षा एक जैसी है तोभी एक के लिए वह विषय स्पष्ट है, दूसरे के लिए नहीं। पहला उस काम के पारिभाषिक शब्दों को समझता है, दूसरे के लिए वे शब्द बिल्कुल नए हैं। इसी प्रकार किसी मशीन का वर्णन एक प्रकार के श्रोताओं के लिए बिल्कुल जटिल और दूसरों के लिए अत्यन्त सरल हो सकता है, यद्यपि वर्णन करने वाले की यथार्थता में कोई सन्देह नहीं। स्पष्टता, इसलिए, सापेक्ष (Relative) सत्ता है, जिसका

श्रोताओं अथवा पाठकों के साथ बहुत कुछ सम्बन्ध है। लेखक को अपने पाठकों का ख़्याल पहले कर लेना चाहिए। कला-कौशल का पण्डित शिल्पी, यदि, अपने कारीगरों को कला के पारिभाषिक शब्दों द्वारा अपना विषय समझाने की चेष्टा करता है तो इसका उसे पूरा अधिकार है। परन्तु यदि वही विषय उसकी कला से अपरिचित लोगों को समझाना पड़ जाय तो इसके लिए भी उसे तय्यार रहना चाहिए, अर्थात् एक ऐसा तरीक़ा भी समझाने का सीखना चाहिए जिसके द्वारा उस विषय की परिभाषा से अनभिज्ञ पुरुषों को भी लाभ पहुंचाया जा सके। दोनों के ढंग भिन्न भिन्न हैं—पहला यथार्थ और पारिभाषिक है; दूसरा अधिक सार्वजनिक और अपरिभाषिक है। आप दोनों ढंगों का अभ्यास कीजिए; परन्तु आपके लेख की सफलता अधिकतर इसी में है कि आप किसी दशा में भी उनको अस्पष्ट न होने दें।

विषय के स्पष्टी-करण से अभिप्राय इतना ही नहीं कि हम केवल पाठकों को समझा भर दें, बल्कि उसके अन्तर्गत पढ़ने वाले का ध्यान खेंचना और उसमें उत्साह भरना भी है। इसके तीन उपाय है—(१) अपने पाठकों की योग्यता का विचार कर, तै कर लीजिए कि कितना वे जानते हैं, इसके बाद उनको धीरे धीरे, जो वे नहीं जानते, उसकी ओर ले जाने का यत्न कीजिए; (२) जैसे जैसे आप, पाठक की ज्ञान-वृद्धि हेतु, अपने विषय में प्रवेश करते चलें, आपको कथा, वार्ता, अलङ्कार, उपमा, कहावत, चित्र, नक़शा इत्यादि साधनों से उसको (पाठक को) एक एक पग अपने साथ साथ ले चलना होगा, (३) अपने लेख को, एक ओर तो सब प्रकार के जटिल पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से, बचाइए; दूसरी ओर उसे उन वचनों (Expressions) से दूर रखिए जो सर्वथा निरर्थक और भ्रम-मूलक हैं।

लेखन-कला की परिभाषा में, स्पष्टता नष्ट करने वाले, तीन मुख्य दोष हैं—संदिग्धार्थता (Ambiguity), अनिश्चय (Vagueness), और अव्यक्तता (Obscurity)। संदिग्धार्थक वह शब्द कहाता है जो दो या दो से अधिक भावों में से किसी एक में व्यवहृत हो—जिसका ठीक भाव मालूम करना कठिन हो जाय। संदिग्धार्थक वाक्य वह है जिसके दो या दो से अधिक अर्थ निकलें, अनिश्चित (Vague) कथन वह कहलाता है जिसके ठीक ठीक अर्थों को, काफी स्पष्टता के अभाव वश, पाठक न समझे; नितान्त अस्पष्ट वाक्य को अव्यक्त (Obscure) कहते हैं। जिनके लेखों में ऐसे दोष कभी कभी आ जायं, वे इनको आसानी से दूर कर सकते हैं। संदिग्धता और अनिश्चितता के दूर भगाने का उपाय यह है कि ऐसे निश्चयार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाय जो दूसरे अर्थों का बिल्कुल रास्ता ही बन्द कर दें; प्रायः, कथन की अनावश्यक जटिलता अव्यक्तता का कारण है। परन्तु जिस प्रलोभना वश नवयुवक लेखक प्रायः अपने लेख को अस्पष्ट कर देते हैं वह उनकी आलस्य-पूर्ण सोचने की आदत है। वे परिश्रम कर अपनी बुद्धि से काम लेना ही नहीं चाहते, इसलिए उनका लेख अनिश्चित भावों को प्रगट करता है।

अतएव लेखन-शैली और विचार-शक्ति में प्रौढ़ता लाने के लिए—स्पष्ट लिखिए, निश्चित भावों को प्रगट कीजिए, विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों को प्रयोग में लाइए—इन मुख्य नियमों का अभ्यास लाज़मी है।

**२—ओज** (Force)—लेखन-शैली का दूसरा गुण ओज है। यदि स्पष्टता, बुद्धि का गुण, लेखक की विशुद्ध विचार-शक्ति का फल है, तो ओज, हृदय की पवित्रता का गुण,

सहानुभूति और उत्साह का प्रार्थी है। पाठक को हंसाना और रुलाना, उसके मनोविकार को प्रेरित करना, उसके चरित्र पर प्रभाव डालना, कर्मवीर बनने का उपदेश देना, उसके ध्यान को बराबर आकर्षित रखना, ये उस ललित-कला के अङ्ग हैं जिसका विभेद अथवा व्याख्या बड़ा ही कठिन काम है। तोभी दो ख़ास नियम ओज भरने के ये हैं—(१) जिनके सन्मुख हम वक्तृता दें, हमारी उनसे पूरी सहानुभूति होनी चाहिए; (२) हम उसी विषय पर लेख लिखें जिसमें हमारी हार्दिक रुचि हो। यदि हम चाहते हैं कि हमारे लिखने का कुछ असर हो तो हमें सब से प्रथम अपने में दो गुणों—रुचि और सहानुभूति—को धारण करना चाहिए। जिसमें आपकी रुचि है, जो आप पर प्रभाव डालता है वह अवश्य ही कुछ न कुछ दूसरों पर भी प्रभाव डालेगा। यदि आप अपने पाठक के साथ सहानुभूति कर सकते हैं तो उसका भी आपके साथ सहानुभूति करना कठिन न होगा। तथापि स्मरण रखिए कि लेखन-शैली में ओज लाने का एक और ढंग-निरन्तर अभ्यास-भी है। केवल विचार की दृढ़ता अथवा हार्दिक संवेदना ( Feeling ) ही से कोई प्रभावशाली लेखक नहीं बन सकता, बल्कि इसके साथ साथ लिखने का लगातार अभ्यास भी करते रहना चाहिए। जैसे केवल पशु समान ताक़त किसी को पहलवान नहीं बना देती, बल्कि नित्य के व्यायाम का अभ्यास उसके शरीर में फुरती लाता है, इसी प्रकार बुद्धिमत्ता इसी में है कि नित्य प्रति कुछ न कुछ अवश्य ही लिखने का अभ्यास कीजिए। अभ्यास में बड़ी शक्ति है; आप चाहे अपनी दिनचर्य्या लिखें, चाहे कोई चिट्ठी; चाहे मामूली तार, यदि वह अच्छी प्रकार सोच विचार कर लिखी जाय तो उसका नित्य का अभ्यास धीरे धीरे आपके विचार-विकास में सहायता देगा, और आपको

लेखन-कला की परिभाषा में, स्पष्टता नष्ट करने वाले मुख्य दोष हैं—संदिग्धार्थता ( Ambiguity ), अनि (Vagueness), और अव्यक्तता (Obscurity)। संदिग वह शब्द कहाता है जो दो या दो से अधिक भावों में से एक में व्यवहृत हो—जिसका ठीक भाव मालूम करना ह हो जाय। संदिग्धार्थक वाक्य वह है जिसके दो या दो से अ अर्थ निकलें; अनिश्चित ( Vague ) कथन वह कहलात जिसके ठीक ठीक अर्थों को, काफी स्पष्टता के अभाव र पाठक न समझे; नितान्त अस्पष्ट वाक्य को अव्यक्त ( ( scure ) कहते हैं। जिनके लेखों में ऐसे दोष कभी कभी जायं, वे इनको आसानी से दूर कर सकते हैं। संदिग्धता अ अनिश्चितता के दूर भगाने का उपाय यह है कि ऐसे निश्चय र्थक शब्दों का प्रयोग किया जाय जो दूसरे अर्थों का बिल्कु रास्ता ही बन्द कर दें; प्रायः, कथन की अनावश्यक जटिलत अव्यक्तता का कारण है। परन्तु जिस प्रलोभना वश नवयुवक लेखक प्रायः अपने लेख को अस्पष्ट कर देते हैं वह उनकी आलस्य-पूर्ण सोचने की आदत है। वे परिश्रम कर अपनी बुद्धि से काम लेना ही नही चाहते, इसलिए उनका लेख अनिश्चित भावों को प्रगट करता है।

अतएव लेखन-शैली और विचार-शक्ति में प्रौढ़ता लाने के लिए—स्पष्ट लिखिए, निश्चित भावों को प्रगट कीजिए, विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों को प्रयोग में लाइए—इन मुख्य नियमों का अभ्यास लाज़मी है।

२—ओज (Force)—लेखन-शैली का दूसरा गुण ओज है। यदि स्पष्टता, बुद्धि का गुण, लेखक की विशुद्ध विचार-शक्ति का फल है, तो ओज, हृदय की पवित्रता का गुण,

ओज-पूर्ण और रोचक है, किन्तु स्पष्ट नही; तीसरी की वर्णन-शैली स्पष्ट और प्रभावोत्पादक तो है, परन्तु रुचिकर अथवा सन्तोष-जनक नही। वह काम, जो रुचि के अनुकूल अत्यन्त सुखकर और पूर्णतया सन्तोष-जनक होता है, चारु अथवा ललित कहलाता है। परन्तु इसमें अश्लील रुचि का स्वप्न में भी ध्यान न कीजिए, यहां रुचि का अभिप्राय उस पवित्र रस से है जिसके आस्वादन के लिए उच्च कोटि के साहित्य-सेवी भ्रमर समान लालायित रहते हैं। ऐसे गुण का जाति-निर्देश ( Generalization ) कठिन है; इस विषय पर निश्चित रूप से तो, ख़ास हालतों में, किसी निबन्ध को देख कर ही कहा जा सकता है, तथापि निम्नलिखित सूचनाओं से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।

(क) लालित्य में सब से पहली चीज़ बाह्य आवरण है। आंख सुन्दरता पसन्द करती है। आपका हस्त लेख साफ़, शुद्ध, लेख-चिन्हानुकूल, और परिष्कृत होना चाहिए। आप असावधानी से, कभी भी, भद्दा और अशुद्ध लिखने की आदत न डालिए।

(ख) लालित्य का केवल हस्तलेख की सफाई पर ही अन्त नहीं हो जाता, बल्कि इसके अन्दर वे सब नियम आ जाते हैं, जिनकी विवेचना हमने निबन्ध-रचना तथा निबन्ध-विच्छेद का ब्योरा लिखते समय की है। लेखक को बराबर उनके अनुकूल लिखना पर्य्याप्त है; उनके बाहरी स्वरूप को आदर्श मान कर नहीं, बल्कि उनके निष्कर्ष का विशेष ध्यान रख कर, क्योंकि बाहर का आकार ( Form ) निष्कर्ष ( Substance ) की छाया मात्र है। लेखन-शैली का भद्दापन, उसकी कर्कशता, उसकी बीभत्सता, ये दोष लेखक की विचार-सामग्री का

स्वरूप बदल देते हैं, और उसका भाव प्रगट करने में बाधा डालते हैं। इनको भी अभ्यास से ही दूर भगा सकते हैं। नित्य का अभ्यास शब्दों से परिचय करवाता है; उनको प्रेम पूर्वक बुलाना सहज हो जाता है; उनकी आवाज़ पहचानने की शक्ति बढ़ जाती है। जब शब्दों की ध्वनि ( Tone ) का लिखते समय ध्यान रहेगा, जब उनके ताल ( Rhythm ) को जानने की आदत पड़ जायगी, जब उनकी तुल्यता ( Balance ) की महत्ता का परिज्ञान हो जायगा तो लेखन-शैली के उत्कृष्ट गुण—धारा-प्रवाह ( Smoothly flowing Style )—की प्राप्ति कुछ भी कठिन नहीं रह जाती। विचार ( Thought ) और भाव ( Feeling) की यथार्थता से रुचि का विकास होता है, और अच्छी रुचि शब्द-लालित्य का मूल है।

यहां पर यह बतला देना भी अनावश्यक न होगा कि लेखन-शैली के इस गुण की महिमा समझने के लिए विद्यार्थियों को हिन्दी गद्य पद्य के विद्वानों की पुस्तकों का अनुशीलन करना उचित है। वे गन्दे उपन्यासों का तो बिल्कुल बहिष्कार कर दें, और उनके स्थान पर नए और पुराने प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों का अध्ययन किया करें। हिन्दी पत्रिकाओं में भी अब विद्वत्ता-पूर्ण लेख निकलने लगे हैं, उनका पढ़ना भी अच्छा है। सब से बढ़कर नित्य का अभ्यास, सच्चरित्रता, और शुद्ध-मनन की आदत, ये तीन गुण हैं जो व्यक्ति को इस कला में निपुण बनाते हैं।

अब हम अन्त में सत्य-ग्रन्थ-माला के अंग्रेज़ी पढ़े लिखे पाठकों के हितार्थ, लेखन-कला-निपुण, अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान, वेरट वेण्डल, की पुस्तक में से अवतरण उद्धृत कर इस विषय की समाप्ति करते हैं—

"We have seen already that every word we use must in greater or less degree possess two distinct traits,—denotation and connotation. It denotes the idea which good use agrees that it shall stand for; it connotes the very various and subtile thoughts and emotions which cluster about that idea in the human mind, whose store of thoughts is so vastly greater than its store of words with which to symbolize thought And the traits that word possess, compositions must possess too; sentences, paragraphs, chapters, books, put together the words which compose them, and all the traits of these words. In all the elements of style, denotation and connotation may alike be recognized. The secret of clearness, we saw, lies in denotation, the secret of force in connotation. But we have already seen that when all is done, the expression of thought and feeling in written words can never be complete. Do what we may, with denotation in mind and connotation too, our style can at best be only something

*'That gives us back the shadow of the mind.'*

No expression can be so perfect that a better can

# भूल-संशोधन

पुस्तक में शायद कई एक प्रेस-भूलें रह गई होंगी, मुझे उन सब को ढूंढ़ने का अवसर नहीं मिला। पृष्ठ ३२ पर "टाड" की जगह "टाड़" और "राजस्थान" की बजाय "राजिस्थान" छप गया है; पाठक महोदय उसे ठीक कर लें। दूसरे संस्करण में मैं अन्य सब भूलों को, यदि कोई रह गई होंगी, शुद्ध करने का यत्न करूंगा।

—सत्यदेव

# मेरी कैलाश-यात्रा

सत्य-ग्रन्थ-माला की यह आठवीं संख्या हमारे प्रेमी पाठकों का आह्लाद बढ़ाने वाली है। हिन्दू होकर कैलाश-दर्शन नहीं किया तो क्या किया। सचमुच यदि श्री विश्वनाथ जी के प्राकृतिक मन्दिर के भव्य दर्शन करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को मंगा कर पढ़िए। पिछली जून १९१५ को स्वामी सत्यदेव जी पूज्य हिमालय के १८,३०० फीट ऊँचे श्वेत भवन को लांघ कर श्री कैलाश जी के दर्शन करने गये थे। कैसा विकट मार्ग है, कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इन सब बातों की बहार यदि आप देखना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति मंगा कर पढ़िए। मानसरोवर के जगत् प्रसिद्ध राजहंसों की सुन्दर मोहिनी सूरत, उनका स्वर्गीय आलाप, वहां के नैसर्गिक दृश्यों की छटा इस पुस्तक द्वारा देखिए। मानसरोवर के निर्मल पावन जल में स्नान का पुण्य सञ्चय कीजिए। साथ ही तिब्बतियों का रहन सहन, उनका रंग ढंग, उनका राक्षसी भोजन, उनकी धार्मिक बातें, सब कुछ इस पुस्तक द्वारा जानिए। जिस हिमालय की प्रशंसा के आप गीत गाते हैं, उसके श्वेत भवन का आंखों देखा अनुपम वर्णन आज तक आपने न पढ़ा होगा। जैसे स्वामी जी की अमरीका सम्बन्धी पुस्तकों ने आपको मुग्ध किया है, वैसे ही इसको भी पढ़ कर आप आनन्द से गद्गद् हो जायँगे। जिस रास्ते से स्वामी जी गये थे, उसका नकशा भी पुस्तक में दिया गया है। यात्रा का वर्णन अधूरा नहीं बल्कि सम्पूर्ण इस पुस्तक में है। दाम आठ आने।

निवेदक—

मेनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

रत्न-पुस्तकावली संख्या—७

* श्री *

# रचना प्रबोध

लेखक व प्रकाशक

**अध्यापक रामरत्न**

बलवन्त राजपूत हाई-स्कूल आगरा

कार्तिक संवत् १९७४ वि.

प्रथमावृत्ति २००० मूल्य ॥)

यह टाइटिल आर्ट प्रिंटिंग प्रेस आगरा में छपा

# रचना-प्रबोध क्या है ?

"रचना" भाषा-शिक्षा का एक मुख्य अङ्ग है, इसी लिये शिक्षा-विभाग ने इसे पृथक् विषय बना लिया है। मिडिल नार्मल, मैट्रिक तथा लीविङ्ग की परीक्षाओं में एक प्रश्न-पत्र किसी विषय पर रचना के लिये दिया जाता है; किन्तु अब-तक देशी भाषा की रचना-कला में यथेष्ट उन्नति नहीं हुई। स्कूलों में व्यवहारिक-रचना-प्रणाली बहुत दोष-पूर्ण और करुणा-जनक है, इसका—अध्यापकों की असावधानता और शैथिल्य, अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण है। रचना वा निबन्ध के नाम से जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, अधिकांश उनमें से ऐसी हैं, जिनसे लाभ के बदले हानि ही होती है। न उनमें विषयों का स्वाभाविक चुनाव होता है, न भाषा के आदर्श का विचार होता है, देखा कि परीक्षा में इन विषयों पर प्रबन्ध लिखाये जाते हैं, बस ४०–५० शीर्षक देकर अस्वाभाविक-भाषा से हर एक विषय पर कुछ विचार लिखा लिये, पुस्तक बन गई। कुछ बड़े २ प्रकाशकों ने इधर उधर का जगड्वाल संग्रह कराकर रचना कला पर पोथे निकाल दिये, जिनसे कुछ जानकारी बढ़ने के अतिरिक्त रचना-कला के विकास में कुछ भी उन्नति नहीं हुई। प्रयाग आदि से रचना विचार तथा लेखन कला आदि कुछ अच्छी पुस्तकें भी निकली हैं-जिनसे रचना कला को बहुत लाभ पहुँचा है। मैंने भी गत वर्ष "हिन्दी-रचना" नाम से रचना की एक पुस्तक प्रकाशित की थी, किन्तु उससे

मेरे जी को संतोष नहीं हुआ। उसी का यह नया रूप हिन्दी-संसार की सेवा में उपस्थित करता हूं, यदि कुछ भी रचना-कला को इससे लाभ पहुँचा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। रचना के लिये सब प्रकार की जानकारी, अपार शब्द-भण्डार, और सौष्ठव वाक्य-रचना की आवश्यकता है, मैंने इन बातो पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। शब्द-प्रकरण मे शब्द-भंडार और उनके प्रयोग के उपाय की ओर संकेत है, वाक्य-प्रकरण में वाक्य-रचना के अभ्यास का ढङ्ग है। निबध-प्रकरण में निबंध सम्बंधी आवश्यकीय बातों के सिवाय, नमूने के लिये ५० के समीप प्रबध हैं, जिनसे, क्रम-विभाग, विषय-विभाग, आदर्श-वाक्य-रचना सीखने के सिवाय, विद्यार्थियों का विचार-भडार बढ़ेगा, नैतिक-शिक्षा मिलेगी और उनकी मानसिक-उन्नति होगी। भिन्न २ लेखकों को भाषा-शैली मनन करने के लिये स्वास्थ्य-रक्षा आदि लेख लक्ष्मी आदि पत्रिकाओं से दिये हैं।

इस पुस्तक में मेरी हिन्दी-रचना और पद-परिचय नामक पुस्तकों का बहुत बड़ा भाग आ गया है, इसके अतिरिक्त शब्द और वाक्य प्रकरणों में रचना-पद्धति (बंगला) से तथा सम्पूर्ण पुस्तकों में अन्य हिन्दी की पुस्तक व पत्र पत्रिकाओं से जो सहायता मिली है, उसके लिये परम कृतज्ञ हूं। अधिक क्या कहूं जो कुछ "पान-फूल" है, सामने है।

विनीत लेखक।

# रचना-प्रबोध ।

## विषय-सूची

**कथात्मक:—**

जीवनसूची, घटनासूची, निवेदिता, म० गोखले, अशोक स्तंभ, अशोक। ६६ से ८० तक

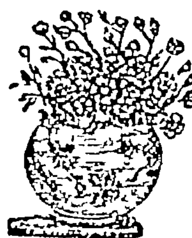
**वाख्यात्मक:—**

विद्या, श्रावणी, मुद्रायन्त्र, संतोष, स्वार्थ, धीरज, पश्चत्ताप, प्रसन्नता, मित्रता, काम, धन का सदुपयोग, रामायण देशी कारीगरी, देशाटन, लोक सेवा, फलाहार, पत्रलेखन आशा, स्वास्थ्यरक्षा, पुरुषार्थ वा श्रम, समाचारपत्र, पुस्तकालय, ऋतुवर्णन, डाक विभाग, मां बाप की आज्ञापालन सभ्यता, सत्य, परोपकार, विद्यार्थियों को छुट्टी कैसे वितानी चाहिये, समाजसेवा।

**आलोचनात्मक:—**

सुधारक, हमारी निद्रा और जागृति। ८१ से १५४ तक

**उपसंहार:—**



# हिन्दी रचना

## शब्द विचार

निबन्ध-रचना के लिये वाक्य-रचना के अभ्यास की, और वाक्य-रचना' के लिये नाना प्रकार के शब्द-समूह की आवश्यकता होती है।

शब्द सार्थक और निरर्थक दो प्रकार के होते हैं। प्रायः हिन्दी भाषा में आजकल तीन प्रकार के शब्द काम में आते हैं। तत्सम, तद्भव और अन्य भाषाओं से आये हुए।

**तत्सम**—वह शब्द है, जो उसी रूप में हिन्दी में बोले और लिखे जाते हैं, जिस रूप में संस्कृत से आये हैं।

विद्या, प्रेम, ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, जिह्वा, व्याघ्र, प्रयोग, वहिष्कार, उपकार, प्रत्युपकार, नीति, अनन्य, आदि। शुद्ध हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों की वाहुल्यता है।

**तद्भव**—जो संस्कृत के शब्द विगड़ कर अपभ्रंश रूप में हिन्दी में आये हैं, जैसे—सब (सर्व), अजान (अज्ञान), गढ़ा (गर्त), बुरा (विरूप), घाट (घट्ट), धुनि (ध्वनि) झरना (निर्झर) नाक, कान, माँ, घी, दूध, चोर, दांत, आदि।

**अन्य भाषा से:—**

अरबी से—मुख़्तार, वकील, दख़ल, मालिक, नज़र, इज़्ज़त, काग़ज़, नायब, मदरसा।

फ़ारसी से—दूकान, सरिश्ता, गुमाश्ता, नालिश, दारोग़ा ख़रीद, आमदनी, पोशाक, इश्तिहार, फ़िहरिस्त, आदि।

अङ्गरेज़ी से—रेल, टमटम, फ़िटन, टेबिल, लालटेन, डाक्टर,

पैन्सिल, बक्स, 'फ़लालैन,स्लेट, टिकिट, आदि ।

पोर्चुगीज़ों के शब्द—पादरी, किरानी, गिर्जा, इस्पात ।

---

## शब्दार्थ ।

शब्दों में तीन प्रकार की अर्थ-शक्ति है। पर्य्याय-शब्द द्वारा, व्युत्पत्ति द्वारा तथा लाक्षणिक अर्थ द्वारा ।

### पर्य्याय या प्रतिशब्द

एक शब्द के परिवर्तन में अन्य शब्द का प्रयोग करना प्रति-शब्द कहलाता है। प्रति-शब्द द्वारा किसी वाक्य, का अर्थ करना बड़ा सुगम है, किन्तु जिस शब्द का पर्य्याय लिखना हो उससे सहज शब्द लिखना चाहिये, जैसेः—

अश्व के लिये घोड़ा और गज के लिये हाथी ।

### व्युत्पत्ति द्वारा

धातु के साथ प्रत्यय के योग में, वा रूढ़ि-रूप धातु के अर्थ में, अथवा समासों में आये हुए शब्दों में जो अर्थ होता है, उसे व्युत्पत्यार्थ कहते है। यौगिक और योगरूढ़ि पदों के व्युत्पत्यार्थ का बहुत शीघ्र बोध होता है; जैसेः—

मेघ के समान नाद है जिसकी, सो मेघनाद; लम्बी है हनू (ठोड़ी) जिसकी सो हनूमान, शर का आसन है जिस पर सो शरासन, नहीं रोग है जिसे सो निरोग; तरंग उठती है जिसमें सो तरंगिनी ( नदी ); शिव हैं इष्टदेव जिसके सो शैव ।

### लाक्षणिक-अर्थ

जिस शब्द का ठीक पर्य्याय शब्द न मिले, किसी लक्षण से अर्थ प्रकाशित हो, उसे लाक्षणिक अर्थ-कहते हैं; जैसेः—

अध्यवसाय—बार बार असफल होने पर भी दृढ़ता से उसी कार्य में तत्पर रहना ।

कई प्रकार से अर्थः—
कोई कोई शब्द एक से अधिक अर्थों में प्रयुक्त होता है; जैसेः-
पत्र—पत्ता, चिट्ठी।
पृष्ठ—पीठ, सफ़ा।
पय—पानी, दूध, अमृत।
तात—माता, पिता, भाई, मित्र, कोई भी आत्मीय।
गुण—रस्सी, हुनर, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ज्ञान, विनय, सत्त्व, लाभ ( गुण नहीं किया ) ज्या, महत्त्व।
रस—कडुआ, खट्टा, आदि छै रस, करुणा आदि ९ रस; पारा स्वर्ण आदि की भस्म।
छन्द—इच्छा, पद्य।
वेला—कटोरा, विशेष बाजा, समय, फूल।
कर—हाथ, किरण, सूंड़ है।

## अर्थवैषम्य।

बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनका मोटी रीति से एकसा अर्थ प्रतीत होता है, परन्तु उनके अर्थों में वास्तव मे अन्तर होता है।

मूर्ख और अज्ञ।
मूर्ख—जड़ बुद्धि।
अज्ञ—जिसे कुछ ज्ञान न हो।

दया और कृपा।
दया—पर-दुःख दूर करने की स्वाभाविक इच्छा;
कृपा—छोटो के प्रति दयाप्रकाशन।
श्रद्धा और भक्ति।

गुण और ज्ञान में बड़े के प्रति जो प्रेम हो, उसका नाम श्रद्धा है। और जब श्रद्धा का पात्र विशेष गुणों से युक्त हो तो उसका नाम भक्ति है।

अलौकिक और अस्वाभाविक।

अलौकिक-लोक और समाज में पहिले न देखा गया हो।

अस्वाभाविक-जो सृष्टि वा मनुष्य-समाज के नियम विरुद्ध हो।

अलौकिक अस्वाभाविक हो सकता है, किन्तु अस्वाभाविक अलौकिक नहीं हो सकता।

भ्रम और प्रमाद—

भ्रम—असावधानी से जहां भ्रान्ति हो।

"प्रमाद-मूर्खता और मत्तता से जहां भ्रान्ति हो।

प्रेम और प्रणय—

प्रेम—साधारण जीव और सकल पदार्थों के विषय हो।

प्रणय—जो प्रेम स्त्री के प्रति हो।

अज्ञान और अनभिज्ञ—

अज्ञान—जिसमें स्वाभाविक बुद्धि ही न हो।

अनभिज्ञ—जिसे समझने का अवसर ही न प्राप्त हुआ।

द्वेष और ईर्षा—

द्वेष—किसी कारण से एक मनुष्य दूसरे से घृणा करने लगे।

ईर्षा—निष्कारण दूसरे की बढ़ती पर जलना धनी से निर्धन और ज्ञानी पर मूर्ख ईर्षा करता है।

कभी एकार्थक दो पद साथ २ आते हैं।

| | | |
|---|---|---|
| ामोद-प्रमोद, | श्रद्धा-भक्ति | दान-दक्षिणा |
| रा-भरा, | चहल-पहल | रहन-सहन |
| ख-रेख | दौड़-धूप | बोलचाल |

कभी एक ही पद दो दो बार आते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ों ज्यों, | धीरे धीरे, | सीधे सीधे, | पाँव पाँव, |
| ँव काँव, | हलके हलके, | सर सर, | ढेरके ढेर, |

कभी विरुद्ध अर्थ वाले दो पद साथ २ आते हैं:—

घट-बढ़, नीच-ऊंच, आगा-पीछा, लेन-देन, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, नया-पुराना, स्वर्ग-नर्क, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, गुण-दोष, लाभ-हानि, स्थावर-जंगम, छोटे-बड़े, जन्म-मृत्यु, घटती-बढ़ती, जमा-ख़र्च, आना जाना, आय व्यय, आग पानी,।

अर्थ-भिन्नता

आकार उच्चारण में एक से शब्दों का अर्थ भेद।

| | |
|---|---|
| विना=रहित | वीणा=एक बाजा |
| पानी=जल | पाणि=हाथ |
| शरण=आश्रय | स्मरण=याद |
| कमल=पंकज | कोमल=नरम |
| दिन=दिवस | दीन=ग़रीब |
| प्रसाद=अनुग्रह | प्रासाद=महल |
| कुल=कुटुम्ब | कूल=किनारा |
| आगत=आया हुआ | आगामी=भविष्यत् |
| प्रकृत=यथार्थ | प्राकृत=स्वाभाविक |

द्वीप=टापू द्विप=हाथी दीप=दीपक, दीया।

## उपसर्ग से अर्थभिन्नता।

कुछ अव्यय, धातु के साथ मिल कर ख़ास ख़ास अर्थ प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार के अव्ययों को उपसर्ग कहते हैं। उपसर्ग धातु के साथ मिल कर या तो किसी धातु के अर्थ को उलटा कर देते हैं, अथवा उसमें विशेषता पैदा कर देते हैं। जैसे आदान और आगमन, इस स्थान पर 'दा' और 'गम्' धातु के विपरीत अर्थ प्रकाशित करते हैं। परिदर्शन और परिभ्रमण से उपसर्ग द्वारा दर्शन और भ्रमण का अर्थ

ही द्योतित होता है। 'प्रदान' में "प्र" उपसर्ग से किसी प्रकार का हेर फेर नहीं होता।

| पद | उपसर्ग | धातु | प्रत्यय | अर्थ |
|---|---|---|---|---|
| आदान | आ | दा | अन | लेना |
| प्रदान | प्र | दा | अन | देना |
| निदान | नि | दा | अन | हेतु |
| उपादान | उप | दा | अन | कारण |

---

| उपसर्ग | मूल | पद | अर्थ |
|---|---|---|---|
| आ | कार | आकार | सूरत |
| प्र | कार | प्रकार | भांति |
| वि | कार | विकार | बुराई |
| उप | कार | उपकार | भलाई |
| प्रति | कार | प्रतिकार | रोक |
| सम् | कार | संस्कार | शोधन |

'कृ' धातु से "अ" प्रत्यय के योग से कार पद बना हैं।

इसी भांतिः—

'भू' धातु से—संभव, विभव, पराभव, अनुभव, उद्भव,

'हृ' धातु से—आहार, प्रहार, संहार, विहार, उपहार, व्यवहार।

'पद्' धातु से—सम्पदा, आपदा, विपदा, सम्पत्ति, निष्पत्ति उत्पत्ति, आपत्ति,

'स्था' धातु से—स्थान, सस्थान, अवस्थान, अनुष्ठान, संस्था, अवस्था, व्यवस्था,

'दिश्' धातु से—आदेश, प्रदेश, विदेश, उपदेश।

## शब्द-प्रयोग

ऊपर संक्षेप से जो विवरण दिया है उसपर ध्यान देने से ज्ञात होजायगा कि "शब्द-व्युत्पत्ति" शब्द-भंडार बढ़ाने के लिये कितनी उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के विद्वानों से संभाषण करने वा उनके भाषण के सुनने से तथा समाचार-पत्र और पत्रिका व पुस्तकों के मननपूर्वक अध्ययन से, शब्द-भंडार बढ़ता है और उनका प्रयोग करना आता है। शब्दों के प्रयोग करने के समय इन बातों का भली प्रकार ध्यान रखना चाहिये, कि, विशेष्य की जगह विशेषण और विशेषण की जगह विशेष्य पदों का प्रयोग न करना चाहिये; जैसेः— 'वह बड़ा दोष है' नहीं होगा, 'वरन् वह बड़ा दुष्ट है'। विशेष्य विशेषणों की कुछ सूची नीचे दी जाती है।

| विशेष्य से | धातु | विशेषण | सामान्यक्रिया से | विशेषण |
|---|---|---|---|---|
| अपहरण | (हृ) | अपहृत | खाना | खाद्य |
| उपकार | (कृ) | उपकृत | पीना | पेय |
| संतोष | (तुष्) | संतुष्ट | चूसना | चोस्य |
| भय | (भी) | भीत | झगड़ना | झगड़ालू |
| वंचना | (वच) | वंचित | समझना | समझदार |

तद्धित से

| विशेष्य | विशेषण | विशेष्य | विशेषण |
|---|---|---|---|
| सेवा | सेवक | ठंड | ठंडा |
| इतिहास | ऐतिहासिक | चूरी | चुरिहारा |
| ज्ञान | ज्ञात | मक्खन | मक्खनिया |
| ऋण | ऋणी | शिव | शैव |
| दया | दयावन्त | मुँह | दुमुँही |
| विदेश | विदेशी | कोण | चौकोन |
| उपनिवेश | औपनिवेशिक | महत्व | महा |

| विशेषण | विशेष्य | विशेषण | विशेष्य |
|---|---|---|---|
| फूहड़ | फूहड़पन | पुजारी | पुजारीपन |
| भुक्त | भोग | रुग्न | रोग |
| बूढ़ा | बुढ़ापा | लड़का | लड़कपन |
| कटु | कटुता | लम्बा | लम्बाई |

संधि और समासादि-गत अशुद्ध प्रयोगों पर ध्यान रखना चाहिये; जैसेः—

| अशुद्ध | शुद्ध | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| उपरोक्त | उपर्य्युक्त | निर्दोषी | निर्दोष |
| दारिद्रता | दारिद्र्य | ज्ञानमान | ज्ञानवान |
| सौजन्यता | सौजन्य | मैत्रता | मित्रता वा मैत्र |
| सावधान पूर्वक | सावधान | अग्नी | अग्नि |
| जगवन्धु | जगद्बन्धु | श्रीवान् | श्रीमान् |
| पार्वतीय | पर्वतीय | वास्तविक में | वास्तव में या वस्तुतः |
| असहनीय | असह्य | जीवनातीत | जीवन अतीत |
| दुरावस्था | दुरवस्था | कृतघ्नी | कृतघ्न |

( ३ ) उन शब्दों के अतिरिक्त जो पूर्णरीति से प्रचलित हैं और जिनके लिये देशी भाषा में सहज-प्रचलित शब्द नहीं है, विदेशी भाषा के अन्य शब्दों की भरमार करना युक्ति युक्त नहीं है। भाषा के प्रकरण में इस बात का उल्लेख होगा।

( ४ ) संदिग्ध और भ्रमात्मक अर्थद्योतकपदों का प्रयोग ठीक नहीं है। ऐसे प्रयोगों से तात्पर्य्य समझ में नहीं आता। मेरे तीन पशु हैं, मेरी तीन गाय हैं। तीन गाय की जगह तीन पशु कहना ठीक नहीं। पशु सामान्यपद है; गाय विशेष। उस गाँव में १०-जीव रहते हैं, —यह ठीक नहीं, वरन् दश मनुष्य रहते हैं।

———

# वाक्य-विचार

परस्पर अपेक्षा रखने वाले पद-समूह को 'वाक्य' कहते हैं। जिस पद-समूह के योग से हृदय का पूरा २ भाव प्रकाशित हो जाय उसे 'वाक्य' कहते हैं। हृदय के भाव को प्रकाशित करने के लिये व्यवहृत-पद-समूह में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिये, नहीं तो वाक्य का अर्थ समझ में न आवेगा। वाक्य के अंतर्गत पदों के सम्बन्ध को 'आकांक्षा' 'योग्यता' और आसक्ति कहते हैं।

आकांक्षा—मतलब समझने के लिये एक पद को सुनकर दूसरे पद के सुनने की इच्छा होती है, उसे "आकांक्षा" कहते हैं; जैसे "पेड़ से" इसके पीछे यह सुनने की इच्छा होती है "पत्ते गिरते हैं"। 'वह सब चले गये' इसके पीछे यह कहना पड़ेगा—'जो रात को यहां ठहरे थे'।

योग्यता—वाक्य के पदों का अन्वय करने के समय अर्थ सम्बन्धी वाधा न हो, जैसे "रेत पर तैरने लगा।" यहां योग्यता के अनुसार पद-विन्यास नही है। रेत पर कोई नही तैरता, पानी पर तैरते हैं।

आसक्ति—योग्यता और आकांक्षा-युक्त पदों के ठीक रीति से स्थापन करने को 'आसक्ति' कहते हैं: जैसे:—"पानी" इसके पीछे ही "वरसता है" लिखना पड़ेगा।
"पिता की वड़ा धर्म है आज्ञा मानना"
इसमें आसक्ति नही है अतः वाक्य नही है।

वाक्य यह है "पिता की आज्ञा मानना वडा धर्म है"।

अब वाक्य की परिभाषा इस प्रकार हुई—'किसी आकांक्षा. योग्यता, आसक्ति, सहित पद-समूह को "वाक्य' कहते हैं।

## वाक्यांश

जिन सब पदों से मन का पूरा भाव प्रकाशित हो कर केवल, भाव का कुछ भाग प्रकाशित हो, उसे वाक्यांश कहते हैं, 'महाराज बड़ौदा ने कहा'; 'कल रात को महात्मा गांधी'।

कहीं २ एक पद भी वाक्यांश हो जाता है, जैसे "राम गये" में दोनों पद वाक्यांश हैं। "वह कार्य करना है, जो कल कहा था।" इसमें दोनों वाक्य वाक्यांश हैं।

## वाक्य-खंड

प्रत्येक वाक्य, उद्देश्य और विधेय, दो भागों में बट सकता है। "हिरन दौड़ता है" वाक्य 'हिरन' उद्देश्य और 'दौड़ता है' विधेय इन दो भागों में विभक्त है। 'मनुष्य' बुद्धिमान है" इसमें 'मनुष्य' उद्देश्य और 'बुद्धिमान है' विधेय है।

उद्देश्य—वह है जिसके विषय में कुछ कहा जाय।

विधेय—जो कुछ उद्देश्य के विषय में कहा जाय,।

## वाक्य-भेद

वाक्य तीन प्रकार के होते हैं:— सरल, जटिल वा मिश्रित और यौगिक।

### सरल-वाक्य।

सरल-वाक्य में एक उद्देश्य वा कर्ता और एक विधेय वा समापिका-क्रिया अवश्य होती है। प्रायः उद्देश्य और विधेय अन्य नाना प्रकार के पदों के मिलने से बढ़ जाता है; इसलिये एक वाक्यमें दो से अधिक पद होते हैं। सरल-वाक्य में जितने पद होते हैं, वह उन्हीं दो प्रधान भागों के अन्तर्गत होते हैं। वाक्य में उद्देश्य और विधेय के अतिरिक्त जितने पद हों, उनमें से कुछ तो उद्देश्य के सहकारी होंगे और कुछ विधेय के। सहकारी पद सहित मुख्य उद्देश्य, उद्देश्य के

अन्तर्गत समझे जाते हैं। यदि क्रिया सकर्मक होगी, तो उसका कर्म भी विधेय के अंतर्गत होगा; अर्थात् कर्म और क्रिया एक साथ विधेय वाच्य होगी; "जैसेः—घोड़ा घास खाता है" इसमें 'घास'-सहित 'खाता है' पद. विधेय होगा। उद्देश्य और विधेय जिस प्रकार सहकारी पदों के मिलने से बढ़ जाते हैं; उसी प्रकार कर्मादि भी अन्य पदों से बढ़ते हैं; जैसेः-"मुझे एक पका फल मिला" इसमें 'फल' कर्म 'एक' और 'पका' दो विशेषणों द्वारा बढ़ा हुआ है। विशेष्य, सर्वनाम और विशेष्य रूप में आया हुआ वाक्यांश और साधारण क्रिया-वाचक पद वा विशेषण, यह उद्देश्य और कर्म रूप में आते हैं; जैसेः—

विशेष्य-रूपमें–राम–प्रदर्शिनी देखता है।

सर्वनाम–वह मुझको प्यार करता है।

विशेष्य रूप में आया हुआ विशेषण यथाः—शिक्षित अशिक्षितों को घृणा से देखते हैं।

क्रिया-वाचक विशेष्य यथाः—खाना कहने से भोजन करना समझा जाता है।

वाक्यांश रूप में –यथा—विना पूछे लेजाने को चोरी करना कहते हैं।

ऊपर के उदाहरणों में जिन पदों के नीचे रेखा है वह विशेष्य ( कर्त्ता ) और जिनके ऊपर रेखा है वह कर्म है।

विधेय।

सम्पूर्ण-अर्थ-प्रकाशक क्रिया को सरल-विधेय कहते हैं; यथाः—मैं पुस्तक लिखता हूं। इस वाक्य में 'लिखता हूं' क्रिया के द्वारा वक्ता का सम्पूर्ण आशय प्रकाशित हो जाता है, इसलिये यह 'सरल-विधेय' है।

विधेय यदि पूरा अर्थ प्रकाशित न करे और उसके साथ पूर्ण-अर्थ-प्रकाशक-सहकारी-पद हो, तो उस-विधेय को

'जटिल-विधेय' कहते हैं; जैसेः—आकाश परिष्कृत हुआ, सूर्य उदय हुआ, यहां परिष्कृत और उदय पद न होने से केवल 'हुआ' से पूरा अर्थ प्रकाशित नहीं होता, इसलिये 'हुआ' क्रिया, परिष्कृत-सहित जटिल विधेय है।

## जटिलवाक्य।

जहां एक वाक्य तो प्रधान रूप से हो और एक वा कई वाक्य सहायक हो कर उससे मिले हों तो मिल कर वह जटिल वा मिश्रित वाक्य कह लाता है; जैसेः—"मैं जानता हूं यह बड़ा अन्याय हुआ है"। इसमें 'मै जानता हूं' यह प्रधान वाक्य है 'जानता हूं' क्रिया सकर्मक है। क्या जानता हूं, यह कि 'उसने अन्याय किया है' यही वाक्य 'जानता हुआ' क्रिया का कर्म है। इसलिये संज्ञा-वाक्य है। सहायक-वाक्य प्रधान वाक्य के साथ कभी तो संज्ञा-रूप होकर मिले रहते हैं और कभी विशेषण-रूप से। सज्ञा-रूप में सहायक वाक्य कभी कर्त्ता ( विशेष्य ), कभी कर्म तथा कभी अन्य कारक के रूप में आता है।

कर्त्ता-रूप में सहायक-वाक्य —

"मै कल जाऊंगा, निश्चय है।" यहां 'निश्चय है' मुख्य वाक्य है। कौनसी वात निश्चय है-"मैं कल जाऊंगा" अतः 'मैं कल जाऊंगा' यह सहायक-वाक्य कर्त्ता-रूप में आया है।

कर्म-रूप में संज्ञा-वाक्य—

"मैं देख कर आया हूं, उसकी कैसी दशा है" इसमें "मैं देख कर आया हूं" प्रधान वाक्य, क्या देख कर आया हूं "उसकी कैसी दशा है"। यह "देख कर" क्रिया का कर्म है "उसकी कैसी दशा है' यह कर्म-रूप वाक्य हुआ।

विशेपण-रूप में जो वाक्य आते हैं कभी कर्त्ता के कभी कर्म के और कभी क्रिया के विशेपण हो कर आते हैं।

'कर्तृ-विशेषण-वाक्य'—वह वाक्य जो कर्त्ता रूप से नहीं वरन् कर्त्ता का विशेषण हो कर आवे; जैसेः—

(१) वही काम है, जिसको ज्ञानी मनुष्य करते हैं। "वही काम है" प्रधान वाक्य में 'काम' कर्त्ता है। कौनसा काम, जिसे ज्ञानी मनुष्य करते हैं। इसलिये 'काम' पद का "जिसे ज्ञानी मनुष्य करते हैं" वाक्य, विशेषण हुआ।

मैं कल जाऊंगा, यह बात निश्चय है। इस वाक्य में "यह बात निश्चय है" प्रधान वाक्य है, क्या निश्चय है? यह कि, "मैं कल जाऊंगा।" इसलिये 'बात' पद का 'कल जाऊंगा' यह वाक्य, विशेषण हुआ।

कर्म-विशेषण-वाक्य—वह वाक्य है, जो सहायक-वाक्य, प्रधान वाक्य के कर्म का विशेषण हो कर आया हो, जैसेः—

"जो तुम कल लाये थे, वह फल मैंने खा लिये।"

"वह फल मैंने खालिये" यह प्रधान वाक्य है। कौन से फल खाये—"जो तुम कल लाये थे"। वह फल—'फल' पद प्रधान-वाक्य का कर्म है; और 'जो तुम कल लाये थे' यह वाक्य, 'फल' का विशेषण है। अतः यह अप्रधान-वाक्य "जो तुम कल लाये थे" कर्म-विशेषण हुआ। इस वाक्य में 'जो' और 'वह' नित्य सम्बंधी पद हैं, जो प्रायः जटिल-वाक्य में होते हैं। यह जटिल-वाक्य यदि इस प्रकार होता "जो फल तुम कल लाये थे,-मैं ने खालिये" तो पहिला वाक्य कर्म-वाक्य होता।

क्रिया-विशेषण-वाक्य—यदि कोई अप्रधान-वाक्य किसी प्रधान-वाक्य की क्रिया का विशेषण हो तो वह क्रिया-विशेषण-वाक्य होगा; जैसेः—

उसे खाऊंगा, तो रोगी हो जाऊंगा, इसमें "रोगी हो जाऊंगा" यह प्रधान-वाक्य है।

कैसे–'उसे खाऊंगा'—अर्थात् उसे खाकर रोगी हो जाऊंगा इसलिये "उसे खाऊंगा" यह क्रिया-विशेषण-वाक्य हुआ।

"दौड़ कर चला था, इसलिये वह गिर गया।"

यहां 'इसलिये वह गिर गया' इस प्रधान वाक्य का 'दौड़ कर चला था' यह क्रिया-विशेषण-वाक्य है।

---

## पदयोजना।

समास और सधि की शक्ति से भिन्न २ पदों के मिलने से जो एक पद वनता है, उसे पद योजना कहते हैं।

भाषा के व्यवहार के अनुसार ही पदयोजना की जाय, नहीं तो रचना अच्छी नही होगी।

कही कोई विशेष्य पद भिन्न २ विशेष्य वा विशेषण पदों से मिल कर विशेष्य वा विशेषण उत्पन्न करते हैं।

**कुल शब्द के साथ**

कुल-मर्य्यादा
कुल-धर्म
कुल-कानि
कुल-नाश
कुल-हीन

**वियोग शब्द के साथ**

सत्य-धर्म
सत्य-प्रिय
सत्य-ज्ञान
सत्य-कार्य
सत्य-व्रत

**धर्म शब्द के साथ**

धर्म्म-ज्ञान
धर्म्माधर्म
धर्म्म-बुद्धि
धर्म-युद्ध
धर्म-वीर
धर्म-हीन
धर्म्म-द्वेषी
धर्म्म-शील

**मातृ शब्द के साथ**

मातृ-स्नेह
मातृ-भूमि
मातृ-ऋण
मातृ-पूजा
मातृ-भक्ति
मातृ-वियोग

| शक्ति शब्द के साथ | वियोग शब्द |
| --- | --- |
| शक्ति-हीन | मातृ-वियोग |
| शक्ति-सम्पन्न | पत्नी-वियोग |
| शक्ति प्रवाह | पितृ-वियोग |
| शक्ति-ज्ञान | पति-वियोग |
| शक्ति-प्रिय | आत्मीय-वियोग |
| शक्ति-शाली | स्वजन-वियोग |

## वाक्यरचना।

भाषा की रीति के अनुसार वाक्य के पद समूह जोड़ने का नाम 'वाक्यरचना' है।

वाक्य, गद्य और पद्य भेद से, दो प्रकार के होते हैं।

छन्दोबद्ध-वाक्य को पद्य कहते हैं।

जिसमें कारक और क्रिया आदि का नियम-पूर्वक स्थापन हो, उसे गद्य कहते हैं।

इस पुस्तक में गद्य वाक्य रचना पर ही विचार किया जायगा।

### वाक्य रचना के साधारण और स्थूल नियम।

कर्त्ता और समापिका-क्रिया वाक्य के प्रधान अंग हैं। इसलिये 'वाक्य-रचना' में पहले कर्त्ता और पीछे समापिका, क्रिया लाते हैं, जैसेः—फूल खिला है, धूप पड़ती है।

यदि क्रिया सकर्मक हो तो, कर्मपद क्रिया के पूर्व आता है, द्विकर्मक होने से पहले गौण कर्म और पीछे मुख्य कर्म रहता है जैसेः-वह पुस्तक पढ़ता है, वह श्यामा को खेल दिखाता है।

पूर्वकालिक-क्रिया समापिका-क्रिया के पहिले आवेगी, जबकि दोनों का कर्त्ता एक होगा। और जिस क्रिया के जो

कर्म, करण आदि पद होंगे वह उस से प्रथम आवेंगे; जैसे:—
उसने हाथ से हार बना कर, गले में पहना दिया।

प्रायः विशेषण पद अपने विशेष्य से प्रथम रहता है। यदि दो वा अधिक विशेषणपद एक साथ आवें, तो उनके बीच में संयोजक अव्यय नहीं रहता; जैसे:—
कर्मवीर गोखले की मृत्यु से भारत की बहुत बडी हानि हुई।

सर्वनामपदों के विशेषण प्रायः पीछे आते हैं, जैसे:—
वह बुद्धिमान कहने लगा 'अभी ठहरो।'

जिस स्थान पर दो वा अधिक विशेष्य पद उद्देश्य विधेय भाव से जुडे हों, उस स्थान पर विधेय पद पीछे और उद्देश्य पद पहले लिखा जायगा, जैसे:—धर्म ही सच्चा मित्र है; विद्या, अमूल्य रत्न है, भारतवर्ष, हमारी जन्म भूमि है।

विशेषणीभूत सर्वनाम अपने विशेष्य से पूर्व रहता है, जैसे:—
जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य पालन करता है वह पूजनीय है।
जो स्वार्थवश दूसरों को दुःख पहुंचाते हैं वह मनुष्य घृणित हैं।

सम्बोधन पद वाक्य के प्रारम्भ में रहता है और उसके चिन्ह 'हे' 'अरे' 'हो' अव्यय, ठीक सम्बोधन पद के पूर्व रहते हैं। कभी २ ये चिन्ह लुप्त भी रहते हैं; जैसे:—सीते, तुम कहां हो, अरे अभागियो! तुम अबतक सोये पड़े हो, वसन्त की कुछ ख़बर ही नहीं।

सम्बोधन-पद के ठीक पीछे मध्यम-पुरुष सर्वनाम रहता है। सम्बोधन-पद जिस वचन का हो, उससे पीछे आने वाला सर्वनाम भी उसी वचन का होगा। आदर व गौरव स्थल पर सम्बोधन से परे 'आप' समानता बन्धुता और स्नेहादिस्थल पर 'तुम' और अनादर आदि के स्थलपर 'तू' यह सर्वनाम आता है। कहीं तू को भी बराबर वाले और छोटे लोगों के

लिये बोलते हैं। कहीं २ भक्त-लोग ईश्वर के लिये भी तू कहते हैं, जैसे :—

हे ईश्वर ! आप हमारी रक्षा करो; हे नीच ! तू क्या करता है ? चन्द्र, तुम कहाँ जाओगे ?

विलापादि के समय, 'हा' 'हे' अव्यय बोले जाते हैं; जैसे:- "हा ईश्वर ! तेरी क्या मर्ज़ी है ? हे सती साध्वी जानकी ! तुमने ससार के सामने पातिव्रतधर्म का कितना बड़ा आदर्श खड़ा किया है।"

"सम्बन्ध-पद से परे उसके सम्बन्धी-पद का प्रयोग होना है, जैसे:—"यह राम की पुस्तक है।" यदि सम्बन्धी-पद का कोई विशेषण हो तो वह सम्बन्धी-पद से पूर्व ही रहता है, जैसे:—उसका निर्बल-हृदय तार २ होगया।"

जहां सम्बन्धी-पद का उद्देश्य विधेय-रूप से अन्वय हो, वहां विधेयपद वाक्य में पहले ही आता है, जैसे:—" दूसरों को हानि पहुंचाना ही दुष्टों का काम है।" देश की भलाई करना ही सज्जनों का धर्म है।"

प्रश्नोत्तर के सिलसिले में कभी २ सम्बन्ध-पद पीछे आता है; जैसे:—यह पवित्र-काम किसका है ?

करणपद कर्तृपद के पीछे और कर्म से प्रथम आता है, और उसका विशेषण उस से पूर्व रहता है; जैसे:—उन्होंने बड़े परिश्रम से इस कार्य्य का साधन किया, उसने दृढ़ और पवित्र-प्रेम द्वारा अपने हृदय को विकसित किया।

जिस सम्पूर्ण अर्थ में अपादान कारक होता है उसी सम्पूर्ण अर्थ-बोधक पद से पूर्व, अपादान-पद रहता है, जैसे:— " वह तुम्हारे इस काम से असन्तुष्ट हैं, वह कल दोपहर घर से चल खड़ा हुआ, वह अपने पापों से भयभीत हो कर त्राहि २ करने लगा "।

विशेषण सहित कर्म, और अधिकरणपद अपादान से पीछे आते हैं; किन्तु करण और क्रिया-विशेषण अपादान से पहिले ही आते है; जैसेः—

"उसने हमारे कन्धे से दुशाला उतार लिया; अभाग्य-वश हमारे देश से एक समुज्ज्वल रत्न उठ गया।"

मैंने मातृभूमि के वक्षस्थल से रज उठा कर सिर पर धारण की, उन्होंने अपने पवित्र उपदेश द्वारा भक्तों के हृदय से अन्धकार दूर किया, वह यत्नपूर्वक अपने मार्ग से विघ्नों को दूर करता गया।

प्रायः अधिकरण-पद अपने आधेय के पूर्व स्थापित होता है। जैसेः—"स्वार्थ त्याग ही में अमरत्त्व है, उसने हमारी छाती पर ही यह अनर्थ किया।"

प्रायः कालवाचक अधिकरण वाक्य से पूर्व रहता है जैसेः—"रात में बड़ी ओस पड़ती है; निशीथ में निस्तब्धता का साम्राज्य स्थापित होता है"।

जहां पर कालवाचक और स्थानवाचक दोनों एक काल में अधिकरण हों, वहां पहिले कालवाचक पीछे स्थानवाचक पद आते है, जैसेः—"ईश्वर प्रति समय प्रति स्थान में है।"

एक शब्द के दो बार साथ २ आने को वीप्सा कहते हैं। वीप्सा द्वारा सम्पूर्णता, बहुत्त्व, प्रकार, एक-कालीनता, निकटता, केवलता, आदि अर्थ प्रकाशित होते हैं, जैसेः—

"घर घर में यह चर्चा फैल गई, हमारे जंगल में बड़े बड़े वृक्ष हैं

वह धीरे धीरे जा रहा था; गीता पढ़ते २ उसके प्राण पखेरू उड़ गये; कानोंकान यह खबर चारों ओर फैल गई।

बहुत से आपेक्षक-अव्यय वाक्य में साथ २ आते हैं, जैसेः—जबतक, तबतक और यद्यपि, और तथापि; जो, तो; आदि २।

प्रश्न-वाचक सर्वनाम-उस पद से प्रथम आता है जिसके विषय में प्रश्न हो; जैसेः— यह कौन पुस्तक है ?

यदि पूरा वाक्य ही प्रश्न हो तो वह वाक्य के पूर्व में आता है; जैसेः—क्या आप वह पुस्तक पढ़ेंगे जो कल लाये थे ?

कभी २ वाक्य में प्रश्न-वाचक सर्वनाम नहीं होता, केवल प्रश्न वाचक-चिन्ह ही अन्त में रहता है; जैसेः—वह गया ?

## क्रिया-पदों का व्यवहार ।

यदि सकर्मक धातु की क्रिया है तो अपूर्ण और हेतु हेतु मद्भूत को छोड़ कर शेष भूतों में कर्त्ता का 'ने' चिन्ह आता है। परन्तु बकना, भूलना, बोलना, लाना, आदि सकर्मक क्रियाओं में 'ने' नहीं आता है, जैसेः—"नाई बोला, धोबी लाया।"

और जो संयुक्त-क्रिया किसी सकर्मक धातु और लगना, बैठना, जाना, चुकना, सकना आदि धातुओं के योग से बने तो उसमें 'ने' नहीं आता, जैसेः— राम सुन गया, वह खा चुका।

वाक्य में कर्त्ता और कर्म में से जिसकी विभक्ति न हो, क्रिया के लिंग वचन उसी के अनुसार होंगे, यदि दोनों में किसी की विभक्ति न हो तो, कर्त्ता के अनुसार; और दोनों की हो तो क्रिया एक-वचनान्त सामान्य-भूत के रूप में स्वतन्त्र होगी; जैसेः—

राम ने रोटी खाई, राम रोटी खाता है॥

राम रोटी खाता है, राम ने रोटी को खाया।

जब एक ही क्रिया के असमान लिंगों के अनेक कर्त्ता हों तो क्रिया बहुवचनान्त होगी और लिंग अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होगा, जैसेः— श्याम, रमा और शान्ता खेलती हैं।

आदि में अनेक लिंगों के भिन्न २ कर्त्ता हों और अन्त में कोई सामुदायिक पद हो, तो क्रिया प्रायः बहुवचन और

पुल्लिग होगी, जैसेः—सरोवर में कुमोदिनी और कुमुद आदि सम्पूर्ण खिल रहे हैं।

## वाक्यों का फैलाव।

उद्देश्य और विधेय पदों के बढ़ाने से वाक्य बढ़ जाता है।

उद्देश्य नीचे के पदों द्वारा बढ़ सकता है।

विशेषण द्वारा—"चतुर" मनुष्य गाता है।

समकारक द्वारा—"गवालियराधिपति" महाराज माधोराव सेंधिया पूर्ण नीतज्ञ हैं। दशरथ ने अपने "पुत्र" राम से कहा।

सम्बन्ध-कारक द्वारा—"राजा का" घोड़ा सुन्दर है॥

विशेषणरूप वाक्यांश द्वारा—"उसके समान बुद्धिमान" मनुष्य नहीं देखा जाता।

सर्वनाम द्वारा—"मैं" स्वयं गया।

पूर्व-कालिक क्रिया के विशे-ण वाक्याँश से—"हृष्ट-पुष्ट शरीर पा कर" भी दासता की चाह है।

विशेष्य द्वारा—"राजा" रामचन्द्र बोले।

इन्हीं विशेषणों से कर्म को भी बढ़ा सकते हैं।

क्रिया-विशेषण वा उसके भाव को प्राप्त हुए वाक्याँश द्वारा, विधेय परिवर्द्धित होता है; यथा—राम शीघ्र आया है, उसने "बहुत समय" बिता दिया; तुम "स्पष्ट कर के" कहो; "यत्नपूर्वक कार्य्य" करो।

करण, अपादान और अधिकरण पद भी विधेय को बढ़ाते हैं, यथा—मैं "आखों से" देखता हूं। "हृदय से" चाहता हू। "लाठी से" मारता हूं। "आकाश से" पानी गिरता है। पक्षी "आकाश में" उड़ता है। वह "कल रात्रि को" आया था। "सूर्योदय से" अन्धकार दूर हुआ।

असमापिका क्रिया द्वारा भी विधेय परिवर्द्धित होता है, यथा—राम "दौड़ते २" कहने लगा, सुन्दर दृश्य "देखते देखते" अवाक रह गया।

---

## पद-परिचय।

वाक्य के पदों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं का जहाँ कथन किया जाय, उसे पद-परिचय, पद-व्याख्या वा पदान्वय कहते हैं।

वाक्य में ५ प्रकार के पद होते हैं, विशेष्य [सञ्ज्ञा], विशेषण, सर्वनाम, क्रिया और अव्यय।

विशेष्य के परिचय में—प्रकार, भेद, जाति-वाचक आदि। लिंग, वचन, पुरुष, कारक, विभक्ति, किस क्रिया के साथ अन्वय है। क्रिया-वाचक विशेष्य में लिङ्ग, वचन, पुरुष नहीं लिखा जाता।

सर्वनाम—किस विशेष्य का है, उसी विशेष्य के अनुसार लिङ्ग वचन होता है; पुरुष और कारक में भेद हो सकता है।

विशेषण—प्रकार भेद, और किसका विशेषण है।

क्रिया—पूर्व-कालिक या समापिका, सकर्मक, अकर्मक वा द्विकर्मक, कर्तृवाच्य वा भाववाच्य, काल, पुरुष, वचन कर्त्ता, यदि सकर्मक हो तो कर्म।

### पद सम्बन्धी कुछ बातें

'विशेष्य'—दो प्रकार का होता है—साधारण और विशेष।

साधारण—चिन्ता, शोक, सज्जनता आदि।

विशेष—पेड़, हाथी, गंगा, चलना और पंडित आदि।

विशेष-विशेष्य ५ प्रकार का होता है। नाम-वाचक, द्रव्य-वाचक, क्रिया-वाचक, गुण-वाचक और जाति-वाचक।

विशेषण तीन प्रकार का होता है। विशेष्य-विशेषण, क्रिया-विशेषण और विशेषण का विशेषण, जो विशेष्य का विशेषण विशेष्य के पीछे आवे, तो वह विधेय-विशेषण होता है।

## एक ही शब्द का भिन्न २ पदों में प्रयोग

कभी २ विशेषण-पद स्वतन्त्ररूप से विशेष्य की भांति आते हैं और उसमें विशेष्य के लिङ्ग, वचन होते हैं, जैसेः—पंडितों को बुलाया है।

कुछ गुणवाचक विशेष्य कभी विशेष्य और कभी विशेषण हो जाते हैं। सुवर्ण-मंदिर में 'सुवर्ण' विशेषण है और मंदिर विशेष्य।

कुछ संख्या-वाचक शब्द जब केवल १०, १२, १५ संख्या हों तो संख्या वाचक विशेष्य और अन्य पद के संख्या-बोधक हों तो संख्या वाचक विशेषण होते हैं। जैसेः—३ घोड़े, ४ गाय

कभी जाति-वाचक शब्द विशेष्य और कभी विशेषण होता है। विद्या पढ़ना ब्राह्मण का धर्म है। यहां ब्राह्मण विशेष्य है और "ब्राह्मण-कुल में जन्म ले कर"—यहां ब्राह्मण विशेषण है।

सर्वनाम भी विशेष्य-रूप में आता है—यह वही रणक्षेत्र है। यहां "यह" सर्वनाम विशेष्य-रूप में आया है। सर्वनाम कभी विशेषण-रूप में भी आता है, जैसेः—"यह मनुष्य देशभक्त है"

कभी २ क्रिया-पद भी विशेष्य-रूप में आता है; जैसेः—'खा' धातु के आगे 'ता' प्रत्यय लगाने से 'खाता' पद बनता है। यहां 'खाता' विशेष्य है।

परिचय करते समय गद्य का एक २ पद लेते हैं और पद्य का गद्य-क्रम (अन्वय) कर लेते हैं। फिर यथाक्रम परिचय करते जाते हैं।

उदाहरण

"कुवलय-कुल में से तो, अभी तू कढ़ा है,
बहु-विकसित-प्यारे-पुष्प में भी रमा है।
अलि, अब मत जा तू, कुंज में मालती की,
सुन मुझ अकुलाती ऊबती की व्यथायें।

[ हे ] अलि, तू कुवलय-कुल में से तो अभी निकला है [ और ] बहु विकसित प्यारे पुष्प में भी रमा है [इसलिए] अब तू मालती की कुञ्ज में मत जा [ और ] मुझ अकुलाती ऊबती की व्यथायें सुन।

अलि—जाति-वाचक, संज्ञापद, पुल्लिङ्ग, एक वचन, मध्यम-पुरुष, सम्बोधन कारक।

तू—सर्वनाम पुरुषवाची, मध्यम पुरुष, पुल्लिङ्ग, एकवचन, कर्त्ता, मिश्रित वाक्य की दो क्रियाएं "निकला है" और "रमा है" का।

कुवलय—जाति वा०, संज्ञापद, एक वचन, पुल्लिङ्ग, अन्य पुरुष, कुल का सम्बन्ध-बोधक विशेषण।

कुल में से—जाति-वाचक संज्ञापद, एक वचन, पुल्लिग, अपादान कारक।

अभी—कालवाचक-क्रिया-विशेषण "निकला है क्रिया का"।

निकला है—क्रियापद, अकर्मक, कर्तृ प्रधान, आसन्न-भूत काल, पुल्लिङ्ग, एक वचन, निकलना से बना है, इसका कर्त्ता तू।

और—समुच्चायक, अव्यय पद "तू कुवलय कुल में से अभी निकला है और [ तू अभी ] बहु-विकसित प्यारे पुष्प में भी रमा है। इन दो सरल वाक्यों का योजक है।

बहु—विशेषण [ विकसित विशेषण का ]।

विकसित—विशेषण (पुष्प विशेष्य का।)

पुष्प में—जाति-वाचक विशेष्य [ संज्ञा ] पद, एक वचन, पुल्लिङ्ग, अन्य पुरुष, अधिकरण [ व्याप्ताधिकरण ] रमा है क्रिया का आधार।

भी—निश्चय-बोधक अव्यय।

रमा है—क्रिया-पद, अकर्मक, कर्तृ प्रधान, आसन्नभूत काल, पुल्लिङ्ग, एकवचन, रमना धातु की, इसका कर्त्ता तू, इसका आधार पुष्प।

तू—उपर्युक्त सम्पूर्ण तू का परिचय; [ मत ] जा और सुन क्रियाओं का कर्त्ता।

अब—क्रिया-विशेषण, कालवाचक [मत] जा क्रिया का

मालती की—जाति-वाचक संज्ञा-पद, एक वचन, स्त्री लिङ्ग, अन्य पुरुष, सम्बन्ध पद, कुञ्ज से सम्बन्ध, [ सम्बन्ध बोधक-विशेषण] (कुञ्ज है विशेष्य का)

कुञ्ज में—जाति-वाचक संज्ञापद, एक बचन, स्त्रीलिङ्ग अन्य पुरुष, अधिकरण कारक, (मत) जा क्रिया का आधार।

मत—भाव-वाचक-क्रिया-विशेषण, [ जा क्रिया का ]

जा—क्रिया पद, अकर्मक, कर्तृवाच्य, विधि एक व०, पुल्लिङ्ग, कर्त्ता 'तू'

समानाधिकरण

मुझ—सर्वनाम, उत्तम पुरुष, एक वचन, स्त्रीलिङ्ग, क्योंकि, राधिका का कथन है।

अकुलाती—[अकुलाती हुई) क्रिया-द्योतक संज्ञा। अकुलाना, ऊबना क्रियाओं की द्योतक।

ऊबती की—क्रियाद्योतक-संज्ञा।

व्यथायें—भाववाचक संज्ञापद, बहुवचन, स्त्रीलिङ्ग, अन्य पुरुष, कर्म कारक की अवस्था, सुन क्रिया का कर्म,।

सुन—क्रिया-पद, सकर्मक, कर्तृवाच्य, विधि क्रिया, इसका कर्म 'व्यथायें', कर्त्ता 'तू'।

## वाक्य-विश्लेषण

वाक्य के अंतर्गत अंशों को पृथक् कर के उनका आपस में सम्बन्ध दिखाने का नाम वाक्यविश्लेषण है।

सरल वाक्य में वाक्य का नाम बता कर पहिले वाक्य के दो बड़े २ भाग—उद्देश्य और विधेय को अलग अलग करना चाहिये। फिर उद्देश्य, उद्देश्य-विशेषण, विधेय, विधेय-विशेषण,

विधेय-पूरक, सकर्मक क्रिया का कर्म और उसका विशेषण अलग छाँटना चाहिये। मिश्रवाक्य के प्रधान, अप्रधान वाक्य दिखाने चाहियें, फिर यह दिखाना चाहिये कि अप्रधान-वाक्य का प्रधान-वाक्य से क्या सम्बन्ध है। फिर हर एक वाक्य का पृथक् विश्लेषण होना चाहिये। यौगिक-वाक्यों के सब स्वतंत्र वाक्यो को पृथक् कर के उनका विश्लेषण करना चाहिये और इससे पहिले इन वाक्यों के योजक व विभाजक पदों को दिखा देना चाहिये।

सरलवाक्य—दयामय भगवान् ने हमें उत्पन्न किया है।

उद्देश्य—( कर्त्ता ) भगवान् ( विशेष्य पद )

उद्देश्य-पूरक—दयामय ( गुणवाचक विशेषण )

विधेय[ क्रिया ]—उत्पन्न किया है [ समापिका क्रिया ]

कर्म [ विधेय पूरक ]—हमें [ सर्वनाम पद ]

( २ ) जटिल वाक्य—कब जाऊँगा, मैं यह अभी नही कह सकता।

प्रधान वाक्य—मैं यह अभी नहीं कह सकता।

अप्रधान वाक्य—कब जाऊंगा।

प्रधान वाक्यः—

उद्देश्य [ कर्त्ता ]—मै [ सर्वनाम पद ]

विधेय—कहसकता [ क्रिया ]

कर्म [ विधेय-पूरक ]—यह [सर्वनाम पद]

विधेय-पूरक— अभी [क्रिया विशेषण]

अप्रधान वाक्य—नही (अव्यय)

यह कर्म रूप से संज्ञा-वाक्य होकर प्रधान वाक्य के "यह" पद को लक्ष्य करता है।

उद्देश्य-- मै [छिपा हुआ ]

विधेय—जाऊंगा।

विधेय-पूरक—कब ( क्रिया-विशेषण )

जटिल-वाक्य में–सहायक-वाक्य, यातो प्रधान-वाक्य के किसी सर्वनाम व विशेष्य के समकारक-रूप में वा सकर्मक-क्रिया के कर्म रूप में आता है। अथवा विशेषण-रूप से, किसी सर्वनाम वा क्रिया को विशेषित करता है।

यौगिक-वाक्य के विश्लेषण में—सब स्वतंत्र वाक्यों को पृथक् करके विभाजक वा संयोजक अव्ययों को दिखाना चाहिये और सरल-वाक्य की भांति विश्लेषण करना चाहिये।

## वाक्य-संकोचन।

वाक्य-संकोचन करने की अनेक रीति हैं; उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं।

१—बहुत से पदों द्वारा प्रकाशित भाव को संक्षेप करने से।

### कृत्प्रत्यय।

| | |
|---|---|
| सुख दे सो, सुखद | पत ( पत्त ) द्वारा गमन करे सो, पतंग |
| निशि में चले जो सो, निश्चर। | त्वरा ( शीघ्र ) गमन करे सो तुरंग |
| किये को न माने सो, कृतघ्न। | |
| तम को नाश करे सो, तमारि। | |

### तद्धित-प्रत्यय।

| | |
|---|---|
| दर्शन को समझने वाले = दार्शनिक | विज्ञान में है पहुंच जिसकी = विज्ञानी |
| वसुदेव से अपत्य = वासुदेव | स्मृति में है निष्ठा जिसकी सो स्मार्त |
| शक्ति के उपासक = शाक्त | |
| विदेश से आए हुए = विदेशी | |

| | |
|---|---|
| नीति का ज्ञान है जिन्हें=नीतिज्ञ | हिन्द में निवास है जिनका सो=हिन्दी |
| द्वादशवर्ष की आयु है जिस की=द्वादशवर्षीय | पृथिवी के अवयवों से बना पदार्थ=पार्थिव |
| दूर कीसोचते हैं जो, सो=दूरदर्शी। | |

## समास द्वारा।

### समास।

| | |
|---|---|
| मैं, तुम और हम=हम लोग | रथ में आरूढ़ है सो=रथारूढ़ |
| इन्द्र को जीता है जिसने=इन्द्रजीत | मृग के समान है अक्षि जिसकी=मृगाक्षी |
| पीत अम्बर है जिस का=पीताम्बर | दीर्घ है आकार जिसका=दीर्घाकार |
| पंक से जन्म है जिसका=पंकज | दश हैं आनन जिसके=दशानन |
| स्त्रीसहित मौजूद है=सस्त्रीक | |

(२) जब किसी वाक्य वा वाक्य-समूह में दो व अधिक समापिका-क्रिया हों, तो, प्रधान-समापिका को छोड़ सबको पूर्वकालिक-क्रिया कर देते हैं; जैसेः-

मैंने स्वामी जी को देखा और आनंद में डूब गया। कहने लगा कि धन्य है वह माता जिसने ऐसा पुत्र पैदा किया।

मैं स्वामी जी को देखते ही आनंद में मग्न हो कर कहने लगा "स्वामी के सदृश पुत्र पैदा करने वाली माता को धन्य है"।

मैं बाज़ार गया, इधर उधर घूमा और धोती लाया। मैं बाज़ार से इधर उधर घूम कर धोती लाया।

( ३ ) जहां वाक्य वा वाक्य-समूह में उद्देश्य अनेक प्रकार के हों और विधेय एक प्रकार का हो, तो उद्देश्यों को संयोजक-अव्यय द्वारा मिला देते हैं और क्रिया का एक ही वार उल्लेख करते हैं, जैसेः—

पं० श्रीकृष्ण जी का व्याख्यान होगा, चतुर्वेदी विश्वेश्वर दयाल बोलेंगे और स्वामी डालचन्द की वक्तृता होगी" जिस के बदले में—' पं० श्रीकृष्ण, चतुर्वेदी विश्वेश्वर दयाल और स्वामी डालचन्द के व्याख्यान होंगे "—कर सकते हैं।

कभी २ अर्थ की ओर दृष्टि रख कर वाक्य का संकोच किया जाता है, जैसेः—"जिस प्रकार पं० रामप्रसाद सरल स्वभाव है उसी प्रकार बाबू लालसिंह भी सरल स्वभाव हैं । इसका संकोच इस प्रकार होगा ।

प० रामप्रसाद की भांति ही बाबू लालसिंह भी सरल स्वभाव हैं ।

## वाक्य-परिवर्त्तन

## सरल-वाक्य से जटिल-वाक्य बनाना

किसी सरल-वाक्य को जटिल-वाक्य बनाते समय किसी पद वा वाक्यांश के बदले में एक वाक्य रख लेना चाहिये और फिर नित्य सम्बन्ध वाले दो विशेष-पदों से उन्हें जोड देना चाहिये । कहीं २ नित्य सम्बन्ध वाले दोनों विशेष-पद छिपे रहते है ।

सरल-वाक्य—सज्जन-मनुष्य कटु-वचन नहीं कहते ।

जटिल-वाक्य—जो सज्जन मनुष्य हैं, वह कटु-वचन नहीं कहते ।

' सज्जन-मनुष्य ' इतने को 'है' लगा कर वाक्य बना लिया और 'जो' और 'वह' पदों से शेष वाक्य को जोड़ दिया । इस प्रकारः—

'जो सज्जन" मनुष्य हैं, वाक्य का प्रधान अंश हो गया "वे कटु-वचन नहीं कहते" यह सहायक अंश हो गया।

सरल-वाक्य—उसकी नीति को मैं जानता हूं।

जटिल-वाक्य—"उसकी क्या नीति है" इसे मैं जानता हूं।

अथवा—"इसे मैं जानता हूं कि उसकी क्या नीति है।

## जटिल-वाक्य को सरल वाक्य करना

किसी जटिल-वाक्य के अन्तर्गत सहायक अंश को पद वा वाक्यांश के रूप में ला कर सम्बन्ध-बोधक दोनों पदों को हटा देना चाहिये। सरल-वाक्य बन जायगा, इसमें अर्थ और काल का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

जटिल वाक्य—जब तक मैं अपना कार्य्य साधन न कर लूंगा तब तक विवाह न करूंगा।

सरल-वाक्य—अपना कार्य्य साधन न करने तक विवाह न करूंगा। यहां " जबतक " और "तबतक" विशेष सम्बन्ध-बोधक पदों को पृथक् कर दिया है और "जबतक अपना कार्य्य-साधन न कर लूंगा" इस प्रधान वाक्य को " अपना कार्य्य साधन न करने तक " यह वाक्यांश बना लिया।

इन दोनों प्रकार के परिवर्त्तनों में वाक्य-संकोचन के नियमों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

## सरल-वाक्यों को यौगिक-वाक्य बनाना

सरल-वाक्य के किसी वाक्यांश को स्वतन्त्र वाक्य बना कर संयोजक वा विभाजक अव्ययों के प्रयोग से यौगिक-वाक्य बना लेना चाहिये। कहीं कहीं पूर्वकालिक-क्रिया को समापिका-क्रिया कर लेने से यौगिक-वाक्य बन जाता है।

सरल वाक्य —स्नानादि से निवृत्त होकर, गीता रहस्य का अध्ययन किया।

यौगिक-वाक्य—स्नानादि से निवृत्त हुआ और गीता रहस्य का अध्ययन किया।

सरल-वाक्य के "स्नानादि से निवृत्त होकर" इस वाक्यांश को यौगिक-वाक्य का "स्नानादि से निवृत्त हुआ" यह स्वतन्त्र वाक्य बना लिया।

## यौगिक-वाक्य को सरल-वाक्य में बदलना

यौगिक-वाक्य के एक स्वतन्त्र वाक्य को वाक्यांश में बदल कर कहीं २ समापिका-क्रिया को पूर्वकालिक-क्रिया करने से यौगिक-वाक्य से सरल-वाक्य हो जाता है। यौगिक-वाक्यों के अव्यय-पद सरल-वाक्य हो जाने से लुप्त हो जाते हैं।

यौगकि-वाक्य—हरि आया और चला गया।

सरल-वाक्य—हरि आकर चला गया।

यौ०वा०—आम पका लिये और खा लिये।

स० वा०—आम पका कर खा लिये।

## जटिल-वाक्य से यौगिक-वाक्य

जटिल-वाक्य के अप्रधान-वाक्य को स्वतन्त्र-वाक्य बनाना पड़ता है और उसके नित्य सम्बन्धी दोनों पदों को छोड़ संयोजक वा विभाजक अव्यय लाना पड़ता है।

जटिल-वाक्य—उसने जो कहा था, वह नहीं किया।

यौगिक-वाक्य—उसने कह तो दिया, परन्तु किया नहीं।

जटिल-वाक्य—यद्यपि वह विद्वान है तथापि समझता नहीं।

यौगिक-वाक्य—वह विद्वान है परन्तु समझदार नहीं।

## यौगिक-वाक्य से जटिल-वाक्य

यौगिक-वाक्य के दो स्वतन्त्र वाक्यों में से पहिले वाक्य के

प्रारम्भ में 'यदि' आदि अव्यय और संयोजकादि अव्यय के स्थान में नित्य सम्बन्धी पद के प्रयोग करने से जटिल-वाक्य बन जाता है।

यौगिक-वाक्य--निष्काम कर्म करो, तुम्हारा मन पवित्रता से भर जायगा।

जटिल-वाक्य--यदि निष्काम कर्म करोगे तो तुम्हारा मन पवित्रता से भर जायगा।

अर्थ पर लक्ष रख के निषेधात्मक और निश्चयात्मक वाक्यों का परिवर्त्तन होना चाहिये; जैसे:—

निषेधात्मक--जो बालकपन में विद्याध्ययन नहीं करता वह सुखी नहीं होता।

निश्चयात्मक--जो बालकपन में विद्याध्ययन करता, है वही सुखी होता है।

---

## रचना के लिये अन्य आवश्यक बातें।

### भाषा

(१) भाषा सरल हो—रचना में दो प्रकार की भाषा लिखी जाती है, अलकृत और साधारण।

'अलंकृतगद्य'--वह गद्य है जिसमे उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का विधिपूर्वक प्रयोग किया जाय, परन्तु अलंकृतगद्य लिखना उच्चश्रेणी के सिद्धहस्त लेखकों का काम है। नवसिखिये लेखकों को अलंकृत भापा के बखेड़े में नहीं पड़ना चाहिये। दूसरी साधारण भाषा है। साधारण भाषा में तीनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग होता है; परन्तु सरल भाषा वह है, जिसमें सरल-वाक्यों का अधिकतर प्रयोग हो। आजकल

ऐसी भाषा अधिक पसंद की जाती है । इसमें प्रासाद-गुण अधिक होता है । अर्थात् पढ़ने वाले लेखक के भावों को पढ़ते ही समझ जाँय ।

(२) भाषा शुद्ध हो—व्याकरण-शास्त्र के अनुसार शब्द-शास्त्र और वाक्य-रचना का पूरा २ ज्ञान हो । वाक्य आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति युक्त हों।

प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे पद, वाक्यांश व वाक्य प्रचलित होते हैं जिनके प्रयोग से भाषा में नया जीवन आ जाता है, पदयोजना प्रभावशाली हो जाती है । अमुक व्यक्ति 'मर गया'–यह साधारण प्रयोग है "परलोकवास होगया" "कैलास वास होगया" "स्वर्ग सिधारे" "पञ्चत्व प्राप्त किया" "असार संसार को छोड़ दिया" "यहां से चल वसे" "हम से चिर विदा ली" "भव-बंधन से छूट गये" "संसार परित्याग किया" "उनके प्राण-पखेरू उड़ गये" "जीवन-प्रदीप निर्वाण हुआ" "काल-कवल हुए" "मानव-लीला संवरण की" "अमरलोक सिधारे" आदि ।

किसी से कहना है 'यहां से चले जाओ' बोल चाल में इस प्रकार भी प्रयोग होता है । 'लम्बे पड़ो' 'पीठ दिखाओ' 'हवा खाओ' 'काम देखो' रस्ता पकड़ो, रास्ता लो आदि ।

'जमना' क्रिया पद का व्यवहार साधारणतः द्रव्य वस्तु के ठोस रूप होने के अर्थ में आता है; जैसेः—पानी जम गया । परन्तु जब अन्य स्थान पर लाते हैं तो विशेष चमत्कार हो जाता है, "दूकान जम गई । हाथ जमा दूंगा । कैसा रंग जमा है । रौब नहीं जमा । मामला जमता नहीं नज़र आता । जड़ जमती जाती है । बड़ी भीड़ जमी । होली जमी है । जूआ डट के जमा हुआ है ।

## मुहाविरा ।

मुहाविरा—ऐसे पद वा वाक्यांश का जहां प्रयोग हो जिस में शब्दार्थ न ले कर, लाक्षणिक अथवा कोई और ही अर्थ लिया जाता हो उसे मुहाविरा कहते हैं। मुहाविरेदार भाषा वह भाषा है, जिसमें मुहाविरों का प्रयोग हो।

## कुछ मुहाविरेदार वाक्यांश

मूसलधार पानी बरसता है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी विलक्षण बुद्धि है। अपूर्व घटना है। नियमबद्ध आंदोलन करो। अनोखी शोभा है। झमाझम पानी बरसता है। रातोंरात आगरे पहुँचा। टकटकी बँध गई। खींचातानी मच गई। मुँह ही मुँह देता है। अधाधुन्ध हो रही है। फूं फूं ताल भरता है। कौडी २ करके जोड़ा है। बात मत बनाओ। निदान ऐसा ही हुआ। ज्यों का त्यों रक्खा है। पछताना ही पछताना हाथ रह गया। डाँवाडोल हो गया। आंधी के आम हैं। अरण्य-रोदन हुआ। आकाश के फूल हैं। खरहा के सींग हैं। कहना ही क्या है। हरे में फूटी है। सावन का अंधा है। अंधे लँगड़े के न्याय से। तांत बाजी राग पहिचाना। विजली कड़कती है। शेर गुर्राता है। हाथी चिंघाड़ता है। चिड़ियां चहचहाती हैं। लबालब भरा हुआ है। सांप फुंसकारता है। तबला ठनक रहा है। भौंरे गूँजते हैं। मोर कूकता है। बाज झपट्टा मारता है।

किसी मुख्य पद के साथ अन्य पदों के व्यवहार से कुछ व्यवहारिक वाक्य बनते हैं; उनके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

दाँत खट्टे करना = हराना, मैंने उसके दाँत खट्टे कर दिये।

आंखें नीची होना = लज्जित होना, यह सुनते ही उसकी आंखें नीची होगईं।

पौ बारह हैं=खूब लाभ है। आजकल घी के व्यापार में पौ-
बारह हैं।

## हाथ।

हाथ धो बैठना=खो देना, वह पुस्तक से हाथ धो बैठेगा।
हाथ डालना=आरम्भ करना, मैं इस कार्य्य में हाथ नहीं डालूंगा।
हाथ खींचना=छोड़ना, मैंने उधर से हाथ खींच लिया।
हाथ उठाना=मारना, बच्चों पर हाथ उठाना अच्छा नहीं।
हाथ मारना=शर्त करना, हाथ मार कर कहे देता हूं।
हाथ चलाना=छेड़ना, हाथ चलाना अच्छा नहीं।
हाथ धरना=कृपा करना, उसके ऊपर राजा का हाथ धरा है।
हाथ कटाना=क़ाबू न रखना, वह अपने हाथ कटा बैठा।
हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना=कुछ न करना, वह हाथ पर
हाथ रख कर बैठा है।
हाथ ख़ाली होना=कुछ न रहना, मैं ख़ाली हाथ जा कर क्या
करूंगा।
हथियाना=लेना, उसने मेरी पुस्तक हथियाली।
हाथ धो कर पीछे पड़ना=लगातार पीछे पड़ना, वह हाथ
धोकर मेरे पीछे पडा है।
हाथ दबा है=क़ाबू है, मेरा हाथ दबा है।
हाथ निकालना=क़ाबू निकालना, अब क्या है हाथ निकल गया।
हाथ मलना=पछताना, वह हाथ मल रहा है।
हाथ आना=मिलना, तुम्हारे क्या हाथ आवेगा।

## मुंह।

मुंह मारना=मुंह में जाना, मक्खी ने मुंह मारा।
मुंह की खाना=कड़ा जवाब पाना, उसने मुंह की खाई।
मुंह चलाना=बकना, क्यों मुंह चलाते हो।

मुंह फिरना = घमण्ड होना, उसका मुंह फिर गया है।
मुंह फटना = लोभी होना, आजकल उसका बड़ा मुंह फटा है।
मुंह ही मुंह देना=जवाब पर जवाब देना, क्यों मुंह ही मुंह देते हो।
मुंह बनाना = चेष्टा विशेष करना, कैसा मुंह बनाया है।
मुंह बिगाड़ना=उलटा जवाब देना, उसका मुंह बिगाड़ दिया।
मुंह फाडना = हँसना, क्यों मुंह फाड़ता है।
मुह फक्क होना = घबड़ाना, उसका मुंह फक्क होगया।
मुंह में पानी भरना = इच्छा होना, उसे देख मेरे मुंह में पानी भर आया।
मुंह काला होना = कलंक लगना, उसका मुंह काला होगया।
मुहमांगी मौत मिलना = चाही हुई बात पूरी होना, मुंह मांगी मौत नही मिलती।

## आंख।

आंख मारना = इशारा करना, उसकी ओर आंख मार दी।
आंख मटकाना = सैन चलाना, क्यों आंख मटकाता है ?
आंख मूंदना = विचार न करना, आंख मूंद कर काम न करना चाहिये।
आंख मिचना = मरना, उसकी आंख मिचगई।
आंख खुलना = समझ आना, बड़े दिनों में आंखें खुलीं।
आंख दिखाना = धमकाना, जब वह आंख दिखाने लगा।
आंख लगना=प्रेम होना, सोना। उससे आंखें लग गई, उसकी आंख लग गई।
चार आंखें होना=सामने होना, ज्योंही उनकी चार आंखें हुईं।
आंख बदलना=मन फिरना, उसकी आंखें बदली दिखाई देती हैं।
आंखों में चर्बी छाना = घमण्ड आना, उसकी आंखों में चर्बी छागई है।

आंखें नीली पीली करना = नाराज़ होना, आंखें नीली पीली क्यों करते हो ?

आंख उठा कर देखना = क्रोधित होना; मारना तो दूर रहा कोई आंख भी नहीं उठा सकता।

आंखों में खून उतरना = क्रोध से आंखें लाल होना।

## दाँत।

दाँत खट्टे करना = हराना, उस के दाँत खट्टे हो गये।

दाँत काटी रोटी = बड़ी मुहब्बत, उनकी दाँत काटी रोटी है।

दाँत पीसना = क्रोध करना, मुझ पर क्यों दाँत पीसते हो।

दाँत तोड़ना = चोट पहुंचाना, अभी दाँत तोड़ दूंगा।

दाँत मारना = कौर भरना, क्या दाँत मारोगे ?

दाँत दिखाना = लाचारी प्रगट करना, कौडी २ को दाँत दिखाते फिरते हैं।

दाँतों में उँगली देना = अचंभित होना, यह बात सुन कर उस ने दाँतों में उङ्गली दे ली।

## नाक।

नाक का बाल = बहुत प्यारा, वह उसकी नाक का बाल है।

नाक कटना = इज़्ज़त खोना, उसकी नाक कट गई।

नाक रखना = शर्म रखाना, अब नाक रखना तुम्हारे हाथ है।

नाक चने बिनवाना = बेहद तंग करना, उससे नाक चने बिनवाये।

नाक दबाना = दबाव डालना, नाक दबाने से मुंह खुलता है।

पानी २ हो जाना = ढीला पड़ना, यह देखते ही वह पानी २ हो गया।

## पानी।

पानी मरना = भ्रम होना, तेरी तरफ़ पानी मरता है।

पानी भरना = हार मानना, यह उसके सामने पानी भरता है।

पानी उड़ना=आब बिगड़ना, तलवार पर पानी नहीं रहा।
पानी पड़ना=शर्म आना, लाखों मन पानी पड़ा।
पानी ढलना=बेशर्म होना, उसकी आँखों का पानी ढल गया।
पानी पी जाति पूछना=काम करके पीछे सोचना।
पानी में आग लगाना=बेबात लड़ाई कराना, आग लगे ब्रज को बसिवो, जहां पानी में आग लगावें लुगाई।
चुल्लू भर पानी में डूबना=बड़ी शर्म की बात है, तुमसे इतना भी काम नहीं हुआ, चुल्लू भर पानी में डूब मरो।

## ख़ाक।

ख़ाक उड़ना=बरबाद होना, उसकी ख़ाक उड़ गई।
ख़ाक उड़ाना=बदनामी करना, किसी की ख़ाक उड़ाना अच्छा नहीं।
ख़ाक डालना=छिपाना, ख़ैर, हुआ सो हुआ, अब ख़ाक डालो।
ख़ाक चाटना=तबाह होना, वह ख़ाक चाट गया।
ख़ाक छानना=बहुत ढूंढना, तुम्हारे पीछे ख़ाक छान डाली।
ख़ाक में मिलना=बरबाद होना, वह ख़ाक में मिल गया।
ख़ाक बरसाना=नाश होना, यहां ख़ाक बरसती है।

## ख़ून।

ख़ून सूखना=डरना, देखते ही मेरा ख़ून सूख गया।
ख़ून बिगड़ना=कोढ़ या और कोई ख़ून का रोग होना, उसका ख़ून बिगड़ गया।
ख़ून बहाना=मार डालना; उसका ख़ून बहा दूंगा।
ख़ून उबलना=क्रोध आना, एकदम ख़ून उबल आया।
ख़ून का प्यासा=मारने की इच्छा करना, वह मेरे ख़ून का प्यासा है।

## सिर।

सिर पड़ना=नाम लगना, जाने किसने किया और मेरे सिर पड़ा
सिर कटाना=मरना, तुम्हारे लिये सिर थोड़े ही कटाऊंगा
सिर कटना=मारा जाना, वहां सिर थोड़ा ही कटता है।
सिर चिराना=हठात् किसी से कुछ लेना, दूसरे पर सि
चिराना अच्छा नहीं।
सिर मूड़ना=ठगना, किसका सिर मूड़ा।
सिर लेना=ज़िम्मेवरी लेना, उसे अपने सिर क्यों लेते हो।
सिर हिलाना=मने करना, उसने तो सिर हिला दिया।
सिर देना=बलिदान होना, धर्म पर उसने अपना सिर दे दिया
सिर पर चढ़ना=आदत बिगाड़ना, उसे सिर चढ़ा लिया है
सिर पटकना=किसी दूसरे पर डालना, उसने मेरे सि
पटक दिया।
सिर डालना=हठात् सौंपना, राम के सिर डाल दी।

## कहावत।

कुछ उक्तियां लोक में ऐसी प्रचलित हैं, जिनको मनुष्य अपने कथन की पुष्टि में व अपने पक्ष में फैसला लेने के अभिप्राय से अथवा किसी बात को किसी आड से कहना हो उस समय, अथवा किसी के प्रति उपालंभ देना हो अथवा जब किसी को चेतावनी देनी हो तो उनका प्रयोग किया करते हैं, इन्हें कहावत या लोकोक्ति अथवा जनःश्रुति कहते हैं।

उलटा काम करने वाले को अच्छा फल न मिले तो वहां स्पष्ट यह न कह कर "तुमने बुरा किया अतः बुरा हुआ" एक लोकोक्ति कह दी "जैसी करनी पार उतरनी।" अवसर निकल जाने के बाद सम्हलने वाले से "अब पछिताए होत का, चिड़ियां चुग गईं खेत।" "का वर्षा जब कृषी सुखाने।"

इस प्रकार कहावतों के प्रयोग से रचना सुन्दर हो जाती है। और उसमें विशेष बल आ जाता है। थोड़े से उदाहरण कहावतों के प्रयोगों पर यहां दिये जाते हैं।

पहिले आत्मा फिर परमात्मा।

'पहिले अपने घर को सम्हालो फिर दूसरों की उन्नति में ध्यान दो। कहा गया है 'पहले आत्मा पीछे परमात्मा'।

जो गुड़ खाय सो कान छिदावे।

जो इन्द्रियों के स्वाद का भोग करेगा, वह दुःख भी अवश्य पावेगा; क्योंकि भोग और रोग का साथ है, जो गुड़ खायगा सो कान छिदायगा।

अपना पेट तो गधा भी भर लेता है।

जो मनुष्य स्वार्थ छोड़ कर तन, मन, धन से परोपकार करते हैं वे धन्य हैं, यदि अपने ही लिये जन्म विताया तो क्या किया ? अपना पेट तो गधा भी भर लेते हैं।

अति बुरी होती है।

शिष्टता का नाश करना सभ्यता नहीं है, जो ज़रा सा वैभव होने पर आसमान से बातें करने लगते हैं, वह समाज की निगाह से गिर जाते हैं; क्योंकि " अति बुरी होती है। "

बौहरे की राम २ जम का संदेशा।

झूठे नाम के लिये शक्ति से बाहर ऋण ले कर कभी कोई काम मत करो। ऋणी मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता है। मालूम रहे कि बौहरे की राम २ उसके लिये जम का संदेशा है।

बगुला मारे पखना हाथ।

ग़रीब की हमेशा मदद करो, इससे परमेश्वर खुश होगा और संसार में यश रहेगा। दीन को सता कर क्या मिलेगा। भाई, " बगुला के मारने पर पंख ही हाथ आते हैं। "

### सीधे का मुंह कुत्ता चाटे।

अपना वर्ताव सरल और मीठा रक्खो, परन्तु चालाकियों को भी समझे रहो; नहीं मालूम दुष्ट मनुष्य कब धोका दें। क्योंकि, " सीधे आदमी का मुंह कुत्ता चाटते हैं।"

### हाथी चले ही जाते हैं कुत्ता भूंकते ही रहते हैं।

संसार में सब की बुराई भलाई होती है, परन्तु बुद्धिमान पुरुष मूर्खों की बात पर कभी ध्यान नहीं देते वह अपने मार्ग से तिल भर भी नहीं हटते। वह जानते हैं कि "हाथी चले ही जाते हैं और कुत्ते भूंका ही करते हैं।

### बाप का पोखरा है तो क्या कीच खानी है।

यदि तुम्हारा वहां निर्वाह नहीं होता, कहीं दूसरी जगह जा कर उद्यम करो, क्यों दुःख भोग रहे हो, "वाप की पोखर है तो क्या कीच खानी है ?"

### देखिये ऊंट किस करवट बैठता है।

अभी परिणाम विदित नहीं हुआ, उद्योग तो खूब किया पर, अभी ठीक नहीं कह सकता कि "ऊंट किस करवट बैठे।"

### एक का इलाज दो और दो का इलाज चार।

भाई, कल रात को एक दुर्घटना होगई। जब मैं घर आ रहा था, दो चोरों ने मुझे घेर लिया। यद्यपि मैंने बहुत साहस किया, तथापि आप जानते ही हैं कि "एक का इलाज दो और दो का चार।" वह कपड़े लत्ते ले कर लम्बे बने।

### साईं घोड़नि के अछत गदहन आयो राज।

यहां तजुरुबेकार पुराने लोगों को कोई पूछता ही नहीं। वेचारे सच्चे सीधे एक कोने में पड़े हैं, परन्तु कुछ चालबाज लोगों ने अपना ऐसा गुट्ट बनाया है कि उनके सामने किसी की नहीं चलती। यह दशा देख कर हमें वह मसल याद आती

है कि, "सांई बौड़नि के अछत गदहन आयो राज।"

जैसे हुए वैसे ही न हुए।

जिन्हों ने अनेक शास्त्र पढ़ कर और असंख्य धन कमा कर देश के दुःख दूर नहीं किये तो "वह जैसे हुए वैसे ही न हुए।"

जैसी तेरी कोमरी तैसे मेरे गीत।

हमारे देश के शिक्षकों की अभी बुरी दशा है, जबतक उनकी आर्थिक उन्नति न होगी, शिक्षा में सफलता होना दूर है, वह सोच लेते हैं "जैसी तेरी कोमरी तैसे मेरे गीत।"

फरा सो झरा और बरा सो बुताना।

जो आर्य-जाति किसी समय सभ्यता के शिखिर पर चढ़ी थी, जो एकता और प्रेम के मद में मस्त थी; आज वही, अज्ञान, द्वेष, कलह और फूट का शिकार बन रही है। सदैव एकसी दशा किसी की नहीं रहती। यह ईश्वरीय नियम है, "फरा सो झरा और बरा सो बुताना।"

अपनी अपनी ढापुली अपना अपना राग।

अविद्या के अँधेरे में एकता-सूत्र को तोडमोड़ डाला। यह हिन्दू-जाति अनेक सम्प्रदाय और अनेक वर्गों में बंट कर अलग २ हो गई। कोई किसी की बात नहीं मानता है, सब अपनी २ ढापुली पर अपना २ राग अलापते हैं।

बड़े लोगों के कान होते हैं, आंख नहीं।

हमारे देश के बड़े लोग लडकपन से ही कुछ खुशामदी लोगों के हाथ के खिलौने बन जाते हैं। यही बनावटी भक्त उनके विचारों और व्यवहारों के विधाता बन बैठते हैं। जो कुछ इन्हों ने कह दिया, जो कुछ समझा दिया, वह वे पेंदी के लोटे की तरह इधर उधर लुढकते फिरे। तभी तो कहते हैं, "बड़े लोगों के आंखें नहीं होतीं, कान होते हैं।"

भाषा का एक यह भी विशेषण है कि वह बोल-चाल की हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे लखनऊ और दिहली की अरबी मिश्रित, गांव की ग्रामीण, व राम कहानी की बनारसी, नौटंकी वालों की गंदी खिचड़ी, व सब्ज़ी-मंडी की कुंजड़ियाही, बिहारियों की अर्द्धमागधी, नंदगांव की पुरानी ब्रजभाषा हो; वरन्, सामान्यतः आजकल समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रिकाओं में जिस प्रकार की भाषा का व्यवहार होता है, पंजाब, बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, राजपूताने के प्रसिद्ध हिन्दी लेखक जिस प्रकार की भाषा में पुस्तकें लिखते हैं, और शिक्षित पुरुष जिस हिन्दी में अपना पत्र-व्यवहार करते हैं, वैसी ही हिन्दी लिखने की हमें चेष्टा करनी चाहिये। और उसमें मुहाविरेदार संज्ञा, क्रिया, अव्यय, वाक्य व वाक्यांशों का प्रयोग करना चाहिये। अन्य भाषा के सहज प्रचलित शब्दों को छोड़ कर नये शब्द—जब तक पूर्ण आवश्यकता न हो—न लाने चाहियें। आजकल अङ्गरेज़ी पढ़े लिखे लोग बोल-चाल में अङ्गरेज़ी शब्दों की बड़ी भरमार करते हैं; ऐसी प्रथा हो चली है। यदि ऐसा ही हाल रहा तो हिन्दी पर विचित्र संकट आ पड़ेगा।

अपने विद्यार्थियों के मुँह से कभी ऐसे वाक्य सुनता हूं—"मेरी सिस्टर की शादी है, मेरे फ़ादर आये हैं; ग्रांड फ़ादर बीमार हैं; अभी इम्तिहान के फ़िफ़्टीन डेज़ हैं; सिलेक्सन होगा; मेरा टर्न है, मेरी ड्यूटी है।" कुछ लोग तो अंगरेज़ी के पूर्ण

---

नोट—यहां पर आदर्श के लिये कुछ कहावतों का प्रयोग दिखाया है। मेरी लोकोक्ति-संग्रह नामक पुस्तक में १००० कहावत मय अर्थ के दी हैं। रचना के अभ्यास में उनसे बहुत सहायता मिल सकती है। इसका तीसरा संस्करण छप गया है।

पंडित ऐसे हैं जो अपनी मातृभाषा में बोल भी नहीं सकते, परन्तु छोटे २ बच्चे और उनके सत्संग को सौभाग्य से प्राप्त हुआ समझने वाले अर्द्ध शिक्षित वा अशिक्षित उनका अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं।

आज सवेरे एक बाबू साहब नौकर से कह रहे थे—
"शायद नाइट ट्रेन से टुमारो स्टार्ट होजाऊं।"
हमारे एक संस्कृत के विद्वान् ने अंगरेज़ी स्कूल के छोटे से विद्यार्थी से पूछा "वहां के हैडमास्टर कैसे है?" उत्तर मिला "सिम्पिल।"

## रस

किसी वर्णन को पढ़ कर, सुन कर वा देख कर हमारे हृदय में एक विशेष भाव उत्पन्न होता है। उसे स्थाई-भाव कहते हैं-यह स्थाई-भाव विभाव, अनुभाव के आश्रय से रस बन जाता है (देखो अलकार-प्रबोध पृष्ठ १-८ तक) यह रस ९ प्रकार के हैं—
१-शृङ्गार—नायक नायिका के प्रेम-विषयक वर्णन में होता है।
२-वीर—दया, धर्म, दान, देशभक्ति और संग्राम में उत्साह-विषयक भाव के वर्णन में वीर रस होता है।
३-करुणा-प्रिय-वस्तु के वियोग और अप्रिय-वस्तु के संयोग में जो शोक होता है, उसे करुणा कहते हैं।
४-अद्भुत—आश्चर्य्यजनक विषय को देख कर, सुन कर, पढ कर जो आश्चर्य्य का भाव उत्पन्न हो उसे अद्भुतरस कहते हैं।
५-रौद्र-क्रोध उत्पन्न करने वाले रस को रौद्र रस कहते है।
६-भयानक-जिससे मन में भय हो उसे भयानक रस कहते हैं।
७-वीभत्स-जिसके द्वारा मन में घृणा उत्पन्न हो, वह वीभत्स रसहै।
८-हास्य-हँसी का भाव जहां पैदा हो वहां हास्य रस है।
९-शान्त—तत्त्व-ज्ञान आदि से मन में जहां शान्ति उत्पन्न हो, वहां शान्त रस होता है।

प्रायः हमारी रचना में इन्हीं रसों में से एक या कई रस होते हैं।

## गुण

रस को बढ़ाने वाले धर्म को गुण कहते हैं। यह ३ प्रकार है—माधुर्य्य, ओज और प्रासाद। माधुर्य्य—जिस रचना को सुन कर चित्त द्रवीभूत हो जाय उसे माधुर्य्य गुण कहते हैं। ओज-जिस रचना में चित्तमें उत्तेजना बढ़े वहां ओजगुण होताहै प्रासाद-जिस रचना को सुनते ही उसके अर्थ का भान हो जाय वहां प्रासाद गुण होता है।

## दोष

शब्दार्थ तथा रसादिक के अनुचित प्रयोग को दोष कहते हैं।

श्रुति-कटुता-कर्कश शब्दों का प्रयोग।

व्याकरण-दुष्टता-व्याकरण-विरुद्ध शब्दों का प्रयोग।

अप्रयुक्तता-अप्रचलित पदों का प्रयोग।

ग्राम्यता-प्रान्तिक व ग्रामीण शब्दों का प्रयोग।

दुरान्वय-आकांक्षा-युक्त पद ठीक स्थान पर न हों।

असमर्थता-शब्दों का बुरी तरह प्रयोग।

निरर्थकता-शब्दों का निरर्थक प्रयोग।

अश्लीलता-घृणित और लज्जाजनक बातों का प्रयोग।

क्लिष्टता-लम्बे २ सामासिक तथा अन्य कठिन शब्दों का प्रयोग।

प्रसिद्धविरुद्धता-आँखों को मृग, खंजन व कमल से उपमा देते हैं; यश श्वेत होता है; कुमुदको और चन्द्र-प्रणयनी आदि। जैसा कि कवि लोग वर्णन करते आये हैं; उसके विरुद्ध वर्णन करना प्रसिद्ध-विरुद्धता दोष है।

अयोग्यता-देश, काल, पात्र, अवस्था के प्रति दृष्टि न रख कर स्वेच्छा-पूर्वक वर्णन में 'अयोग्यता' दोष होता है।

अधिक-पदता—अनावश्यक पदों के प्रयोग में होता है।

# निबंध विचार

किसी भाषा के व्याकरण और मुहाविरे के अनुसार पद-योजना वा वाक्य-योजना को 'रचना' कहते हैं। और जब किसी मुख्य विषय को लेकर हम क्रमशः वाक्य और अनुच्छेदों ( पेराग्राफों ) द्वारा रचना करते है तो उसे ' निबंध-रचना ' कहते हैं। यह रचना दो प्रकार से होती है। एक वक्तृता से, दूसरी लेख द्वारा। इस पुस्तक में केवल 'लेखनी-बद्ध-रचना' पर ही विचार किया जाता है।

## रचना का उद्देश्य

यों तो प्रत्येक मनुष्य अपने भावों को टूटीफूटी वाक्य-योजना द्वारा प्रगट करता ही है, परन्तु पाठशालाओं में रचना के अभ्यास से यही अभिप्राय है, कि नये विचार उत्पन्न करना; भ्रमात्मक-विचारों को शुद्धकरना; सकीर्ण-विचारों को विस्तृत करना, निरीक्षण-शक्ति को वलवान वनाना, आवश्यकीय विचारों को संग्रह करना; संग्रहीत विचारों को सुरक्षित रखना; विना क्रम के विचारों को क्रमवद्ध करना, संक्षिप्त भाषा में कहे हुए विचारों को विस्तृत भाषा में लिखना, विस्तृत भाषा में लिखे हुए विचारों का संक्षिप्त लिखना, सारे निवंध के तात्पर्य्य को वात की वात में समझा देना, पद-योजना व्याकरण और मुहाविरे के अनुसार होना, आदि आदि वातों का पूरा अभ्यास हो जाय। जिससे मनुष्य विचारशील, दुराग्रह-रहित, लेखक वा वक्ता वन कर अपने देश, समाज और धर्म्म को कुछ लाभ पहुँचा सके।

## प्रारंभिक अभ्यास

रचना सिखाने के लिये प्रारंभ में वड़ी सावधानी की

आवश्यकता है । इस काम के लिये अध्यवसायी और योग्य शिक्षक चाहिये । रचना का अर्थ यह नहीं है कि किसी ऊंची श्रेणी में विद्यार्थी पहुंच जाँय, तो कोई ऐसी पुस्तक उन्हें बता दी जाय जिसमें निबंधों का संग्रह हो और उसी पुस्तक में लिखे हुए किसी विषय पर निबंध लिखने को कह दिया जाय । लड़के उसी पुस्तक के वाक्यों को ले कर उलटी सीधी बातें लिख दें और अध्यापक लाल पेन्सिल से कुछ चिन्ह बना कर हस्ताक्षर करदें । ऐसी प्रणाली से कुछ लाभ नहीं, वरन् स्कूल में आये हुए विद्यार्थी को बोलना सिखाना ही आरंभिक रचना है ।

इसके लियेः—

( १ ) पढ़े हुए पाठों को प्रश्नोत्तर द्वारा संक्षिप्त कराओ ।

( २ ) नये शब्दों को अनेक प्रकार के वाक्यों में प्रयोग कराओ ।

( ३ ) एक वाक्य के भाव को दूसरे वाक्य में कहलाओ ।

( ४ ) पदार्थ सम्बंधी पाठों में, पूरे वाक्यों में उत्तर लो ।

( ५ ) हर बात में उन्हें निरीक्षण, ध्यान और विचार करने का अवसर दो ॥

व्याकरण के पाठों से प्रारंभिक रचना में बहुत मदद मिलती है । जो कुछ परिभाषा निकलवाई जाय, औपयोगिक रीति पर; जो कुछ उत्तर लिये जायँ, पूरे वाक्यों में और प्रत्येक नियम की जांच के लिये वाक्य रचना कराई जाय ।

( १ ) कुछ चुने हुए संज्ञापदों का वाक्यों में प्रयोग कराओ।

( २ ) कुछ धातु,काल,अव्ययों का व्यवहार वाक्यों में पूछो।

( ३ ) कुछ सरल-वाक्यों से मिश्रित-वाक्य बनवाओ ।

( ४ ) मिश्रत-वाक्यों के भागों को बँटवाओ और जटिल वाक्य बनवाओ ।

( ५ ) उपसर्ग और प्रत्यय द्वारा बने शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाओ और उन उपसर्ग और प्रत्ययों से अन्य नये शब्द बनवाओ।

( ६ ) इसके पीछे शब्द और वाक्यों के प्रकरणों के अनुसार पद-योजना और वाक्य-रचना का अच्छा अभ्यास हो।

## लिखित वाक्य रचना

जब लड़के पढ़ना लिखना सीख ले और कुछ व्याकरण के नियमों का ज्ञान हो जावे, तब उन्हे लिखित वाक्य-रचना सिखानी चाहिये।

पहले अध्यापक कोई कहानी या इबारत चुने। उसमें जितने कठिन शब्द और मुहाविरे आवें, वाक्यों में उनको प्रयोग करके पटा पर लिख दे। और लड़कों से अर्थ पूछे, न बताने पर स्वयं बता दे।

फिर लड़के अपनी २ कापियों पर ऐसी वाक्य-रचना करें जिसमें उन कठिन शब्द और मुहाविरों का प्रयोग हो।

अध्यापक घूम फिर कर हरएक विद्यार्थी की रचना देखता रहे। यदि किसी लड़के का वाक्य वेमुहाविरे हो, उससे वाक्यार्थ पूछ कर उसको ठीक करावे। जब शब्दों, मुहाविरों और कहावतों का अर्थ तथा प्रयोग विद्यार्थी समझ जाँय तब रोचक रीति पर उन को कहानी सुनावे। पूरा होने पर कुल कहानी हरएक लड़के से कहलवावे। शेष लड़के देखते रहे कि कहानी का क्रम ठीक है या नहीं: उसका कोई भाग तो नहीं छूट गया; मुहाविरा, व्याकरण तथा उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां तो नहीं की हैं।

अन्त मे कहानी का सारांश प्रश्नोत्तर द्वारा निकलवाया जाय। जब इस प्रकार का अभ्यास होजाय तो, आगे चलना चाहिये। याद रहे कि एक समय में एकही कठिनाई उपस्थित

देख कर, सूंघ कर, सुन कर, छू कर, चख कर, उसके विषय में अन्वेषण करो, तब कहीं क़लम उठाने का साहस करो।

## प्रबंधभेद।

यों तो विषय भेद से प्रत्येक निबंध एक दूसरे से पृथक् ही होता है, परन्तु सामान्यतः वर्णनात्मक, कथात्मक, व्याख्यात्मक और आलोचनात्मक चार प्रकार के मोटे भेद हैं।

---

### वर्णनात्मक।

किसी वस्तु का सामान्यरूप में वर्णन करना जिसे कि आंखों से देखा है वा सुना है, अथवा और किसी रीति से जाना है; जैसेः—कि ताजमहल, नीम का पेड़, घोड़ा, लोहा, आगरे का क़िला, झांसी का रेलवे स्टेशन, जनकपुर की शोभा, सीता जी की सुन्दरता, प्रयाग की प्रदर्शिनी, यमुना की छटा, आगरे का विक्टोरिया पार्क।

---

### कथात्मक।

जिसमें किसी ऐतिहासिक वा सामयिक, पौराणिक अथवा किसी काल्पनिक-जीवनचरित्र का वर्णन हो, जैसेः-हरिश्चन्द्र, शिवाजी, महात्मा गांधी, हक़ीक़त वा एक धर्मवीर।

अथवा किसी ऐतिहासिक, पौराणिक, सामयिक तथा काल्पनिक घटना का वर्णन हो: जैसेः—हरिश्चन्द्र का काशी में बिकना, प्लासी का युद्धक्षेत्र. १९१२ का देहली दरबार, विसूवियस का भभकना, टूंडला में ट्रेनों की टक्कर, सं० १९५८ का अकाल। उपाख्यान-जैसेः-पंचतंत्र की कहानी, राजा भोज का सपना।

यदि घटना और चरित्र इतिहास से सम्बन्ध रखते हैं तो उन निबन्धों को ऐतिहासिक निबंध भी कह सकते हैं। किन्तु काल्पनिक घटना और चरित्रों के लिये इतिहास में स्थान नहीं मिलता, इसलिये ही घटनात्मक और चरित्रात्मक निबन्धों का भेद कर दिया गया है। इतिहास में घटना,

चरित्र और वर्णन तीनों का समावेश होता है।

---

व्याख्यात्मक।

किसी अमूर्त विषय जैसेः—चिन्ता, आशा, क्रोध, धैर्य्य, दया आदि की व्याख्या की जाती है। वर्णनात्मक-निबंध एक व्यक्ति के विषय में होता है; जैसेः—"आंधी चलना" यह व्याख्यात्मक है और "१२ जून की आंधी" वर्णनात्मक है। 'भूचाल आना' व्याख्यात्मक है। 'कल का भूचाल' वर्णनात्मक है। 'बाग लगाना' व्याख्यात्मक है और 'रामसहाय का बाग' वर्णनात्मक है।

वैज्ञानिक-प्रबंध इसी भाग में आजाते हैं। इन प्रबंधो में कल्पना और विचार को अधिक काम करना पड़ता है। किसी 'कहावत' तथा मूलसूत्र की व्याख्या पर जो लेख हों, वह इसी विभाग में होते हैं।

---

आलोचनात्मक।

सद्-असद्-विवेकिनी बुद्धि तथा युक्ति ( तर्क ) द्वारा सत्यासत्य का निर्णय, अच्छे बुरे का निर्णय, अनुकूल और प्रतिकूल सम्मतियों का निर्णय, सार असार का निर्णय जिन लेखों में किया जाय, वह आलोचनात्मक, वा विवेचनात्मक अथवा तार्किक-प्रबंध कहलाते हैं। किसी ऐतिहासिक-घटना को तर्क पर तोल कर उसके सत्यासत्य का निर्णय इसी भेद में आजाता है। मनुष्य की खुराक क्या है? रामायण से क्या लाभ है? विवाह कब होना चाहिये? मरना ही जीना है! सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? गांव में रहना अच्छा है या शहर में। दो विरुद्ध विचारों तथा मिलते जुलते विचारों की तुलना भी इसी विभाग में होती है: जैसे स्वतंत्रता और स्वेच्छाचार वा स्वतन्त्रता और परतंत्रता आदि। यदि ये निबंध तर्क पर न तोले

जाँय केवल व्याख्या ही रहे, तो वह व्याख्यात्मक ही कहलाएगे।

मिश्रण

यह पृथक् २ भेद बतलाए गये हैं; किन्तु आप बड़े लेखकों के लेखों में दो, तीन, चार या सम्पूर्ण भेदों का मिश्रण देखेंगे।

## प्रबन्ध का ढांचा।

किसी प्रकार का प्रबन्ध लिखना हो, तो, लिखने से पहिले उसे उचित भागों मे बाँट लेना चाहिये। इस प्रकार विषय को बांटने से बड़े २ लेखकों को भी बड़ी सुविधा हो जाती है; पर नौसिखिया लेखक तो इसके बिना ठीक लिख ही नही सकते। ऐसा करने से लेखक सीमा के भीतर रहेगा और विषय के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर प्रकाश डाल सकेगा। ठीक समय के भीतर उचित पंक्ति और पृष्ठों में निबन्ध को पूरा कर देगा और क्रम भी ठीक बैठ जायगा। लिखने से प्रथम लेख के विषय पर गहरी दृष्टि डाल कर उसके सम्बन्ध में जितनी बातें ध्यान में आवें, एक कागज़ पर नोट करलो और ठीक सिलसिले मे जमाकर क्रम बांधलो। किसी वस्तु के सम्बन्ध में मोटे मोटे तीन शीर्षक हो सकते है, दिखावट, गुण और उपयोग। जीव पर लिखना हो तो, किस प्रकार का जीव है, उसका आकार और गठन, स्वभाव और भोजन, कहां पाया जाता है और उसका उपयोग। धीरज पर लिखना है तो, धीरज क्या है? किनमें होता है? धीरज का महत्त्व, यह गुण अभ्यास से बढ़ सकता है। किसी के चरित्र के विभाग उसकी चरित्र की विशेषता के अनुसार पृथक् पृथक् हो सकते हैं; पर मोटी रीति से, जन्म, काल और मातापिता, बाल्यावस्था (पालन, पोषण और शिक्षा), जीवन की मुख्य २ घटनाएं और मृत्यु।

## विषय का प्रारंभ ।

जब तुम्हारे प्रबन्ध की सूची बन जाय तो देखो कि कितने समय और कितने स्थान में प्रबन्ध लिखना है । मान लिया एक घण्टे में लेख समाप्त करना है; उसमें से १५ मिनिट तो सोचने और ढांचे को लिये गये, रहे ४५ मिनिट, उनको तुम्हारे प्रबन्ध के ५ उपशीर्षक हैं—उन पर बांटा, तो प्रत्येक शीर्षक को ९ मिनिट मिले। अतः सामान्यतः एक शीर्षक ९ मिनिट में समाप्त होना चाहिये। उपशीर्षक के छोटे बड़े होने के अनुसार समय भी कम बढ़ हो सकता है। रही स्थान की बात, मान लिया कि ५० पंक्ति में लेख पूरा करना है, एक शीर्षक में सामान्यतः १० पंक्ति होनी चाहियें। उपशीर्षक के छोटे बड़े होने के अनुसार एक उपशीर्षक न्यूनाधिक पंक्तियों मे लिखा जा सकता है। इन सब बातों पर विचार करके लिखना आरम्भ करो । आरम्भ करने का कोई मुख्य नियम नही है। विभिन्न लेखक एक ही लेख को विभिन्न प्रकार से आरम्भ करते हे । कोई विषय की भूमिका बांधकर, कोई परिभाषा कह कर, कोई किसी कहावत या कविवाक्य को कह कर, कोई विषय का सार कह कर कोई घटना का मध्य पकड़ कर लेख आरम्भ कर देते हैं।

## विस्तार ।

आरम्भ करने के पीछे सूची के प्रत्येक उपशीर्षक को लक्ष करके वाक्य समूह या अनुच्छेद ( पैराग्राफ़ ) की रचना होनी चाहिये। एक वाक्य-समूह के वाक्यों में पारस्परिक और आनुपूर्व सम्बन्ध होना चाहिये। एक वाक्य-समूह में वर्णित भावों के लघुत्व गुरुत्व के अनुसार अनुच्छेद छोटा और बड़ा होता है। भाव-गुरुत्व के कारण कभी २ एक भाव, एक से

अधिक अनुच्छेदों में लिखा जाता है । इसी प्रकार सूची के हरएक उपशीर्षक पर अनुच्छेद रचना करो और जिस प्रकार एक अनुच्छेद के सब वाक्यों में पारस्परिक-आनुपूर्व-सम्बन्ध होता है, उसी भांति एक विषय के सब अनुच्छेदों में पारस्परिक-आनुपूर्व-सम्बन्ध होता है । किसी भाव की पुष्टि में कोई कहावत, किसी कवि का वचन अथवा कोई उदाहरण लिखना उचित हो, लिख देना चाहिये। परन्तु उदाहरण संक्षिप्त हो और विषय से पूरा सम्बन्ध रखता हो ।

## समाप्ति

समाप्त होने पर उसे योंही एकदम मत छोड़ दो। संक्षेप में या तो अपने निबन्ध का सार कह दो, या कोई शिक्षा मिलती हो, वह दिखा दो, या कोई उससे अप्रत्यक्ष-परिणाम झलकता हो, स्पष्ट करदो और एक बार फिर पढ़ जाओ। जहां २ पर विरामादि चिन्ह छूट गये हों अथवा कोई व्याकरण और मुहाविरे की भूल हो गई हो, ठीक करलो।

---

## विरामचिन्ह

वाक्य और अनुच्छेदों में जहां पर आवश्यकताहो, विराम-चिन्हों का प्रयोग अवश्य करना चाहिये । इससे अर्थ समझने में बड़ी सुविधा होती है। पूर्ण विवरण तो मेरी "चिन्हविचार* पुस्तक में मिलेगा । पर मोटे २ चिन्हों का नाम यहां देते हैं।

पाद विराम ( , ) जहां पर भिन्न २ पद वा वाक्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो, वा सामासिक-पदों में तथा जटिल-वाक्यों का जहां मुख्य अंश समाप्त हो, वहां पादविराम लगाते हैं।

*चिन्हों के पूरे विवरण के लिये मेरी चिन्ह-विचार पुस्तक देखो जो यू० पी० की टैक्स्टबुक कमेटी द्वारा स्वीकृत है।

अर्द्ध विराम (;) जहां वाक्यों में कुछ दूर का सम्बन्ध हो।
न्यूनविराम ( . ) जहां एक वाक्य का बहुत बड़ा भाग समाप्त होता हो।
विराम (।) जहां पर वाक्य पूरा हो।
विस्मयादि-बोधक ( ! ) जहां आश्चर्य्य, घृणा, दुःख आदि कोई आन्तरिक भाव प्रकाशित हो।
प्रश्न-वाचक ( ? ) जहां किसी से प्रश्न किया जाय।
सम्बोधन ( , ! ) सामान्य सम्बोधनों में पाद-विराम और जब सम्बोधन के साथ २ दुःख, आश्चर्य और घृणा आदि का भाव प्रकट होता हो, तो विस्मयादिबोधक-चिन्ह लगाते हैं।

## वर्णक प्रबंध।

आदर्शक्रम।

शहद

**प्रबन्ध की सूची:-**

क्या है? कैसे इकट्ठा होता है? स्वाद; रंग; कहां मिलता है? गुण और उपयोग।

**सूचीका विकास:-**

अ-फूलोंका रस जिसे मधु-मक्खी इकट्ठा करती हैं, शहद कहलाता है। मक्खियां फूलों पर बैठकर रस को चूँस लेती हैं फिर अपने छत्तों में जमा करती रहती हैं। जब बहुतसा शहद जमा हो जाता है, तो बहेलिया अथवा और कोई मनुष्य छत्ते को तोड़ कर उसमें से शहद निचोड़ लेता है।

ब-मक्खियां, झाड़ी, पेड़ की खोतर, डाली तथा घरों में कहीं अपना छत्ता रखती हैं।

स-शहद लाल रंग का बहने वाला लसदार पदार्थ है। ठंड से जम जाता है। स्वाद मीठा होता है।

द—लोग दूध या पानी में डाल कर पीते हैं। औषधि के साथ खाया जाता है।

---

## चांदी

**प्रबंध का सार:—**

१ प्रकार—खनिज-पदार्थ।

२ दिखावट—सफ़ेद, चमकीली धातु है।

३ गुण—खिचने वाली, कुटने वाली, भारी, नरम, गलने वाली, अपारदर्शी है।

४ उपयोग—सिक्के, बर्त्तन बनते तथा इसकी भस्म को वैद्य दवा के काम में लाते हैं। इसके वर्क़ भी दवाई में काम आते हैं।

**प्रबंध का विस्तार:—**

चांदी एक प्रकार की धातु है जो, मिट्टी तथा दूसरी धातुओं के साथ मिली हुई, खान से निकाली जाती है। यन्त्रों द्वारा इसे शुद्ध करते हैं।

कच्ची चांदी का रंग मटमैला होता है; यन्त्रों और अग्नि के प्रयोग से शुद्ध कर लेते हैं, तो इसका रंग बहुत स्वच्छ, सफ़ेद और चमकीला निकल आता है।

पहिले कारीगर शुद्ध चांदी की सलाई बना लेते हैं, फिर मज़बूत धातु के छेदों में डाल कर उसका तार खींचते हैं। पहिले बड़े छिद्र में, फिर छोटे छिद्र में, फिर उस से भी छोटे छिद्र में डाल कर खींचने से बहुत ही पतला तार बन जाता है।

कूटने से चांदी टूटती नहीं है वरन् फैलती जाती है। यहां तक कि कूटते कूटते बहुत ही हलके वर्क़ बन जाते हैं। पानी की अपेक्षा यह धातु बहुत भारी होती है, तभी पानी में छोड़ते ही

झुक जाती है। इसको बहुत मोटी सलाई को हाथ से नवा लेते हैं; किन्तु लोहे का कडा हाथ से नहीं नवता।

तांबे को मिला कर के एक लम्बी सलाख़ बनाते है, उससे छोटे २ टुकड़े काट कर यन्त्र की सहायता से सिक्के बनाते हैं। वैद्यलोग अन्य औषधियों के सहारे से इसकी भस्म बना कर दवाओं में देते हैं। गहने और बर्तन बनाए जाते हैं।

इसी प्रकार तांबा, सोना, रांगा, पारा आदि धातुओं पर लेख लिख सकते हैं।

## ताजमहल

**सारः—**

क्या है? कहां है? विस्तार, बनावट; उसका सौंदर्य्य।

**विस्तारः—**

युक्तप्रदेश का आगरा एक प्रसिद्ध नगर है। यह जमुना नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। आगरा फ़ोर्ट स्टेशन से दो मील पूर्व एक भव्य इमारत बनी हुई है। लोग इसे ताजमहल कहते हैं।

जमुना जी के किनारे एक मील लम्बे घेरे में यह स्थान बना हुआ है। बाहर लाल पत्थर का कोट है। आगरा फ़ोर्ट से मेकडालन पार्क में होकर जाते हैं, तो पहिले एक विशाल दरवाज़ा पड़ता है। दरवाज़े पर कुछ दूकाने हैं, जिनमें संगमरमर वा दूसरे सफ़ेद पत्थर तथा सेलखड़ी के बने हुए ताजमहल के नमूने, तश्तरी तथा अन्य चीज़ें मिलती हैं। दरवाज़े के भीतर जाते हुए दोनों ओर कुछ दूकान बनी हैं। शायद, यहां कभी बाज़ार लगता होगा! यह ताजमहल का बाहरी घेरा है। ऐसा ही एक दरवाज़ा दूसरी ओर भी है। घेरे के भीतर पहुँचते ही ताजमहल का मुख्य दरवाजा दृष्टि आता है, जिस पर कुरान की आयतें बड़ी कारीगरी से जड़ी हुई हैं। दरवाज़े के

भीतर जाते ही, सामने सुन्दर भवन दृष्टि आता है; जिसकी अद्भुत-छटा देख कर मन में बडा आनन्द होता है। दरवाज़े से नीचे उतरते ही महल तक फव्वारों की १ फ़र्लांग से अधिक क़तार लगी हुई है। बीच में एक संगमरमर का चबूतरा है। इसके ऊपर एक छोटासा तालाब है, जिसमें रंग-बिरंगी मछलियां तैरती रहती हैं। चारों ओर रंग-बिरगे पुष्पों की क्यारियां लगी हुई हैं। हरी घास का मखमली फ़र्श बिछा हुआ है। सुपारी, इलाइची आदि के बड़े २ वृक्ष हैं। साथ ही अशोक-वृक्ष बड़े सुहावने मालूम होते हैं।

जमुना के ठीक तट पर एक विस्तृत चबूतरा है, इसके चारों किनारों पर चार ऊंची ऊँची मीनारे हैं। इसके बीचों बीच एक सगमर्मर का विशाल-भवन बना हुआ है। इसमें प्रवेश करते हुए शाहजहां और उसकी बीवी की नक़ली क़बरें नज़र आती हैं, जिनपर बहुत ही बढ़िया पत्थर का जड़ाऊ काम हो रहा है। ज़रा २ से फूलों में ३०-३० से भी अधिक पत्थर के टुकड़े जड़े हुए हैं। एक अंगुल स्थान भी बेल बूँटों से ख़ाली नहीं है। इन नक़ली क़बरों के ठीक नीचे ही शाहजहां और उसकी बीवी की असली क़बरें हैं। यहां बड़ा अंधकार रहता है। मोमबत्ती या लालटैन के सहारे से यहां का शान्त और अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। इन क़बरों पर भी जड़ाऊ बेल-बूटे बने हैं, जो अनेक रग के क़ीमती पत्थरों से बनाए गए हैं। इमारत की बाहरी ओर संगमर्मर पर काले पत्थर के टुकडे जडे हुए हैं, उन पर जब चन्द्रमा का प्रकाश पड़ता है, तो तारों की भांति चमकने लगते हैं। इसके ठीक नीचे ही जमुना जी बहतीहुई दिखाई देती हैं। इसे शाहजहां ने अपने जीवन-काल में ही अपनी स्त्री मुमताज़-महल के लिये बनवाया था। मरने के पीछे शाहजहां की समाधि भी यहीं बनाई गई।

कुछ सूची

## आगरे का फ़ोर्ट स्टेशन।

स्थान, प्लेटफौर्म, ट्रेनों के आने जाने का समय, कहां २ को लोग सवार होते हैं। विशेष विवरण।

## पक्षी विशेष के लिये

१—नसल।

२—कहां पाया जाता है?

३ - रंग।

४—स्वभाव। ५—भोजन।

६—लाभ।

७—आयु।

८—विशेष विवरण।

## किसी देश के निवासी पर।

१—नसल।

२—आकार और गठन।

३—भोजन।

४—रीति रिवाज और धर्म।

५—सामाजिक-स्थिति और शिक्षा।

६—जीवन-निर्वाह का ढग।

७—उनकी सभ्यता पर विदेशी सभ्यता का प्रभाव।

८—विशेष विवरण।

## मथुरा का विश्रान्त घाट।

(१) बनावट

(२) यात्रियों का स्नान

(३) सायंकाल की आरती

(४) उस समय यमुना का दृश्य

यदि किसी स्थान विशेष पर निबन्ध लिखना हो तो यह शीर्षक होंगे।

१—उस स्थान का नाम और स्थिति, ऐतिहासिक वर्णन।

२—जलवायु और आस पास की पैदावारी।

३—आकार, विस्तार, बड़ी २ सड़कें, जन-संख्या।

४—प्रबन्ध—शासन और न्याय।

५—शिक्षा का प्रबन्ध।

६—व्यापार और शिल्प।

७—ऐतिहासिक व सामयिक दर्शनीय वस्तुएँ।

## आगरा।

१—यह नगर युक्त-प्रदेश में यमुना नदी के किनारे पर बसा हुआ है। पुराने समय में इसे अर्गलपुर कहते थे, मगर अकबर बादशाह ने इसका नाम अकबराबाद रक्खा। हिन्दू-राजत्व-काल का अधिक हाल नहीं मिलता। परन्तु अकबर ने दिल्ली छोड़ कर आगरे को अपनी राजधानी बनाया और जमुना के किनारे लालपत्थर का एक बडा और दृढ क़िला बनवाया। तब से शाहजहाँ के राज्य-काल तक आगरा मुग़लों की राजधानी रहा।

२—यहां की जलवायु गर्म और खुश्क है। जमुना के खादर को छोड़ कर आस पास की शेष भूमि चौरस और उपजाऊ है, जो उत्तर की ओर गंगा की नहरों से और पश्चिम व दक्षिण की ओर जमुना की नहरों से सींची जाती है।

३—यह नगर १२ कोस के बीच में बसा हुआ है, जिसके चारों कोनों पर ४ महादेव के मन्दिर बने हुए हैं। कुछ टोले अलग २ बसे हुए हैं; परन्तु बीच में बहुत घनी बस्ती है। एक मुहल्ले से दूसरे तक सड़कें बनी हुई हैं। ठंडी सड़क बहुत चौड़ी है; जिसपर सायंकाल को लोग वायुसेवन के लिये घूमा करते हैं।

इसके अतिरिक्त सिटी और मेकडानल पार्कों से भी बहुत आराम मिलता है । यहां की जन-संख्या एक लाख पचासी हज़ार के समीप है ।

४—कुल शहर का प्रबन्ध एक म्युनिसिपैलेटी के अधिकार में है। रोगियों के लिये कई औषधालय और चिकित्सालय बने हुए हैं। पानी के लिये यमुना से जल-कलों का प्रबन्ध किया गया है। प्रकाश के लिये जगह २ पर गैस तथा सामान्य लेम्पों के खम्भे लगे हुए हैं। भीतरी-प्रबन्ध पुलिस के अधिकार में है, जो मजिस्ट्रेट की आज्ञानुसार अपना कार्य सम्पादन करती है। न्याय के लिये दीवानी व फ़ौजदारी की अदालतें हैं।

५—जगह २ पर प्रारम्भिक-शिक्षा के लिये पाठशालाएँ बनी हुई हैं। अनेक हाई स्कूल, कालेज तथा छात्र-निवास बने हुए हैं, जिनमें बाहर के विद्यार्थी भी आकर शिक्षा पाते और रहते हैं। आगरा कालेज युक्तप्रदेश का सब से पहला कालेज है। इसके अतिरिक्त सेन्ट जोन्स और सेन्ट पीटर्स कालेज भी हैं। स्कूलों में गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, सेन्ट जोन्स हाई स्कूल, राजपूत हाई स्कूल, विक्टोरिया हाई स्कूल, गर्ल्स हाई स्कूल, ब्राह्मण स्कूल, दयानन्द स्कूल, खत्री स्कूल; मेडिकल स्कूल, और बहुतसी पाठशालाएँ हैं।

६—आगरे में "जी.आई.पी." "ई.आई.आर" "बी.बी.एण्ड. सी.आई.आर."और "आर.एम.आर." रेलवे द्वारा चारों ओर से माल आता और जाता है । इस से पहले जमुना के द्वारा नावों पर व्यापार होता था। लाल पत्थर वा संगमरमर की बनी चीज़े बहुत दूर तक जाती हैं । दरी व गलीचे बहुत अच्छे बनते हैं।

७—बादशाही समय की इमारतों में ताजबीबी का रौज़ा,

अकबर बादशाह की क़बर, क़िला, एतमादुद्दौला व जुम्मा मसजिद तथा आगरे से १२ कोस पश्चिम फ़तहपुर-सीकरी के महल देखने योग्य हैं।

८-मेकडानल पार्क में महारानी विक्टोरिया का स्मारक देखने योग्य है। यहां का अस्पताल बहुत बड़ा है। पागलखाना भीहै। आगरे का क़िलाफ़ोर्ट, अकबर का बनाया हुआ देखने योग्य है।

## जानवर

(१) आकार और उसका गठन। (२) स्वभाव और भोजन। (३) व्यवहार और लाभ। (४) कोई विशेष बात।

## घोड़ा

घोडा बिना सींग का चार पैर वाला जीव है, जो अपने बच्चे को दूध पिलाता है। यह देखने में बड़ा सुन्दर होता है। इसका शरीर दृढ़ और गठीला होता है। शरीर पर छोटे २ चमकदार बाल होते हैं। बड़ा घोड़ा, खुम के नीचे से लेकर अयालों तक, प्राय: ५ फ़ीट के समीप ऊंचा और कानों के बीच से लेकर पूँछ की जड़ तक ७ फ़ीट लम्बा होता है। छोटे घोडे को टट्टू कहते हैं।

घोड़े के कान तेज़ और आंखें बड़ी तथा दृष्टि प्रबल होती है।

नथुने खुले हुए निरे मांस के बने होते हैं, इसमें हड्डी नाम को भी नहीं होती, सूँघने की शक्ति बड़ी प्रबल और टाँगे दृढ़ होती हैं। खुर चिरे हुए नहीं होते।

२-घोडा बड़ा मिलनसार होता है। जंगल के घोड़े टोल बांध कर रहते हैं। पालतू-दशा में और जानवरों से स्नेह कर लेते हैं। इनकी स्मरणशक्ति बडी प्रबल होती है। अपने रक्षक और स्थान को कभी नहीं भूलते। यह बड़े स्वामिभक्त

और बुद्धिमान होते हैं; इसके बहुत प्रमाण उपस्थित हैं। महाराना प्रताप के चेतक घोड़े ने अपने स्वामी के बचाने के लिये प्राण तक दे दिये थे।

यह केवल घास, जौ, चने आदि का भूसा तथा चना, जौ और मोठ आदि का दाना खाता है। इसके होंठ इतने लचकदार होते हैं कि छोटी से छोटी घास को धरती से पकड़ कर कतर लेता है।

३-जीवित घोड़ा सवारी के काम में आता है, गाड़ी और इक्कों में जोता जाता है। कहीं२ घोड़ों से हल भी चलाये जाते हैं। मृत्यु के पश्चात् इसका प्रत्येक भाग काम में आता है। बालों को गद्दी तकियों में भरते हैं और ब्रुश बनाये जाते हैं। खाल से जूतों के तले और घोड़ों का सामान तथा रगों और पुट्ठों से सरेस बनाते हैं। हड्डियों से चाकुओं के बेंटे, खुरों से बटन और डिबिया आदि बनाते हैं।

---

## वृक्ष

यदि किसी वृक्ष पर निबन्ध लिखना हो, तो:—

१-उसकी ऊंचाई और फैलाव।

२-कहां पाया जाता है।

३-उसकी जड़, पेड़ी, डाली, पत्ते फूल, और फल का वर्णन।

४ उपयोग और लाभ।

५-कितनी आयु होती है।

६-यदि कोई विशेषता हो, तो।

## नीमका वृक्ष

१-नीम का पेड़ चालीस फ़ीट के समीप ऊचा होता है। इसकी पत्तियां बड़ी ही सघन और छाया बहुत ही शीतल होती है। इसलिये गर्मी के दिनों में गांव के मनुष्य नीम

पूरा आनन्द लेना है तो रेल से उतर कर एक या दो पक्ष उन्हीं पर्वतों में रहकर काटना चाहिये और पर्वत के भिन्न२ स्थानों में भ्रमण कर, नेत्रों को तृप्त करना चाहिये। इस काम के लिये इगतपुरी स्टेशन पर रेल से उतरना सब से अच्छा होगा। इगतपुरी से कुलसीवाई जो दक्षिण में सब से ऊंचा स्थान है, पास पड़ता है। और उसी के समीप ऐसी कई एक छोटी पर्वत शाखाएं हैं, जोकि सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं। पास ही कई मरहटों के बनवाये किले हैं, जोकि अब टूटे पडे हैं। यहां पर यात्री विश्राम कर सकते हैं। इन पर्वतों के चारों तरफ नीची ज़मीन दिखाई देती है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह पर्वत पहले एक द्वीप—समुद्र से घिरा हुआ-रहा होगा। इन पर्वतों पर, अरब समुद्र से आई हुई ठंडी हवा बहुत ही अच्छी मालूम होती है और पर्वत पर चढ़ने की थकावट को दूर करती है। ऐसे स्थान पर स्वच्छ-वायु का सेवन करना स्वास्थ्य के लिये दुनियां भर की सब दवाइयों से अधिक लाभदायक है।

---

# कथात्मक निबंध ।

## जीवन सूची

प्रत्येक जीवनचरित्रों की सूची एकसी नहीं बन सकती है, उनकी-चरित्रों की-विशेषता के अनुसार सूची भी विशेष प्रकार की होगी, जैसे इस पुस्तक में दिये हुए चरित्र से महात्मा गोखले और अशोक की सूचीः—

| म० गोखले | अशोक |
|---|---|
| १-जन्म और शिक्षा । | १-बालकाल । |
| २-कार्यक्षेत्र में प्रवेश । | २-स्वभाव । |
| ३-सार्वजनिक सेवा । | ३-राज प्राप्ति । |
| ४-विलायत यात्रा । | ४-मानसिक भावों का परिवर्त्तन। |
| ५-भारत-सेवक-समिति । | ५-उसके धार्मिक-प्रयत्न । |
| ६-मृत्यु । | ६-उसके शिलालेख । |
| ७-उत्तराधिकारी । | ७-उत्तराधिकारी |
| ८-फल । | |

---

## हरिश्चन्द्र

१-जन्म और कुल ।
२-स्वप्न ।
३-राज्य-त्याग ।
४-काशी प्रवेश ।
५-राजा, रानी व पुत्र का विकना ।
६-विश्वामित्र की क्रूरता ।
७-राजा का मरघट वास ।
८-पुत्र की मृत्यु ।
९-राजा का कफ़न मांगना ।
१०-भगवान् का प्रगट होना ।
११-उपसंहार ।

घटना और उपाख्यानों की सूची भी उनकी विशेषता के अनुसार तैयार होती है ।

हरिश्चन्द्र के चरित्र की मुख्य घटना; जैसे-काशी में रोहिताश्व की मृत्यु.—

६–पश्चिमी रणक्षेत्र।
७–टर्की पर जर्मन जादू।
८–पूर्वी आफ्रिका में गड़बड़।
९–अमेरिका की अवस्था।
१०–बालकन युद्ध-क्षेत्र।
११–जर्मनी का शान्ति का प्रयत्न और धमकी।
१२–मित्रों का उत्तर।
१३–भारत में युद्धऋण और नई भरती।
१४–रूस की दुर्दशा।
१५–अमेरिका की युद्ध घोषणा।
१६–हवाई और समुद्री हलचल।
१७–शान्ति किस प्रकार हो।

---

# भगिनी निवेदिता।

## पूर्व कथन

भगिनी निवेदिता आयर्लैंएड निवासी एक पादरी की कन्या थीं। घर में इनका नाम 'मार्गरेट नोबुल' था।

माता पिता के साधु व्यवहार से बालिका नोबुल के हृदय में परोपकार का भाव उदय हो गया।

एक दिन नोबुल के पिता ने घर पर एक भारतीय अतिथि को ठहराया। यह होनहार बालिका अतिथि के द्वारा भारत का वर्णन सुन कर, उसे देखने को उत्सुक हुई। साधु ने कहा कि यह "बालिका भारत की सेवा में अपना जीवन बितावेगी।" मरते समय बालिका के पिता ने अपनी स्त्री से कहा कि यदि नोबुल भारत को जाना चाहे तो उसे सहायता देना।

## शिक्षा

इसके माता पिता बड़े चतुर और विद्वान् थे। उन्होंने लड़की को थोड़े ही समय में लिखा पढ़ा कर, चतुर कर दिया। वह पढ़ कर स्वजाति में विद्या-प्रचार के लिये उद्योग करने लगी।

## भारत यात्रा

जिन दिनों स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में व्याख्यान देते थे, कुमारी नोबुल ने भी भारत के सम्बन्ध में उनसे बहुत कुछ सुना समझा। जन्म भर सेवा करने का निश्चय करके वह भारत को रवाना हुईं। यहां पर इनका नाम भगिनी निवेदिता हुआ।

## कार्यारम्भ

जब इन्होंने यहां की स्त्रियों की दुर्दशा देखी तो, हृदय में गहरी चोट लगी और जीवनपर्यंत उनकी दशा सुधारने का सकल्प किया। कलकत्ते के एक मुहल्ले में किराये पर मकान लेकर उसी में एक हिन्दू महिला की भांति रहने लगीं। पहले यहां की कूप-मंडूक हिन्दू-समाज ने इन से घृणा की, पर जब इनका पवित्र आचार विचार देखा, तब धीरे २ इन पर श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न हुआ।

जिस मुहल्ले में निवेदिता ठहरी थीं, बड़ा गंदा रहता था; मोरियां, नालियां, सडायँद से भरी रहती थीं। इन्हों ने मुहल्ले वालों से सफ़ाई रखने को कहा। उन्हों ने कह दिया कि, हम भगी नहीं है जो गलियां साफ़ करते फिरें। भगिनी ने स्वय झाड़ू और पानी लेकर मोरियां साफ़ करना आरम्भ किया और सब को सफ़ाई के लाभ समझाये। यह उदाहरण देख कर सब लोग सफ़ाई की ओर झुके और मुहल्ला साफ़ रहने लगा।

## सेवा समिति

हमारे देश की स्त्रियों की तो दशा ही और है। उनके जीवन का अमूल्य समय, "मैं-मैं तू-तू" ही में व्यतीत होता है। प्लेग के दिनों में भगिनी निवेदिता ने मुहल्ले की सफ़ाई रखने में लोगों की बड़ी मदद की। अपने हाथ से रोगियों की सेवा की। युवकों के साथ मिल कर इसी काम के लिये एक मंडली बनाई, जिसने प्राणों पर खेल कर उस समय अच्छा काम किया।

## अकाल पीड़ितों को सहायता

सन् १९०७ में बाक़रगंज में एक घोर अकाल पड़ा। देश-भक्त लोगों के साथ मिल कर वहां के अनाथ और दुखियों को बहुत सहायता दी। उनके लिये घर घर भीख मांगी और अन्न-दान दिया। अन्य प्रकार की सेवा-सुश्रूषा करके उनकी प्राण रक्षा की। इस काम में इनको बड़े २ कष्ट भुगतने पड़े, परन्तु उनकी ज़रा भी परवाह नहीं की।

## विधवाश्रम

बङ्गाली विधवाओं के दुःखों को देख कर इनके हृदय में भारी ठेस लगी। उनकी सहायता के लिये एक आश्रम बनाया। एक पाठशाला खोली, जिसमें छोटे २ बालकों को किण्डर गार्टन से शिक्षा देने लगी।

## गुण और स्वभाव

आप बड़ी सुलेखिका थीं। व्याख्यान देने की शक्ति भी अच्छी थी। स्त्रियों के साथ उनके पतियों का असभ्य बर्ताव देख कर उन्हें बहुत क्लेश होता था। लोगों को समझाया कि स्त्री, पुरुष के जीवन की एक सहायक है न कि

दासी । स्त्रियों को भी विदुषी बना कर पुरुषों की सहायता करने के लिये प्रोत्साहित किया।

अहंकार इनको छू तक नही गया था । आप भक्ति और प्रेम की साक्षात मूर्ति थीं । स्वभाव बड़ा ही कोमल और सोधा था । आपने आजन्म कुमारी रह कर भारत की सेवा की । लण्डन में सम्पूर्ण जातियों की जो महासभा हुई थी उसमें भगिनी निवेदिता ने भारत की भलाई के लिये, एक निबंध लिख कर भेजा था।

## मृत्यु ।

आप काम करते २ अचानक बीमार हुईं और दार्जिलिङ्ग के पहाड़ पर स्वर्गयात्रा की । भारत और इंगलैंड में इनके लिये बड़ा शोक मनाया गया । धन्य देवी! तुझे शतशः धन्य है !! वह कौनसा दिन होगा जब इस भारत में भी ऐसी देवियां उत्पन्न होकर देश, जाति और समाज का कल्याण करेंगी।

---

# महात्मा गोखले ।

## जन्म और शिक्षा ।

महात्मा-गोखले का जन्म सन् १८६७ ई० में कोल्हापुर के निकट कागल ग्राम में हुआ था। इनके पिता सामान्य-स्थिति के ब्राह्मण थे । यह एफ ए. तक कोल्हापुर ही में पढ़े थे । १८ वर्ष की आयु में बम्बई के एलफ़िन्स्टन कालेज से बी. ए. पास किया। आपकी बुद्धि जितनी प्रखर, स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, वैसे ही आप अध्यवसायी भी थे।

## कार्यक्षेत्र में प्रवेश ।

घर वाले चाहते थे कि गोपालराव गोखले इञ्जीनियर

होकर बहुत सा रुपया कमावें और हमारी बहुत दिनों की आशा पूरी हो; परन्तु कौलेज ही से आपके हृदय में देशभक्ति की ज्योति जगमगाने लगी थी। वहां से निकल कर आप दक्षिण-शिक्षा-समिति में सम्मिलित होगये।

७५) रु० मासिक पर फ़र्गुसन कालेज में नौकरी करली। कुछ दिनों तक आप गणित एवं अङ्गरेज़ी के अध्यापक रहे, फिर इतिहास और अर्थशास्त्र पढाते रहे। अन्त में उसी कालेज के प्रिंसपल भी होगये। छुट्टियों में शिक्षा-समिति की उन्नति के लिये उद्योग करते थे। एक बार आपने द्वार २ घूम कर उसके लिये दो लाख रुपये मांगे। कालेज में तो आप अधिक परिश्रम करते ही थे, साथ ही साथ न्यायाधीश रानाडे के समीप बहुत दिनों तक धर्मशास्त्र व और राजनीति का अध्ययन किया। रानाडे ने इन्हें उपयुक्त पात्र पाकर परिश्रम करने में किसी प्रकार की कसर नहीं की।

## सार्वजनिक सेवा।

उस समय पूने में एक सर्वजनिक-सभा थी जिसके द्वारा एक त्रैमासिक पत्र निकलता था। पहले इस पत्र के सम्पादक थे जस्टिस रानाडे। इस पत्र में सरकारी अर्थनीति की आलोचना रहती थी। सन् १८८७ में मि० गोखले इसके सम्पादक हुए। बडी योग्यता से काम किया। राजा और प्रजा में सद्भाव पैदा करने की चेष्टा की। साथ ही सरकारी भूलों की आलोचना भी हुई। थोड़े ही दिनों में मतभेद होने के कारण डेकन्स-सभा के नाम से एक नई सभा खुली, जिसके आप मंत्री चुने गये।

इसके सिवाय आप पूने के 'सुधारक' पत्र के भी सम्पादक रहे, जो एंगलो-मराठी में निकलता था। २२ वर्ष की आयु में

प्रान्तिक-परिषद् में आपका ऐसा भाषण हुआ, जिसे सुन कर मि० मुधोलकर ने इनके लिये एक दिन राष्ट्र-सभा के सभापति होने की भविष्यद्वाणी की थी। १७ वर्ष पीछे सन् १६०५ में यह बात सत्य हुई।

## विलायत यात्रा।

आपने कई बार विलायत यात्रा की। इंगलैण्ड में १८६७ई० में वैलबी कमीशन के सामने आपकी बडी महत्त्वपूर्ण गवाही हुई। सन् १६०५ में दूसरी बार विलायत गये। भारत की भलाई के लिये बहुत व्याख्यान दिये; जिनका इंगलैण्ड की जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। १६०६ और १६०८ में फिर इंगलैण्ड गये, और लार्ड मार्ले से मिल कर बहुतसी हित की बातें कीं। अन्त में आप १६१३-१४ में पब्लिक-सर्विस-कमीशन में भारत की ओर से सम्मिलित हुए। सन् १६१२ में दक्षिणी अफ्रीका जा कर भारतवासियों के दुःख दूर करने का यत्न किया, और उसमें बहुत कुछ सफलता हुई।

## भारत-सेवक-समिति।

अपने उद्देश्यों की सफलता का प्रयत्न सदैव जारी रखने के लिये आपने 'भारत-सेवकसमिति' स्थापित की। जिसके उच्चशिक्षा प्राप्त २५ आत्म-त्यागी योग्य युवक सभासद हैं। ३०)रु० के नाममात्र वेतनपर अपना निर्वाह करके देश का काम करते हैं। अकालों तथा हरद्वार-कुम्भ के समय समिति की ओर से जो कार्य हुआ है, राजा और प्रजा दोनों, उसका कीर्ति-गान करते हैं। अभी इस समिति को सहस्रों नहीं वरन् लाखों आत्मत्यागी युवकों की आवश्यकता दीख पड़ती है।

## मृत्यु।

इस प्रकार ४८ वर्ष की आयु तक महात्मा गोखले ने राजा

और प्रजा की भलाई के लिये प्राणपन से चेष्टा की। काम की अधिकता से इनका स्वाथ्य भी बहुत दिन से बिगड़ गया था, परन्तु उसकी कुछ परवाः नहीं की। १६ फर्वरी सन् १६१५ ई० को दिन के १ बजे इनकी तबियत बहुत बिगड गई। रात के १० बजे राजा, प्रजा और समिति की बात करते २ आपने इस असार संसार को छोड़, स्वर्गधाम की यात्रा की। देश भर में हाहाकार मच गया। राजा और प्रजा दोनों ही के शोक का पारावार न रहा। भारत के प्रत्येक नगर और समिति ने उनकी मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकाशित किया और उनके कुटुम्ब के साथ समवेदना प्रकाशित की।

## आपके उत्तराधिकारी।

आपकी दो अविवाहिता कन्यायें हैं जिनकी आयु १६ व २१ वर्ष की है। जो अभी क्रम से मैट्रिक और बी०ए० की परीक्षा में सम्मिलित हुई हैं। इन अनाथ बालिकाओं की सहायता करने के लिये लोगों ने लिखा पढ़ी की; परन्तु आत्मत्याग की मूर्ति इन देवियों ने धन्यवादपूर्वक उसे अस्वीकार किया।

## फल।

जन्म लेना ऐसे ही पुरुषों का सार्थक है। अपना पेट तो कुत्ता भी भरलेता है।

---

# दिल्ली में अशोक स्तंभ

दिल्ली भारतवर्ष का वड़ा पुराना नगर है। उसके पुराने खॅडहर और ध्वंसावशेष* अनेक राजकीय परिवर्त्तनों की याद दिलाते हैं। उसके एक २ खंडहर की एक २ ईंट इतिहास-प्रेमियों को-ऐतिहासिक खोज करने वालों को-बड़े महत्त्व की

---

* पुराने मकानों के चिन्ह, २

चीज़ है। आज हम वहीं के एक २२०० वर्ष पहिले बने हुए स्तंभ का उल्लेख करते हैं—यह स्तंभ ईसा से कई शताब्दी पहले महाराज अशोक ने बनवाया था। दिल्ली के पास फ़ीरोज़ाबाद के कोटला दुर्ग में स्थापित है। महाराज अशोक ने इसकी स्थापना यहां नहीं की। फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ इसे अम्बाला ज़िले के शिवालिक पर्वत के पास तोपहर गांव से लाया था। इसकी गोलाई नीचे ९$\frac{3}{4}$ फ़ीट और चोटी पर ६$\frac{1}{2}$ फ़ीट है। इसकी जड़ में एक चबूतरा है उससे स्तंभ की ऊंचाई ३७ फ़ीट है, ऐसा विशाल स्तंभ इतनी दूर से

## दिल्ली कैसे लाया गया ?

यह प्रश्न सब के जी में उठता है। ज़ियाउद्दीन बनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि फ़ीरोज़शाह ने अपनी सेना और आसपास की प्रजा को इकट्ठा किया। बहुत सी सेमल की रुई मंगा कर, उसके बड़े २ मोटे गद्दे बनवाये। और बहुत सी रुई स्तंभ से लपेटी गई। उसकी जड़ को धीरे २ खोद कर उस रुई पर गिरवा दिया और रुई अलग करादी। फिर सरपता और चमड़ा लपेट कर कोई १० हज़ार आदमियों ने एक ४२ पहिये की गाड़ी में रक्खा और जमुनाजी पर लेगये। वहां से बडी २ जुडी हुई नावों के द्वारा दिल्ली ले आये और कोटला नामी दुर्ग में उसे स्थापित किया।

## स्तंभ पर प्राचीन लेख।

इस पर बौद्धों के ४ अनुशासन (आज्ञायें) ईसा से ३०० वर्ष पहले के अंकित हैं। इसके सिवाय राजा विशालदेव चौहान के सं० १२०८ के दो और लेख हैं; परन्तु इतिहासज्ञ इन लेखों को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। इस स्तंभ के चबूतरे से कोटला दुर्ग के आसपास के ध्वंस और खण्डहर तथा हिमायूं के मक़बरे आदि के मनोहर दृश्य दिखाई देते हैं।

# अशोक* ।

बौद्ध लोगों के कथनानुसार अशोक अपने पिता की मृत्यु के समय उज्जैन का शासक था । बौद्ध लोगों का मत है कि जब वह नवयुवक था तब बड़ा निर्दयी और कठोर हृदय वाला था । उसने राज्य-पद अपने अट्ठानवे भाइयों के मारने पर पाया । परन्तु ये बातें असत्य जान पड़ती हैं, क्योंकि अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अशोक के भाई और बहिन उसके सम्राट होने पर भी जीवित थे और अशोक को सदा इस बात की फ़िक्र रहती थी कि उनको कोई कष्ट न पहुंचे । अशोक के समय का सच्चा इतिहास शिलालेखों से ही जान सकते हैं ।

राजतिलक होने के आठ साल बाद अशोक कलिंगराज से युद्ध करने गया। घोर युद्ध होने पर उसने शत्रुओं को हराया और उनका देश जीत लिया । परन्तु जो मनुष्यों का संहार उसमें हुआ था उसे देख कर अशोक को अपने किये पर बहुत संताप हुआ । अशोक ने अपने लिखे हुए 'कलिंग-युद्ध' के वर्णन में बहुत शोक प्रगट किया है। उसने फिर कभी युद्ध नहीं किया । जीवन का शेष काल अहिंसा और पवित्र आचरण सहित रह कर बिताया।

अशोक के मानसिक भावों में परिवर्तन होने का कारण एक बौद्ध-मत के सन्यासी का उपदेश था । इसी समय से अशोक ने बौद्धमत ग्रहण किया और फिर उस मत का पक्का अनुयायी होगया; यहांतक कि वह बौद्ध-भिक्षुक का पीला कपड़ा पहिनने और सन्यासी बनने के लिये भी तैयार था।

अशोक ने अपनी राजधानी में बौद्ध-भिक्षुकों की

*इस प्रबंध के शीर्षक बनाओ।

एक सभा भी कराई। सभा का उद्देश्य बौद्धमत के भिन्न २ सम्प्रदायों को एक करना और बौद्धधर्म के ग्रन्थों की अशुद्धियां जो काल-वश उनमें आगई थीं उनका दूर करना था। अशोक ने मनुष्यों को सच्चरित्र बनाने के लिये अपने राज्य भर में पत्थरों पर खुदे हुए उपदेश गढ़वाये। इन शिला लेखों का अनुसन्धान गत सत्तर वर्ष में हुआ है और होता जाता है। ये शिलालेख मैसूर, पंजाब, बम्बई और उड़ीसा में पाये जाते हैं। उनसे विदित होता है कि भारत के दक्षिण के कोने को छोड़ कर सारे देश में अशोक का साम्राज्य था।

अशोक के एक शिलालेख में यह उपदेश है "माता पिता की आज्ञा मानना चाहिये, प्राणियों पर दया करना चाहिये, सच बोलना चाहिये, गुरु की सेवा करना चाहिये और कुटुम्बियों से सद्व्यवहार करना चाहिये"। प्रजा से इन उपदेशों का पालन कराने के लिये राज-कर्मचारी, नियत थे। अशोक ने बौद्ध-मत का प्रचार कराने के लिये मिसर, यूनान, फारस, तिब्बत और लंका आदि देशों मे बौद्ध-भिक्षु भेजे थे, और उन्होने बौद्ध-मत का खूब प्रचार किया। यहांतक कि कुछ समय के लिये बौद्ध-मत ही पृथ्वी का प्रधान-धर्म होगया था। यह सब अशोक के ही प्रयत्नों का फल था और इसी कारण से वह प्रसिद्ध सम्राटों और धर्म-प्रचारकों में गिने जाने योग्य है।

---

ऊपर लिखा जा चुका है कि विशेष चरित्र व विशेष घटनाओं की सूची विशेष रीति पर होती है, पर सामान्यतः इस प्रकार सूची होती है।

घटना।

| | |
|---|---|
| (१) कहां और किस समय हुई | (३) सामान्य वर्णन |
| (२) कारण | (४) परिणाम |

## सामान्यरीति से जीवनचरित्रों के ढांचे इस प्रकार होंगे।

**किसी पुरुष का जीवन**

१-कब कहां जन्म लिया।
२-माता पिता।
३-पालन पोषण और शिक्षा।
४-विवाह और संतान।
५-स्वभाव और आचरण।
६-उसके जीवन की मुख्य २ घटनाएं।
७-उसके प्रसिद्ध काम।
८-उसके जीवन का समाज और देश पर प्रभाव।
९-उपसहार।

**किसी राजा का जीवन।**

१-जन्म और पालन पोषण।
२-शिक्षा और विचार।
३-राज्य प्राप्ति।
४-राज्य-प्रबंध।
५-वर्त्ताव और स्वभाव।
६-विशेष घटनाएं।
७-मृत्यु।
८-सर्व साधारण पर प्रभाव।
९-उत्तराधिकारी।

# व्याख्यात्मक निबंध

किसी विषय के इस प्रकार खोल कर वर्णन करने को जिससे साधारण मनुष्य भी उसके रहस्य को भलीभांति समझ सके, व्याख्या कहते हैं। इस विभाग में भावात्मक-विषयों तथा व्यापक-नियमों की व्याख्या होती है अथवा किन्हीं सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण होता है। व्याख्यात्मक निबंधों को प्रायः परिभाषा से प्रारंभ करते हैं। उसकी विशेषताओं की क्रमश व्याख्या करते जाते हैं, और आवश्यकतानुसार उदाहरणों से उसे पुष्ट करते हैं। बहुत से विषय तो ऐसे हैं कि विना उदाहरणों के उनकी व्याख्या पूर्ण हो ही नहीं सकती; जैसेः-किसी गणित वा व्याकरण के नियमों की व्याख्या वा कोई भूगोल आदि की परिभाषा, आदि।

---

## विद्या।

जिसके द्वारा कुछ जाना जाता है उसे विद्या कहते हैं। "विद्याददाति विनयम् विनयात् याति पात्रताम्"। विद्या ही से मनुष्य बनता है। अन्धा जिस प्रकार दिन रात के भेद को नहीं जान सकता है, विद्याहीन मनुष्य भी उसी प्रकार, नीति और कर्त्तव्य को नहीं जान सकता। ज्ञान का अभाव ही इसका कारण है। ज्ञान किसी के साथ २ जन्म नहीं लेता। विद्या शिक्षा से ही ज्ञान मिलता है। अभ्यास से शिक्षा की उन्नति होती है। उन्नति से ज्ञान का क्रम-विकास होता है। क्रम-विकास का परिणाम मनुष्य को विद्वान् बनाता है। विद्वान् का आदर राजा से अधिक होता है" स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते"। राजा भी विद्वान् का सम्मान करता है।

विषयों के अनुसार विद्या के कई भेद हैं—कृषि, शिल्प, नीति, आचार, विज्ञान, आदि २।

विद्या-सूर्य उदय होगा और हम उसके प्रकाश में उन्नति प्राप्त करेंगे।

---

## श्रावणी पूर्णिमा और रक्षाबन्धन

श्रावण महीने की अन्तिम तिथि, श्रावणी कहलाती है; इस दिन प्रायः श्रवण नक्षत्र होता है।

यों तो चारों बड़े त्यौहार समस्त हिन्दू जाति के हैं, परन्तु मुख्य कर श्रावणी ब्राह्मणों की, विजयादशमी क्षत्रियों की, दिवाली वैश्यों की और होली शूद्रों की कही जाती है।

प्राचीन समय में ऋषि लोग एक विशाल यज्ञ करते थे, उसमें राजा तथा अन्य यजमान लोग भी सम्मिलित होते थे। वेद के मन्त्रों द्वारा इस यज्ञ में द्विजातिमात्र यज्ञोपवीत धारण करते थे। यज्ञ के प्रारम्भ मे आशीर्वादात्मक मंत्र पढ़ कर हाथ में एक रंगीन सूत्र बांधते थे।

धीरे धीरे ब्राह्मणों की अवनति हुई। वह एक २ पैसे के लोभ से द्वार २ घर २ जाकर एक रंगीन सूत्र लोगों के हाथ में बांधने लगे।

कालक्रम से यह लड़कियों का मुख्य त्यौहार होगया। लड़कियां अपने भाई, चचा, भतीजे आदि सम्बन्धियों को भुजरियां या राखी देने लगीं। ऋषि लोग यज्ञ के स्थान में जो आदि अन्न बो देते थे और यज्ञ के अन्त में छोटे २ पौधों को सिर पर धारण करते थे, कदाचित् यह भुजरिया उसी का रूपान्तर हो।

मध्यम-काल मे इस राखी ने बडी शक्ति धारण की। जिस लडकी ने जिसके हाथ में एक वार राखी बांध दी, वह आजन्म के लिये भाई होगया। ग्रामों में श्रावणी के दिन लड़कियां इकट्ठी होकर, गांव के नाते से जो भाई, चचा, ताऊ भतीजे हैं? उनके

पुस्तक विना पढ़े विद्या नहीं आती है, यह बात झूंठ है। विना पुस्तक पढ़े भी मनुष्य विद्वान् हो सकता है। पुस्तक से शिक्षा में सहायता मिलती है, क्योंकि विद्या भाषा-मयी है। विना भाषा के हम अपने भावों को, न तो दूसरों पर प्रगट कर सकते हैं न दूसरों के भावों को समझ सकते हैं। अच्छी भाषा सीखने के लिये प्रारम्भ से ही पुस्तक पढ़ने का नियम है। धैर्य, क्षमा, संयम, अहिंसा, शान्ति, पवित्रता आदि गुण विद्या से ही उत्पन्न हो सकते हैं। विद्या से चित्त की शुद्धि होती है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सत्-असत्, झूठ-सच का ज्ञान होता है। "भूगर्भ में क्या छिपा पड़ा है? आकाश के चमकते हुए तारे क्या हैं?" ये तो दूर की बातें हैं, पर विना विद्या के हम यह भी नहीं जान सकते कि "शरीर को स्वस्थ किस तरह रक्खें? अपनी सन्तान को कैसे और क्या शिक्षा दें? किसके साथ कैसा वर्ताव करें।" आदि आदि।

विद्या ही सच्चा बल है, विद्या ही सच्चा धन है। विद्या ही से आज यूरोप व अमेरिका के लोगों ने ऐसी उन्नति की है। विद्या ही से जापान इतना ऊंचा उठ गया। रेल, तार हवाई-जहाज़, जहाज़, विना तार का तार, भांति २ की कल आदि विद्या ही के बल से बनाये गये। विद्या ही से वह अरबों-खरबों का व्यापार कर रहे हैं। हमारी भारत-भूमि भी विद्या की खानि और विद्वानों की जननी है। व्यास, वाल्मीकि, पातंजलि, शंकर, दयानन्द, विवेकानन्द, गोखले आदि ने इसी की कोख से जन्म लिया। समय के फेर से यहां से विद्या का सूर्य्य अस्त हुआ। अज्ञान का अंधेरा चारों ओर फैल गया। पर अब ब्रिटिश- शासन के प्रभाव से फिर पौ फटने लगी है, भाग्याकाश में लालिमा दिखाई देने लगी है। आशा है फिर

विद्या-सूर्य उदय होगा और हम उसके प्रकाश में उन्नति प्राप्त करेंगे।

## श्रावणी पूर्णिमा और रक्षाबन्धन

श्रावण महीने की अन्तिम तिथि, श्रावणी कहलाती है; इस दिन प्रायः श्रवण नक्षत्र होता है।

यों तो चारों बड़े त्यौहार समस्त हिन्दू-जाति के हैं, परन्तु मुख्य कर श्रावणी ब्राह्मणों की, विजयादशमी क्षत्रियों की, दिवाली वैश्यों की और होली शूद्रों की कही जाती है।

प्राचीन समय में ऋषि लोग एक विशाल यज्ञ करते थे, उसमें राजा तथा अन्य यजमान लोग भी सम्मिलित होते थे। वेद के मन्त्रों द्वारा इस यज्ञ में द्विजातिमात्र यज्ञोपवीत धारण करते थे। यज्ञ के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक मंत्र पढ़ कर हाथ में एक रंगीन सूत्र बांधते थे।

धीरे धीरे ब्राह्मणों की अवनति हुई। वह एक २ पैसे के लोभ से द्वार २ घर २ जाकर एक रंगीन सूत्र लोगों के हाथ मे बांधने लगे।

कालक्रम से यह लड़कियों का मुख्य त्यौहार होगया। लड़कियां अपने भाई, चचा, भतीजे आदि सम्बन्धियों को भुजरियां या राखी देने लगी। ऋषि लोग यज्ञ के स्थान में जौ आदि अन्न बो देते थे और यज्ञ के अन्त में छोटे २ पौधों को सिर पर धारण करते थे, कदाचित् यह भुजरिया उसी का रूपान्तर हो।

मध्यम-काल में इस राखी ने बड़ी शक्ति धारण की। जिस लडकी ने जिसके हाथ में एक बार राखी बांध दी, वह आजन्म के लिये भाई होगया। ग्रामों में श्रावणी के दिन लड़कियां इकट्ठी होकर, गांव के नाते से जो भाई, चचा, ताऊ भतीजे हैं ? उनके

राखी बांधती हैं। सामाजिक-पवित्रता की रक्षा के लिये इसने बड़ा काम किया है। यवन-शासन-काल में कोई अत्याचारी, असमर्थ हिन्दू-महिला पर अत्याचार करने का विचार करता, तो वह किसी बलवान् राजपूत के पास राखी भेज कर अपना भाई बनाती थी और वह अपनी धर्म-बहिन के सतीत्व की रक्षा में अपने प्राण तक दे देते थे। चित्तौड पर जब गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने चढ़ाई करने की तैयारी की तो, रानी करुणावती ने हिमायूं बादशाह के पास राखी भेजी। हिमायूं उन दिनों अफ़ग़ानों से लडने की तैयारी कर रहा था। सब को छोड़ छाड़ इस धर्म-बहिन की रक्षा के लिये चित्तौड दौडा। दूरी के कारण देर से पहुंचा। तब तक बहादुरशाह ने चित्तौड जीत ली। रानी १२००० सहेलियों सहित अग्नि में जल मरी। हिमायूं ने बहादुर शाह को मार भगाया और रानी के पुत्र अपने भानजे को चित्तौड की गद्दी फिर से दी।

सारांश यह है कि इस समय बाहरी अत्याचार तो कम दिखाई देते हैं। पर अभी सामाजिक-अत्याचारों की बड़ी भरमार है, जिनके कारण, स्नेहलता आदि देवियों ने अपनी बहनों की रक्षा के लिये, प्राणों की राखी भेज कर, नवयुवक भाइयों से त्राण की आशा की है। आशा है कि हमारे होनहार युवक प्रानपन से इन सामाजिक-अत्याचारों की जड़ खोदने की चेष्टा करेंगे।

इसी प्रकार होली, दिवाली, दशहरा आदि त्यौहारों पर लेख लिख सकते हैं।

---

## मुद्रा-यन्त्र

यूरोप में सारे काम कलों से होते हैं। यह सब कलें अभी हमारे देश में नहीं आई हैं। परन्तु बहुत से काम

यहां भी कलों की सहायता से किये जाते हैं। उसमें छापे की कलों का प्रचार बहुतायत से हो रहा है। हरएक ज़िले में एक दो अथवा उससे भी अधिक छापेख़ाने खुल गये हैं। मनुष्य के बनाये हुए बहुतसे शिल्प-यन्त्रों में 'मुद्रा-यन्त्र' के तुल्य उपकार करने वाला और कोई नहीं है।

सृष्टि और क्रमोन्नति

ईसा की नवीं शताब्दी के अन्त में पहले पहल चीनदेश में छापे की कल का आविष्कार हुआ। उस समय काठ के पटे पर अक्षर खोद कर, छापे का काम लिया। इस समय यूरोप में इस विषय की नई सृष्टि हुई है। सन् १८३६ और १८३९ ई० के बीच में गटेनवर्ग व कोस्टेर नामक दो आदमियों ने पृथक् २ छापे की विद्या का आविष्कार किया। वह यूरोप में काठ के पटे पर बहुत से शब्द खोद कर, एक २ पृष्ठ छापने लगे। धीरे २ इस विद्या की बहुत उन्नति हुई।

भाफ की सहायता से छपना

ईसा की १५ वीं शदी में जर्मनी के एक विद्वान् ने धातु के अक्षर बना कर अच्छा नाम प्राप्त किया। बहुत दिनों पीछे स्टनहोपेर नामक एक नामी शिल्पी ने लोह-यन्त्र बना कर ज्ञान-प्रचारक-पथ को और विस्तृत कर दिया। १९ वीं शताब्दी के प्रारंभ में इङ्गलैण्ड में भाप की सहायता से चलने वाला मुद्रायन्त्र तैयार हुआ। इसमें प्रति घंटा १८०० कागज़ एक ओर छपने लगे। वैज्ञानिक-उन्नति के साथ मुद्रायन्त्र की भी यथेष्ट उन्नति होती गई।

बिजली से परिचालन

इस समय अनेक जगह बिजली की सहायता से छापेख़ाने चलते हैं; जिससे थोड़े ही समय में बहुतसा काम हो जाता है। अक्षर ढालने के काम में भी वर्णनातीत उन्नति हो गई है।

वर्त्तमान समय में इस विद्या की उन्नति सुन कर हमारे
अद्भुत देश के लोगों को अवश्य आश्चर्य होगा । किसी किसी
उन्नति यन्त्रालय में ३५ पृष्ठ वाले विख्यात संवाद पत्र की ५५००० कापी १ घंटे में छप जाती है।

पहिले किसी विषय के प्रचार के लिये हस्त-लिखित पुस्तकों
उपकार से काम लिया जाता था। इसमें परिश्रम और व्यय बहुत होता था और काम कम । ५० वर्ष से अधिक समय में एक बड़ी पुस्तक कठिनता से लिखी जाती थी। और सौ वर्ष में भी समाज में उसका प्रचार होना कठिन काम था। परन्तु इस परमोपकारी-यन्त्र की सहायता से थोड़े ही दिनों में जो ज्ञान और धर्म का प्रचार हुआ, अकथनीय है। दो महीने नहीं बीतने पाते कि भूमण्डल के एक प्रान्त में छपने वाली पुस्तकें दूसरे प्रान्त में पहुंच जाती है। कोई नया आविष्कार, नया तत्व और नई बात किसी विद्वान् ने निकाली शीघ्र ही दूसरे देश के पंडितों के सामने आजाती है। राज्य के सब प्रकार के समाचार शीघ्र ही प्रजा के सामने आ जाते हैं । रात्रि की घटनाएँ रात्रि ही को मुद्रित होकर सवेरे सर्व-साधारण के हाथ में पहुच जाती हैं। वास्तव में इस यंत्र से संसार को बहुत लाभ पहुचा है। भूमण्डल पर ज्ञान और शिक्षा के विस्तार का प्रधान सहायक है। धर्म और नीति के प्रचार में इसी का सहारा है। मनुष्यों के सुख-स्वच्छन्दता का प्रधान कारण है। सच बात तो यह है कि इस कला के उपकार गिनाने में "गिरा अनयन नयन बिनु वाणी" कहना पड़ता है।

---

## संतोष ।

सतोष मन के ऊपर निर्भर है । असतोषी कभी सुखी नहीं होता। सतोषी थोड़े ही पर सुखी होजाता है। मनुष्य अपने अच्छे काम करने पर सतोष कर सकता है। कहीं २ सतोष भी बुरा है।

संतोष मनुष्य के मन के ऊपर निर्भर है । धन से मनुष्य को कभी संतोष नहीं हो सकता, जबतक कि वह स्वभाव से ही संतोषी न हो । असंतोषी मनुष्य कभी २ कहा करता है कि मुझे अपने पड़ोसी के बराबर धन मिल जाय तो संतोष होगा; परन्तु यदि उसे उतना धन मिल भी जाय तो संतोष नहीं होता और वह अधिक धन की इच्छा करने लगता है। इसका कारण उसका स्वभाव से ही असंतोषी होना है। इच्छित वस्तु के पाने पर भी मनुष्य का सन्तुष्ट न होने का कारण यह है कि मनुष्य की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता। प्रत्येक समय मनुष्य को नई इच्छाएं उत्पन्न हुआ करती हैं। सब से पहिले एक ग़रीब मनुष्य कुछ रुपयों की इच्छा करता है। जब वे उसे मिल जाते हैं, तो वह और भी अधिक धन की इच्छा करने लगता है। इसी तरह से वह समय कभी नहीं आता, जब उसे कोई इच्छा न रहती हो; परन्तु संतोषी मनुष्य थोड़े धन पर ही आनंदित रहता है।

संतोषी मनुष्य चाहे जिस स्थिति में हो आनन्द से रहता है। यदि कोई मनुष्य बहुत ग़रीब हो तो, उसे इसी बात में आनन्दित रहना चाहिये कि उसका स्वास्थ्य-धन, धनवान मनुष्यों से अच्छा है। जो मनुष्य मित्रहीन और कुटुम्बहीन है, उसे शोक न करना चाहिये; वरन् अपना समय पुस्तकों के पढ़ने तथा और ऐसे कामों में लगाना चाहिये जिससे कि उसका तथा समाज का भला हो। जो सदा रोगी रहते हैं, उनको अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों की प्रीति में ही प्रसन्न रहना चाहिये।

मनुष्य को सब से अधिक संतोष का वह समय है जब उसे किसी अच्छे कार्य में सफलता प्राप्त होती है। यदि कोई

मनुष्य किसी सत्कार्य्य के करने में पूरा परिश्रम करता है, तो भी उसके हृदय को संतोष होता है। मनुष्य चाहे कितनी ही बुरी अवस्था में हो, परन्तु जब वह अपना कर्तव्य अच्छी तरह से कर लेता है तो उसकी आत्मा को पूरा आनंद मिलता है।

संतोष तो एक अच्छी वस्तु है; परन्तु कभी २ संतोष करना भी सराहनीय नहीं है। अपने जीवन-आदर्श को उच्च न बनाना और सदा अवनत-दशा में संतोष करना ठीक नहीं है। किसी ग़रीब भाई को बुरी दशा में देख कर उसकी दशा सुधारने का उपाय न करना, किसी मनुष्य के किये हुए अत्याचार को सह लेना और उसे उचित बदला न देना भी अपने कर्तव्य से विमुख होना है।

---

## स्वार्थ

स्वार्थी मनुष्य का चरित्र; ऐतिहासिक उदाहरण; स्वार्थी मनुष्य को सच्चा सुख नहीं मिलता; स्वार्थी दयापात्र नहीं है। *

स्वार्थी मनुष्य सदा अपने सुख की इच्छा रखता है और दूसरे मनुष्यों के सुख की बिल्कुल परवाह नहीं करता। वह सदा अपने उद्देश्य-पूर्ति के प्रयत्न में लगा रहता है और चाहता है कि जितनी भर पृथ्वी पर अच्छी वस्तुएं हैं, वे सब उसे ही मिलजावें। जब उसके सुख की वस्तु मिल जाती है तो वह उसका उपभोग करता है और इस बात को नहीं सोचता कि उसके साथी सुख में हैं या नहीं। यदि किसी को दुःख

---

*जिन प्रबन्धों के शीर्षक ऊपर लिख गये हैं, उनको पढ़ कर हर एक शीर्षक को बढ़ाओ। फिर पुस्तक पढ़ कर, पुस्तक के विचारों को अपने प्रबन्ध के विचारों से मिलाओ। वाक्य-रचना और पैराग्राफ़ मिलाने पर ध्यान दो।

देने पर भी उसे कोई वस्तु मिलती है तो वह उसका विचार न करके, उस वस्तु को ले लेता है। इतिहास में ऐसे कई राजाओं के उदाहरण मिलते हैं, जो प्रजा का धन लूट कर अपने स्वार्थ के लिये लगाते थे। जिनको अपने विलास के सिवाय प्रजा के सुख की बिल्कुल परवाह न थी। रोम में भी ऐसे कई बादशाह हुए हैं, जोकि अपना जीवन सुख और विलास पूर्वक बिताने के लिये ही राज्य का काम अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करते थे। उसके लिये बडे २ युद्ध करते थे. जिस में बहुत से मनुष्यों का संहार होता था। ऐसी स्वार्थ-परता केवल राजाओं में ही नहीं; किन्तु साधारण मनुष्यों में भी बहुत पाई जाती है। पृथ्वी के प्रायः प्रत्येक भाग में ऐसे मनुष्य हैं जो अपने सुख के लिये दूसरों के अधिकार छीन लेते हैं। वे इस बात की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते कि उनके अधिक सुख-भोग के कारण, कई गरीबों को बहुत दुःख सहना पड़ता है। स्वार्थी मनुष्य अपने मित्रों और बन्धुओं के हक्क़ भी छीन लेता है, इस कारण से वह सारे कुटुम्ब और मित्रों की घृणा का पात्र हो जाता है; तो भी वह अपनी स्वार्थ-परता नहीं छोड़ता। जब सब घृणा से देखते हैं तो उसे हार्दिक-शान्ति नहीं मिलती। मनुष्य को शान्ति तब मिलती है जब उसके समाज के मनुष्य उससे प्रसन्न रहें। इस-लिये अपने समाज के मनुष्यों को प्रसन्न रखना अन्यावश्यक है। सच पूछा जाय, तो मनुष्य को, स्वार्थ-त्याग में ह सुख है। जब कोई मनुष्य अपनी समाज के लिये कोई भला काम करता है तब समाज को सुख तो होता ही है, परन्तु उसे भी सुख होता है। इसके सिवाय वह समाज की प्रीति का पात्र बन जाता है। परन्तु स्वार्थी मनुष्य को इस आनन्द से

वंचित ही रहना पड़ता है। समाज की घृणा के कारण उसे जो हार्दिक-वेदना होती है, उससे वह अपनी सुख-सामग्री का भी उपभोग् नहीं कर सकता। यदि वही मनुष्य स्वार्थ-परता छोड़ कर अपनी समाज का हितेच्छु बन जाय तो उसे सुख और शान्ति दोनों मिल सकते हैं।

---

## चित्त की स्थिरता वा धीरज

क्या है। किनमें होती है। उसका महत्त्व- १ सैनिकों को २ व्यापारियों को ३ सम्बन्धियों को। यह गुण अभ्यास से बढ़ सकता है।

हो समय कैसा ही कठिन दृढ़-चित्त होकर मत डरो;
पड़ जाय लाखों विघ्न पर, कर्त्तव्य तुम अपना करो,
कहते न तुम घर घर फिरो, बाधा हरो बाधा हरो;
निज बाहुबल से नाव खे कर, दुःख का सागर तरो।

"सनेही"

स्थिर-चित्तवाला मनुष्य कठिनाई के आने पर विचलित नहीं होता, किन्तु धैर्य के साथ बात समझता है और समय के अनुसार उचित काम करता है। जो मनुष्य किसी समाज के नेता रहते हैं, उनके चित्त का स्थिर होना एक स्वाभाविक गुण है। जब कई मनुष्य किसी आपत्ति के आने पर विह्वल हो जाते हैं और यह नहीं सोच सकते कि उचित कार्य्य क्या है? तब शान्त-चित्तवाला मनुष्य उन्हें धैर्य से उस आपत्ति का सामना करने और उसके निवारण करने का उपाय बतलाता है। उच्च-पद पर स्थिर-चित्तवाले मनुष्य को ही नियत करना चाहिये; क्योंकि केवल वही साहस धारण करके विपत्ति का सामना करता है और अपनी स्थिति को अच्छी तरह से जान कर समयानुकूल चाल चलने की

अपने साथियों को सलाह देता है। ऐसा मनुष्य जल्दी बात समझ लेने वाला भी हो, जिससे कि वह मौक़ा हाथ से जाने न दे और उचित कार्य्य करले। जो मनुष्य शान्तचित्त होकर समयानुकूल काम नहीं करता वह किसी काम का नहीं।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि प्रसिद्ध पुरुष भी जब कठिन काम आजाता है तो धैर्य्य खो देते हैं और ऐसा काम कर बैठते हैं जिसके कारण उनकी जग में हँसी होने लगती है। उसका कारण चित्त की स्थिरता का अभाव है। वे फिर यह नहीं सोच सकते कि क्या करना चाहिये। ऐसे मनुष्यों को उच्च-पद पर कभी नियत न करना चाहिये। यदि कोई सेनापति युद्ध के समय में धैर्य्य छोड देवे तो वह सब काम बिगाड़ देता है। वह चाहे कितना ईमानदार और राजभक्त हो; परन्तु उस समय वह किसी काम का नही, सेनापति के पद के लिये अयोग्य है। व्यापारी, जो युद्ध की झूठी खबरें सुन कर और बाज़ार के भाव की परवाह न करके अपना भाव तेज़ या मंदा कर देता है, टोटे में पडता है। जो मनुष्य बैंकों की स्थिति का पूरा ज्ञान न करके रुपया खींच लेते हैं अथवा उसके हिस्से मोल ले लेते हैं, वे भी अपने और दूसरे को हानि पहुंचाते हैं। इससे मनुष्य को, कोई भी काम बिना अच्छी तरह से सोचे और उसका अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त किये नही करना चाहिये। फ़ायदे में वे ही मनुष्य रहते हैं जो बिना समझे जन-समूह का अनुकरण नहीं करते किन्तु किसी भी काम को सोच विचार के हाथ में लेते हैं।

'चित्त की स्थिरता' एक स्वाभाविक-गुण है, परन्तु प्रयत्न और अभ्यास से भी मनुष्य स्थिर-चित्तवाला हो सकता है। जिस मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास

बुद्धि द्वारा होगया है और जो मनुष्य बलवान और स्वस्थ शरोर वाला है वह किसी कठिन समय पर बुद्धि के साथ काम करता है और मौके पर अपना काम निकालने से नहीं चूकता। परन्तु जिस मनुष्य में मानसिक और शारीरिक बल नहीं होता वह तुरंत ही विचलित होजाता है, वह यह नहीं सोच सकता कि क्या करना चाहिये ? जिस विषय का मनुष्य को पूरा ज्ञान रहता है उससे सम्बन्धित, किसी काम में बहुत कम भूल करता है। क्योंकि वह जानता है " उसमें कौनसी भूलों के होने की अधिक संभावना है "। वह उन भूलों से बचाव के उपाय भी सोच लेता है। यदि सेनापति को लडाई के विषय की सब बातें मालूम हों तो वह शीघ्र ही समयोचित काम करेगा और कभी विचलित न होगा। इसी तरह यदि माता को बच्चों की सब बीमारियों का ज्ञान हो, तो वह अपने बालक को बीमार देख कर घबडायगी नहीं, पर उस बीमारी के लिये उचित औषधि देने का प्रबन्ध करेगी।

---

## पश्चात्ताप

क्या है ? उन्नति के लिये पश्चात्ताप की आवश्यकता। पश्चात्ताप से भविष्य-उन्नति की संभावना। पश्चात्ताप ही दण्ड है।

किसी कर्त्तव्य के न करने अथवा किसी अनुचित कार्य्य के करने के पश्चात् जो हृदय को वेदना होती है उसे पश्चात्ताप कहते हैं। आत्मोन्नत्ति के लिये पहले पश्चात्ताप के ज्ञान की आवश्यकता है। मनुष्य को चाहिये कि प्रत्येक अनुचित काम करने पर पश्चात्ताप करे। क्योंकि पश्चात्ताप करने वाला मनुष्य दूसरी वार उस अनुचित काम को न करेगा, जिसके ऊपर कि उसने पश्चात्ताप किया है। यदि चोर को चोरी करने पर लज्जा नहीं आती तो वह फिर चोरी करेगा।

यदि किसी मनुष्य को झूंठ बोलने पर पश्चात्ताप नहीं होता, तो वह सदा झूंठ ही बोला करेगा।

जो सदा अपराध करते रहते हैं उनको भी किसी समय "हार्दिक-वेदना" अपने अनुचित कार्य्यों पर होती है। जो मनुष्य अपने किये हुए अपराधों पर पश्चात्ताप प्रकट करता है वह मानो अपने अपराधों के लिये ईश्वर से क्षमा मांगता है। यदि पश्चात्ताप सच्चा हो तो, वह फिर वैसा काम कभी नही करता। जो मनुष्य स्वभाव से ही अपराधी हो उसको सच्चरित्र बनाने का एक ढंग यह भी है कि उससे अनुचित कामों पर पश्चात्ताप कराया जाय; क्योंकि पश्चात्ताप से अपने किये हुये अपराधों पर शोक प्रकट करना ही नहीं प्रत्युत आगे उन अपराध का न करना भी होता है। पश्चात्ताप मनुष्य तब ही करेगा जब उसे इस बात का निश्चय होजायगा कि जो काम उसने किया है वह हर तरह से बुरा है। यदि किये हुए काम में उसे कुछ भी भलाई दीखेगी तो उसपर वह पश्चात्ताप न करेगा।

पश्चात्ताप केवल बाहरी ही नहीं किन्तु हार्दिक होना चाहिये। यदि कोई लडका सज़ा से बचने के लिये अपने शिक्षक से कोई अपराध न करने की प्रतिज्ञा करदे तो वह पश्चात्ताप नहीं है। पश्चात्ताप होगा तब, जब वह स्वयं अपना अपराध स्वीकार करे और उसके कारण दंड भी सहने को उद्यत हो। ऐसे समय में पश्चात्ताप करने वाले को दंड देना उचित नहीं। क्योंकि पश्चात्ताप द्वारा मनुष्य को हार्दिक-वेदना होती है, उसका दुःख दंड के दुःख से भी बढ़ कर होता है।

---

## प्रसन्नता।

१—प्रसन्न मनुष्य का चरित्र, २ प्रसन्नता सुख की जड़ है,। ३ मनुष्य

अस्वस्थ होने पर भी प्रसन्न रह सकता है, ४ प्रसन्नचित्तवाला अपना काम अच्छी तरह करता है, ५ स्वास्थ्य नियम-पालक अपने चित्त को प्रसन्न रख सकता है।

प्रसन्न-चित्तवाला चाहे जिस दशा में हो, उदास नहीं होता। विपत्तियां साधारण मनुष्य को बिल्कुल उदास कर देती हैं; वे प्रसन्न-चित्त वाले पर कुछ असर नहीं कर सकतीं। वही मनुष्य सुख से रह सकता है जो आपत्तियों का सामना करता है और विचलित नहीं होता। प्रसन्नता ही मनुष्य के सुख की जड है क्योंकि मनुष्य बुरी अवस्था में होकर भी यदि प्रसन्न रहे तो वह सुखी है और अच्छी स्थिति के होने पर भी उदास रहा तो वह दुखी है। जो मनुष्य धनहीन होने पर भी प्रसन्नचित्त रहता है, वह एक धनिक और उदास मनुष्य से अच्छा है, संपत्ति से वह सुख प्राप्त नहीं हो सकता जो कि प्रसन्नता से होता है।

मनुष्य के सुख और दुःख का कारण उसका मन होता है, बाहरी वस्तुएं नहीं। यही कारण है कि जो मनुष्य मन से प्रसन्न है वही सुखी है। प्रसन्न-चित्त-वाला मनुष्य अपना काम भी अच्छी तरह से कर सकता है, क्योंकि कैसा ही काम क्यों न हो, वह उसे करने से नहीं हिचकता और उसे कष्ट साध्य देख कर निराश नही होता। उसे प्रत्येक कठिन काम करने में सफलता प्राप्त करने का रहस्य मालूम है और वह प्रसन्नता है। वह उसे संसार के प्रत्येक काम में सहायता देती और सफलता प्राप्त कराती है।

जो मनुष्य दिन भर रोता हुआ काम करके और उसी पर सोचता हुआ उदास रहा आता है, उसे कभी सुख नहीं होता। प्रसन्नचित्त-वाले मनुष्य को उसी काम के करने में

विशेष आनन्द आता है । अपना काम पूरा कर लेता है तो सदा उसी को नहीं सोचता; किन्तु जो काम उसके आगे रहता है उसकी ओर ध्यान देता है और दत्तचित्त हो उसे करने लगता है। इससे उसका काम भी अच्छा होता है और उसे अधिक व्यथा भी नहीं मालूम पड़ती । इसी से कहा है कि प्रसन्नता सफलता का साधन है।

प्रसन्नता ईश्वर की दैनगी नही है वह प्रत्येक मनुष्य में हो सकती है। प्रसन्न मनुष्य को तो आनन्द सा ही है, परन्तु उसकी प्रसन्नता से उसके साथियों को भी आनन्द होता है। जिस तरह उदास मनुष्य की सूरत सब को बुरी मालूम होती है, उसी तरह प्रसन्न पुरुष का मुख सब को अच्छा मालूम होता है।

मनुष्य को अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिये भी प्रसन्नता की आवश्यकता है । जो मनुष्य प्रसन्नचित्त होते हैं वे अच्छे स्वास्थ्य वाले होते हैं और उदास मनुष्यों का स्वास्थ्य सदा बिगड़ा हुआ रहता है। यह वैद्यों का मत है कि उदास रहने से पाचन-शक्ति घट जाती है। जिसके घटने से सब प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

---

## मित्रता।

मित्रता से सुख बढता है । विपत्ति में दुःख कम होता है। आपत्ति में धीरज बँधाती है। बुरे मित्रों से हानि है ।

मित्रता करने से मनुष्य के सुखों की वृद्धि और दुखों का नाश होता है । किसी मनुष्य को किसी काम में सफलता प्राप्त होती है तो उसको और उसके मित्रों को आनंद होता है । यदि किसी कारण से उसे दुःख होता है तो उसके मित्र सहानुभूति बतलाते हैं और धैर्य्य दिलाते हैं: जिस से उसे

अधिक सुख मालूम होता। जिस मनुष्य का मित्र नहीं है, उसे सुख के समय में पूरा आनंद नहीं आता और दुःख के समय दुःख दूना मालूम होता है। मित्रहीन-मनुष्य को धन, वैभव और मान से कोई लाभ नहीं होता; क्योंकि इनका उपभोग मनुष्य अच्छी तरह से तब ही कर सकता है जब उसके मित्र होवें। यदि मनुष्य अपनी संपत्ति द्वारा मित्रों का भी कुछ भला करता है तो उसे विशेष आनंद होता है।

जब हम कोई नया काम हाथ में लेते हैं तब हमें मित्रों की आवश्यकता होती है। मित्रहीन-मनुष्य विना सलाह के नये काम में हाथ लगाने से हिचकता है; परन्तु मित्र वाला मनुष्य अपने मित्रों द्वारा उत्साहित होकर साहस से नये काम में हाथ लगाता और उसे उसमें सफलता भी मिलती है। प्रत्येक मनुष्य अपने काम के विषय में यह भी जानना चाहता है कि वह जनसमुदाय को अच्छा मालूम होगा या बुरा। यह बात वह मित्रों द्वारा ही जान सकते हैं, क्योंकि चापलूस झूठी तारीफ़ करदेते हैं और अवसर निकलने पर बड़ी निन्दा करने लगते हैं। मित्रों की सच्ची आलोचना से मनुष्य को अपनी भलाई और बुराई मालूम हो जाती है और वह अपने दुर्गुणों को दूर करने के प्रयत्न में लग जाता है।

मित्रों से, सब से अधिक लाभ आपत्ति के समय में होता है। जब मनुष्य को बहुतसी आपत्तियां आकर घेर लेती हैं और वह हताश हो जाता है, तो आपत्ति से बचाने वाले व धैर्य्य बँधाने वाले मित्र ही हुआ करते हैं। सच्चे मित्र, अपने मित्रों को बड़ी कठिनाइयों से बचा लेते हैं। मित्रहीन-मनुष्य को विपत्ति के समय कोई सहारा नहीं रहता है।

मित्र बनाते समय प्रत्येक मनुष्य को मित्र बना लेना भूल

है। ठगने वाले और मीठे वचन बोलने वाले मित्र बहुत मिलते हैं; परन्तु ऐसे मित्रों से मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिये। ऐसे मित्र बड़े स्वार्थी होते है और सिवाय लूटने के, मित्र को कोई लाभ नही पहुँचाते। मित्र चाहे थोड़े हों, परन्तु सच्चे होने चाहिये। किसी अपरिचित व्यक्ति को कभी एकाएकी मित्र नही बना लेना चाहिये। सद्व्यवहार तो सब ही से होना चाहिये; परन्तु मित्र उसी को बनाओ जिसकी परीक्षा करली हो।

---

## काम।

१ भावार्थ, २ काम सुख की जड है, ३ विना काम के उन्नति नहीं होती, ४ काम से सफलता होती है।

किसी अर्थ-साधन के हेतु मानसिक अथवा शारीरिक परिश्रम को काम कहते हैं। आजकल जीवन-निर्वाह के हेतु जो उद्योग किया जाता है उसे काम कहते है। जब कोई काम कठिन होता है और उसमें अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है तो उसे मनुष्य बुरा कहने लगते है, परन्तु उसे बुरा नही कहना चाहिये। काम कोई भी हो, उसे घृणित नही कह सकते, यदि वह ईमानदारी के साथ किया जावे। किसी भी व्यवसाय को नीच कहना भूल है।

मनुष्य को, जीवन-निर्वाह के लिये काम अवश्य ही करना चाहिये। जिन मनुष्यों के पास बहुत धन रहता है, वे प्रायः कोई काम नही करते, परन्तु ऐसे मनुष्यों की कोई प्रशंसा नही करता। प्रत्येक मनुष्य को कोई न कोई काम अवश्य करना चाहिये, जिससे उसका तथा समाज का भला हो। बाल्यावस्था से ही किसी काम के करने का निश्चय कर लेना

चाहिये और उसी के अनुसार शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो मनुष्य अपना जीवन बिना कोई काम किये आलस्य में बिताते है, उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्था बुरी रहती है और वे अपना जीवन सुख से नहीं व्यतीत कर सकते। जो मनुष्य किसी काम में लगा रहता है और उसी के द्वारा धन कमा कर अपना निर्वाह करता है, वह अपना जीवन सुख से बिताता है।

प्रत्येक मनुष्य को किसी काम के करने में विशेष आनन्द आता है। मनुष्य को वही काम करना चाहिये जो उसको अच्छा लगे, क्योंकि वह मनुष्य उसी काम के करने में अच्छी सफलता पा सकता है। नित्य के काम के सिवाय मनुष्य को चाहिये कि वह ऐसा भी कोई काम चुन ले, जो नित्य के काम से भिन्न प्रकार का हो। जब किसी समय मनुष्य अपना मामूली काम करते २ थक जाता है तब दूसरा काम करना बहुत अच्छा मालूम होता है। कई मनुष्य गाना बजाना इत्यादि सीख लेते हैं, जो दैनिक काम के परिश्रम की व्यथा को दूर कर, उनके चित्त को प्रसन्न कर देता है।

जो मनुष्य अपना निर्वाह मानसिक-परिश्रम द्वारा करते है, उन्हे दिन में एक बार शारीरिक-परिश्रम करना बहुत सुखप्रद और लाभकारी होगा। इसी तरह जो मनुष्य सदा शारीरिक परिश्रम करते हैं, उन्हें प्रतिदिन एक या दो घंटे कुछ पढ़ने लिखने में बिताना चाहिये। यदि मनुष्य सदा एक ही काम को करता रहता है तो, उसे जीना भी कठिन मालूम होता है। इस से कामों में कुछ भिन्नता होनी चाहिये।

---

## धन का सदुपयोग ।

१ धन एक शक्ति है, २ धनवानों का व्यय, ३ घूस, ४ व्यर्थ दान, ५ दान का औचित्य ।

रुपया पास होने से मनुष्य को उसके बदले में किसी इच्छित वस्तु के लेने का अधिकार हो जाता है। यदि मनुष्य अपने धन को विलास की वस्तुएं लेने में ख़र्च करे तो, उस से कई गरीबों की हानि होती है; क्योंकि विलास की वस्तुओं के तैयार करने में मनुष्यों को बहुत मेहनत करनी पडती है और उनमे कई मनुष्यों की जान जाती है। वही मेहनत यदि जीवन की किसी आवश्यक वस्तु के बनाने में लगाई जावे तो लाखों ग़रीबों का भला हो । मनुष्य अपने धन को समाज में उच्च-स्थान पाने के लिये भी ख़र्च कर सकता है। अमेरिका में बडे धनवान मनुष्य घूंस देकर के राज्य-सभा के सभासद हो जाते है और अपने अर्थ साधन के हेतु ऐसे कानून बनवा लेते है जो उनको तो लाभ दायक हो, परन्तु ग़रीबों को हानिकारक होते हैं । समाज को इस तरह से वे लूट कर अपने धन की वृद्धि करते हैं । यह सब धन का दुरुपयोग कहलाता है।

जो मनुष्य ग़रीबों पर बड़े दयालु रहते हैं और सदा अपना धन दान देने में ही ख़र्च करते हैं, वे धन का दुरुपयोग करते हैं । क्योंकि वे दान देते समय यह नहीं सोचते कि जिसको दान दिया जाता है वह दान का पात्र है या नहीं। जब वे प्रत्येक भिखारी को बिना सोचे दान देते हैं तो इस प्रकार भिखारियों की संख्या बढ़ती है । वे लोग फिर भीख मांगना ही अपना पेशा बना लेते हैं । वह काम नहीं करते जिससे उन्हें मज़दूरी द्वारा पैसा मिले और समाज का भी कुछ भला

हो। जिन मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा है और जो काम करके कमा सकते हैं, उनको कभी दान नहीं देना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से बेकार मनुष्यों की सख्या बढ़ेगी और समाज की बड़ी हानि होगी। भारतवर्ष में मनुष्य विना इन बातों को सोचे, चाहे जिसे दान देने को उद्यत रहते हैं। यही कारण है कि यहां मज़बूत मनुष्य जिनको कि काम करके कमाना चाहिये, अपना निर्वाह भिक्षा द्वारा ही करते हैं।

अपना धन न तो विलास में और न व्यर्थ दान में ख़र्च करना चाहिये। परन्तु उसको जमा करके रख लेना भी उचित नहीं। क्योंकि जो मनुष्य अपने धन का कोई उपयोग नही करता और उसे सदा बचाये रखता है, उसके पास धन का होना न होना बराबर है। धन, सदा अपने जीवन को सुख से विताने के लिये ख़र्च करना चाहिये। दान उन मनुष्यों को देना चाहिये जो कमा नहीं सकते। विद्यालयों तथा अनाथालयों के लिये दान देना भी बहुत उत्तम है, क्योंकि इन दोनों के द्वारा धन का उपयोग, समाज की उन्नति के हेतु होता है। अपने और समाज के स्वास्थ्य तथा बालकों की शिक्षा के लिये एव देश के हित के लिये धन ख़र्च करना सब से अच्छा है।

---

## रामायण।

१ रामायण का गौरव, २ रामायण का काम, ३ समाज का चित्र, ४ उसके चरित्रों से शिक्षा

हिन्दू-समाज में रामायण का जो स्थान है, जैसी उसकी पूजा है, जैसी मान्यता है, दूसरे किसी ग्रथ की नहीं। राजा से लेकर रक तक, पडित से लेकर सामान्य अक्षराभ्यासी

तक, सब रामायण को पढ कर अपनी २ रुचि के अनुसार आनन्द प्राप्त करते हैं। हर जगह पंडितों के द्वारा उसकी कथा कहलाते हैं।

महात्मा तुलसीदासजी के समय में धार्मिक सम्प्रदायों में बहुत मत भेद बढ़गया था। हरएक सम्प्रदाय, एक दूसरे के मान्यदेवों की घोर निन्दा करते थे। आन्तरिक-कलह हिन्दू-समाज को बहुत ही कमज़ोर बना रहा था। तुलसीदास जी ने जनता के सामने यह आदर्श रक्खा—

"शिव वैरी मम दास कहावै। सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावै"

सामाजिक दशा का भी अच्छा चित्र खीचा है—

"ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी।
नारिस्वभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं।
कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरी छाँड़ि न होउब रानी।"

आदि वाक्यों से उस समय की हिन्दू-समाज के भीतरी रहस्यों का पता चलता है। भगवान् रामचन्द्र का चरित्र अक्षरशः अनुकरण करने योग्य है। भाई, भरत और लक्ष्मण से स्वार्थत्यागी होने चाहिये। राजा दशरथ के समान, प्राण और पुत्रों को देकर भी अपने वचनो का पालन करना चाहिये। कूवरी जैसी दुष्टा स्त्री किस भांति घर में फूट डलवा कर नाश करा देती है दुष्टो और धूर्तों की बातों में आ-कर कैकेई जैसी बुद्धिमान स्त्री भी बहक जाती है। सती-सीता का कैसा पवित्र चरित्र है। श्रीराम का विभीषण और सुग्रीव के साथ मित्रता करना अच्छी राजनीति का उदाहरण है।

कुमार्ग में चलने वालों तथा अपने भाइयों को सताने वालों को, बालि और रावण के चरित्र से पाठ लेना चाहिये। भगवान् रामचन्द्र का भीलिनी के झूंठे बेर खाना, भील के

साथ घनिष्ठ मित्रता करना, रात दिन नीच ऊंच की चिन्ता में रहने वालों को अच्छी शिक्षा देता है। इसके अतिरिक्त "ईश्वरअंश जीव अविनाशी" आदि वाक्यों का अभिप्राय है कि किसी जीव के साथ में अत्याचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह ईश्वर का अश है। यदि मनुष्य माया (अज्ञानता) के पर्दे को हटा दे तो वह ब्रह्म ही (समीपस्थ) हो सकता है। कहांतक गिनावें-वेदान्त, भक्ति, ज्ञान, धर्म, नीति, आचार, व्यवहार आदि सिखाने को एक रामायण ही पर्याप्त है जहां पर धर्म-शिक्षा देने का विधान हो, एक रामायण ही से उनका बहुत कुछ काम निकल सकता है।

---

## देशी कारीगरी।

प्राचीन काल में देश की कारीगरी

इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि किसी समय अपना देश विद्या और कला में, पृथ्वी के और देशों से बहुत चढ़ा बढ़ा था। यहां से बहुत सा माल अरब, तुर्किस्तान और मिस्र होता हुआ यूरोप जाता था। भांति भांति का सूती और रेशमी कपड़ा बनता था। आज भी सूरत का ज़री का काम, नागपुर के धोती जोडे, ढाके की मलमल-बुरहानपुर का कलाबत्तू, बङ्गाली दुपट्टा, और काश्मीरी शालदुशाले यहां की प्राचीन कारीगरी का गौरव दिखाते हैं।

वर्त्तमान स्थिति

पर किसी ने कहा है "जो अति ही ऊंचे चढ़ें गिरिहैं संशय नाहिं" वह पुराना दौर दौरा नहीं रहा। कालचक्र के प्रभाव से भारत का बाज़ार यूरोप, अमेरिका और जापान के माल से भरा पडा है। दिया-सलाई और सुई ऐसी छोटी २ चीज़ें भी बाहर से न आवें तो हमारे कारोबार बन्द पड़े रहें।

अ–अपने देश के कारीगरों में अज्ञानता, आलस और निर्धनता होने के कारण वह नवीन सभ्य देशों के कारीगरों की बराबरी नही कर सके। समय की गति के साथ उन्होंने अपनी विद्या, कला और हुनर में सुधार नहीं किया।

अवनति का कारण।

ब–यूरोप के लोग उद्योग, साहस और चतुराई में बढ़ गये। अपनी कारीगरी में उन्हों ने बड़ा सुधार किया। अनेक प्रकार के यन्त्र बनाये। दूसरे देशों से कच्चा माल मंगा कर यन्त्रों की सहायता से सस्ता और साफ़ माल तैयार किया। उसके सामने हाथ से बना हुआ देशी माल तेज़ पड़ा; उतनी सफ़ाई भी न दिखाई दी, इससे उसकी खपत कम होगई।

अ–कला विद्या की पुस्तकें अपनी भाषा में प्रकाशित करके सस्ते मूल्य पर बेचना चाहिये। साथ ही साथ बड़े २ शहरों में आदर्श कार्यालय खोलने चाहियें, जिनमें कारीगरों को कलों से काम करना सिखाया जाय।

देश में कला-कौशल की वृद्धि

ब–यूरोप, अमेरिका और जापान आदि में काम सीखने के लिये विद्यार्थी भेजे जांय, वह लौट कर देशी कारीगरों को उसी ढङ्ग पर काम करने के लिये तैयार करें।

स–धनी लोग देश में, दिया सलाई, कागज, सूती व ऊनी कपड़े, होल्डर, निब, कृषि-यन्त्र आदि आवश्यकीय वस्तुओं के बनाने के लिये कारख़ाने खोलें और सहकारी समितियां बनावें।

यह है कि, देशी कारीगरों की दशा सुधारनी ज़रूरी है। रूई, रेशम, सन और ऊन आदि पदार्थ यहां से यूरोप जाते हैं। वहां से कपड़ा बन कर यहां आता है। अगर वह यहीं बने तो करोड़ों आद-

सारांश

मियों की रोज़ी चले और देश में धन की बढ़ती हो। अकाल का डर कम होजाय। इस समय दैवयोग से जर्मनी का माल भारत में नही आसकता है; परन्तु अमेरिका और जापान कुल व्यौपारी-मैदान को हथिआने की कोशिश में हैं। हिन्दुस्तानियों को भी सचेत होने का मौक़ा हाथ से न जाने देना और भारत की समृद्धि के लिये तन-मन-धन लगा देना चाहिये।

---

## देशाटन से लाभ।

शाब्दिक-व्युत्पत्ति—देश देश में घूमने फिरने का नाम देशाटन [देश + अटन=] करना है।

लाभ —१-दूसरे देश के अद्भुत २ प्राकृतिक और कृत्रिम दृश्य नदी, पहाड़, झरने, मैदान, नगर, क़िले, अच्छी २ इमारतें देख कर मन को बहुत आनन्द मिलता है; ईश्वर तथा मनुष्यों की कारीगरी के रहस्य जाने जाते हैं।

२—जानकारी बढ़ती है। भांति २ के स्वभाव वाले मनुष्यों के देखने व बर्ताव करने से अनेक प्रकार की चालाकी व चतुराइयों से परिचित हो जाते हैं, जिनका जानना जीवन-रक्षा के लिये आवश्यकीय है।

३—व्यापार और रोज़गार में लाभ होता है। अपने देश में जिस देश की वस्तु खपती हो उसे ला सकते हैं। दूसरे देश की आवश्यकता जान कर उसे पूरा कर सकते हैं। परस्पर के व्यवहार से विश्वास बढ़ता है। आढ़त का सिलसिला जमता है।

४—यदि हमारे देश की कोई वस्तु विदेशी वस्तु की बराबरी न कर सकती हो तो, वहां के कारखानों में उसके बनने की रीति आदि देख कर, अपनी वस्तु की त्रुटि दूर कर सकते हैं।

और किसी नई वस्तु का बनाना सीख कर अपने देश को लाभ पहुँचा सकते है।

५—विद्यालयों में प्राप्त की हुई शिक्षा, देशाटन से पूर्ण होती है। किसी देश का ज्ञान भूगोल की पुस्तक से तब तक ठीक ठीक नही होता जबतक कि हम अपनी आंखों से उसे देख न लें। किसी ऐतिहासिक घटना-स्थल को प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य हो, तो जी में कैसे नये २ भाव उठते है।

६–किसी देश के सामाजिक और नैतिक रहस्यों का पता चलता है:—

वहां के आदमियों के साथ रहने सहने से, उनके आचार, व्यवहार और रीति रस्मों के निरीक्षण करने से, वहां की शिक्षा दीक्षा के रहस्यों को समझने से, वहां की सामाजिक और नैतिक स्थिति का पता चलता है; जिनसे अपने देश और समाज की उन्नति के लिये अनेक परिणाम निकाले जा सकते है।

७–शिक्षा-प्रेमी महाशय दूसरे देश के विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों की संचालन रीति और प्रबंध देख कर तथा वहां की शिक्षाप्रणाली मनन करके अपने देश के शिक्षा प्रचार में लाभ पहुंचा सकते हैं।

हानि—देशाटन से अगणित लाभ हैं परन्तु निरुद्देश हो कर मारे मारे फिरने से कोई लाभ नही है। हम ऐसे देशाटन से सहमत नही है, जिसमें समय और धन का दुरुपयोग हो।

---

## लोकसेवा।

सेव्य है सब जग का वह धीर, लोक-सेवा में जो हो वीर।
नहीं तो सूकर स्वान समान, पेट भरने में कौन अजान॥

'सनेही'

एक दिन महात्मा रामाकृष्ण से उनके शिष्यों ने पूछाः— "ईश्वर का कौनसा 'भजन' सब से अच्छा है।"

महात्मा कहने लगेः—"एक धनी के उपवन में दो माली नौकर थे। एक तो पेड़ों की सार सम्हार–उनमें पानी देना, गोडना आदि–में सारा समय व्यतीत करता था, और जो कुछ फल फूल उसमें होते थे, स्वामी के यहां रख जाता था। दूसरा कुछ काम नही करता था, कही स्वामी जाता तो उसके साथ चला जाता था और उसके सामने ऐसा कह कर कि "मेरा स्वामी लम्बा है, चौडा है, दयालु है, पालक है," नाचा करता था। अब बताओ कि कौनसा सेवक अपने स्वामी का सच्चा भक्त है?

एक स्वर से सब लोग—"पहला, पहला"।

महात्मा—"तो बस यह संसार ईश्वर का उपवन है। इसमें जीवमात्र वृक्ष लतादिक हैं। उनकी भलाई करने वाला–उनकी सेवा में शरीर अर्पण करने वाला–ही ईश्वर का सच्चा भक्त है।"

कवि सम्राट् महात्मा रवीन्द्र ने एक जगह लिखा है "चल उठ, यहाँ गोमुखी में हाथ डाले क्यों बैठा है? यदि ईश्वर के दर्शन करने हैं तो वहां चल, जहां किसान ठीक दोपहरी में हल जोत रहा है और चोटी का पसीना उसके पांव तक पहुंचा है।"

ठीक है, जिसने ज्ञान से अपने कर्त्तव्य को नही पहचाना, विद्या से अपने विचारों को ऊचा नही किया, ससार में उसके पैदा होने से न होना अच्छा था। जबकि जड-प्रकृति की सृष्टि वृक्ष 'फल' और नदी 'जल' देकर हमारी जीवन-रक्षा करती हैं तो, चैतन्य जगत के मुकुट कहलाने वाले मनुष्य, अपने साथियों को दुःखित देख कर उनकी सेवा नही करते–उन्हें सहायता नहीं देते—उन्हे अपनी भूल पर बार बार पश्चात्ताप करना चाहिये। जड़-प्रकृति से कर्त्तव्यपालन की शिक्षा लेनी चाहिये।

शिक्षा का सब से ऊंचा उद्देश्य यही है-"मनुष्य अपने को इस योग्य बनावे कि संसार भर को सुख पहुँचाता हुआ अपने को सुखी करे"। महात्मा बुद्ध के वह वचन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षर में लिखे गये है "मुझे अकेले मुक्ति नहीं चाहिये-जब तक संसार के कीट पतंगादि भी मुक्त न हो जांय, मैं मुक्ति नहीं चाहता।"

आधुनिक समय में गोखले आदि महात्माओं ने लोक-सेवा का कितना बड़ा आदर्श हमारे सामने रक्खा है ? स्वयं लोक-सेवा में उन्होंने अपना जीवन दिया। उनके शिष्य 'वेंकटेश नारायण तिवारी आदि लोक सेवा से किस प्रकार अपने जीवन को पवित्र कर रहे हैं । यूरोप की सैकड़ों देवियों ने आजन्म कुमारी रह कर लोक-सेवा की है। वासन्ती देवी ने भारत की सेवा के लिये अपना जीवन दिया है । मि० कैरी एक अमेरिकन लेडी है, आप भारत की स्त्रियों के दुःख देख, यहां की विवाह-प्रथा का सुधार कर रही हैं। पर गजब है कि यहां के पढे लिखे लोग ऐसी स्वार्थ की पट्टी आँखों पर चढ़ाये हुए हैं कि जिन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता।

मि० टी० आर. जी. लाइल भूतपूर्व हैड मास्टर राजपूत हाई स्कूल ने एक लड़के की—जब कि हैज़े के रोग में ग्रसित था अन्य लोग पास जाने में भी डरते थे—कई दिन अपने हाथों सेवा की, रातदिन उसके पास रहे।

अजमेर में शिक्षित लोगों की एक सेवा-समिति ने कई महीनों से इस महामारी के समय बड़ा काम किया है। हज़ारों प्लेग के रोगियों की विना छूआ-छूत के विचार से सेवा की है। और मृत्यु के पीछे बड़ी गंभीरता से अन्तिम संस्कार अपने हाथों से किया है।

सारांश यह है कि हमारा देश रोग और अकालों का घर हो गया है, यहां के युवकों को "लोक-सेवा" व्रत धारण करना चाहिये। रोगियों की परिचर्या, भूखों और अकाल-पीड़ितों को अन्नदान आदि आवश्यकीय कार्य के लिये मंडली बना कर देश और जाति की सेवा करना चाहिये।

## फलों का आहार।

"औषधियों का सामान्य गुण' यह है कि वह आंतों को ठीक रक्खें और अजीर्ण न होने दें। यदि अजीर्ण हो जाय तो उसे दूर करें। परन्तु औषधियों की अपेक्षा फल अधिक लाभ दायक हैं। यों तो सेव, नारंगी, नासपाती, केला, रसभरी, शहतूत और अनार में अजीर्ण दूर करने का गुण है ही, परन्तु अञ्जीर, अंगूर, खुबानी, किशमिश और खजूर में यह गुण बहुतायत से पाया जाता है।

फलों से हृदय को लाभ होता है।

हृदय का कार्य धीमा हो या उसमें गर्मी आगई हो तो फलों का नमक और खटाई उसे लाभ पहुँचाती है। फलों की चीनी को हृदय आराम से पचा लेता है।

फल मेदे के रस को शुद्ध करते हैं।

मेदे में भोजन पचाने वाला रस है, वह यदि दूषित हो जाय तो फल उसे शुद्ध कर देते हैं। फलों का हलका भोजन आठ दश दिन में अजीर्ण दूर करता है। उबले हुए चावल और तले हुए सेव, अथवा दो भाग केले के गूदे में १ भाग मलाई मिला कर बहुत ही लाभदायक है।

इन्द्रिय जुलाब

नारंगी और खरबूज़े का रस, गुर्दे का मैल दूर करके उसे बलवान बनाता है, और चित्त प्रसन्न करता है।

गठिया के रोगी को भी खट्टे फल लाभदायक है। जिस के शरीर में मांस खाने से जो रक्त-विकार उत्पन्न हो, उसे नीबू और तरबूज़ का अधिक व्यवहार करना चाहिये।

जो आलस्य से जीवन निर्वाह करते हैं, उनकी पाचन-शक्ति निर्बल हो जाती है। आँते ठीक काम नहीं करती। मल अच्छी तरह बाहर नहीं निकलता। अपरिपक्व भोजन शरीर में रह कर आमाशय मे एक प्रकार का विष पैदा करता है। इससे भांति २ के रोग दूर होते हैं। तन्द्रा नढ जाती है। ऐसे रोगी को एक दो सप्ताह तक नले हुए फल खूब खाने चाहिये।

नारंगी से रक्त का विष दूर होता है और शरीर की कान्ति बढ़ती है।

रक्त की कमी फलों के आहार से दूर होती है। केला इस रोग के लिये विशेष उपकारी है।

यदि शरीर में मोटाई अधिक हो तो ऐसे रोगी को फल अधिक देने चाहियें। नीबू और नारंगी आदि खट्टे फलों का रस पीना बहुत लाभ दायक है। निर्बलता में अगूर और पेचिश के रोग में खजूर और अञ्जीर अधिक लाभ देते हैं।

ज़ैतून का तेल कमज़ोरी दूर करता है। काडलिवर आयल के बदले इसका खाना बहुत ही उपयोगी है।

बच्चों को मांस व मिठाई न देकर फल ही देना चाहियें। फलों को वह पसन्द भी करते हैं।

जो मनुष्य भोजन के साथ नित्य फल खाता है, बहुत कम रोगी होता है। इनके भोजन से पाचन शक्ति-बढ़ती है, बल पहुंचता है और शरीर के अन्य विकार दूर हो कर वह पुष्ट होता है।

---

## पत्रलेखन।

दूरदेशी मित्रों के बीच में प्रेम बनाये रखता है। पत्रप्राप्त होने वाले को खुशी होती है। अपने हित-चिन्तकों को पत्र लिखना अपना कर्त्तव्य है।

दूर देश के रहने वाले मनुष्य के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखने के लिये पत्रव्यवहार आवश्यक है। बिना पत्र-व्यवहार के-जो मित्र साथ नहीं रहता उसका होना और न होना बराबर है। मित्रों के रहने का स्थान सामयिक पत्रों द्वारा मालूम हो सकता है और उनकी अच्छी और बुरी दशा का ज्ञान यात्रियों द्वारा हो सकता है, परन्तु बहुत समय तक बिना पत्रव्यवहार के भिन्न देशों में रहने से दो मित्रों मे हार्दिक-प्रेम नहीं रह सकता। यदि हम पत्र द्वारा दूर देशके रहने वाले मित्र के साथ बातचीत करते रहें तो, वह हमारे साथ रहने के बराबर है "अपने मित्र के रंग और रूप में कितना अंतर पड़ा" इसका ज्ञान हमें उसके चित्र से हो सकता है पर उसके विचार और स्थिति का परिवर्तन, पत्र द्वारा ही मालूम हो सकता है। जो पुत्र विदेश को धन कमाने जाते हैं उनका वियोग पिता को बहुत ही दुःखप्रद होता, यदि पत्र द्वारा पिता को समय समय पर ख़बर न मिलती रहती। जो मज़दूर किसी नये स्थान पर मज़दूरी करने और पैसा कमाने जाता है, वह भी अपने कुटुम्बियों को कुशल-समाचार देता रहता है। कुटुम्बी भी उसे अपने घर के सब हाल से सूचित करते रहते हैं। इस तरह से पत्रव्यवहार द्वारा दूर देश के रहने वाले मित्र अथवा कुटुम्बी का हाल मिलता रहता है और प्रेम का सम्बन्ध बना रहता है। जब यात्री घर लौटता है तो वह अपरचित-व्यक्ति के समान नहीं आता, परन्तु उसके मित्र और कुटुम्बी उसे उसी प्रकार से मिलते हैं जैसे कि वह सदा उनके साथ ही

रहा हो। इस कारण दूर-देश के मित्रों तथा सम्बधियों को चाहिये कि पत्र-व्यवहार सदा बनाये रहें! नव-युवक–जिनको कि इस संसार का पूरा अनुभव नहीं है–जब धन अथवा विद्योपार्जन करने विदेश जाते हैं, तब उन्हें अपने घर के मित्रों और कुटुम्बियों को पत्र लिखना बहुत आवश्यक है। जिन पिताओं को केवल अपने पुत्र की कुशलता की ही सब से बडी इच्छा है, उनको यदि समय समय पर पुत्र के पास से कुशलपत्र न मिलेगा तो बड़ी चिन्ता होगी। उनका सब से अधिक आनंद का समय वही है जबकि उन्हें अपने प्रिय पुत्र की पत्री मिलती है। जब पुत्र अपने पिता को केवल एक पत्र से ही आनंदित कर सकता है तो, यह उसका कर्त्तव्य है कि सदा उचित समय पर अपने पिता को पत्र लिखा करे और कभी अपने वृद्ध कुटुम्बियों को इस सुख से वञ्चित न रक्खे। किसी को भी इतना काम नही हो सकता कि पत्र लिखने की भी फुर्सत न मिले। जिसको दिन भर खूब काम करना पडता है उसे पत्र लिखना तो एक तरह से आराम देने वाला काम है। जब अधिक मानसिक-परिश्रम करने से मनुष्य थकित हो जाता है, तब अपने गृह, कुटुम्बी और मित्रों का स्मरण करने और उन्हें पत्र लिखने से उसके मन को शान्ति मिलती है। परन्तु यह मानसिक शान्ति तब ही मिलेगी जब पत्र स्थिर मन से लिखे जायँगे। पत्र लिखने का एक बड़ा उद्देश्य, जिसको पत्र लिखो उसे, सुख देने का है। इस कारण से पत्र में ऐसी ही बातें लिखना चाहियें जो किसी के चित्त को व्यथा न पहुँचावें। पत्र का काग़ज़ व लेखन इत्यादि भी अच्छा ही होना चाहिये। मित्र या कुटुम्बी को पत्र लिखने में ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिये, जिसमें अक्षर भी स्पष्ट न हों और पढ़ने वाले को कष्ट पहुंचे।

---

## आशा।

( लेखकः- श्रीयुत हृदयनाथ सपरू )

उस महानिशा का क्या नाम है जिसमें ज्ञान के सूर्य्य को उदय होने का अवसर नही मिलता? परमेश्वर के इस बड़े संसारचक्र की धुरी किस वस्तु की बनी है जो इतनी पुरानी होने पर भी नही घिसती? सज्जनों के वियोग में प्रेमियों के प्राण की रक्षा करने वाली कौन है? बड़ी बडी विपत्तियों में मनुष्य किसके भरोसे निराश नहीं होता? सार्वभौम और इन्द्रपद किसके आगे चार क़दम से भी कम है? हमारे जन्म से पहिले मां बाप को हमारे व्याह का सुख कौन अनुभव कराती है? किसके बल से नरकों की कडी आंच को हम फूलों की माला समझ बड़े बड़े पाप में प्रवृत्त होते हैं? कौन हम से बडे बड़े यज्ञ, दान और जप तप करा कर, हमें धर्म की प्रेरणा देती है? महामोह नाम बालक किस माता का प्यारा पुत्र है? किसका फल इतना मीठा है कि हम खाते खाते नहीं अघाते? परमेश्वर से निश्चय मिलने का दावा कौन रखती है और परलोक इस लोक दोनों के बखेड़े मात्र की मूल कौन है? आशा! वह आशा है!

आशा, अहा! यह कैसा मीठा और प्यारा नाम है! इसकी बदौलत संसार अपनी मर्य्यादा पर खडा है। जब मनुष्य घोर विपत्ति में पड़ घबरा जाता है और उस घबराहट में उसे मर जाना या घर छोड़ देश विदेश फिरना अच्छा लगता है, तब यही उसके सामने आती है और लाख लाख तरह के दिलासे देती है। जी कहता है, पुत्र का वियोग होगया अब दुनिया से क्या काम? यह कहती है तुम सलामत हो तो दस बीस हो रहेंगे। जी कहता है धन संपत्ति सब नष्ट होगयी. दिवाला निकल गया, अब कनी खाकर सो रहो, किसी को मुंह न

दिखलाओ' जहां राज भोगा, वहां भीख नहीं माँगनी। आशा तुरन्त उसके सामने खड़ी होकर राजा रामचन्द्र और युधिष्ठिर की कहानियाँ पढ़ने लगती है और कहती है कि, सम्पत्ति गई, तुम्हारा भोग नहीं लेगई। पुरुष का काम धीरज धरना है। रुपया पैसा हाथ पैर के मैल हैं, आते ही जाते रहते हैं। फिर दिन फिरेंगे, फिर वही राज-पाट होगा। जी कहता है "हाकिम के सामने क़सूरवार हो तुम क़ैद किये गये, अब ऐसी ज़िन्दगी से हाथ धोओ, गले में फाँसी लगा मर जाओ।" आशा कहती है, दिन बात करते बीतते हैं, चौदह बरस चौदह दिन से जायँगे, सम्पत्ति बिपत्ति होती ही रहती है, फिर वही घर, वही तुम हो। मन कहता है, मित्र के बिछोह में घडी भर भी जीना हराम है, विना मित्र संसार का सुख भोगना नीचों का काम है। यह क़हती है, बिछुडे मिलते हैं, मिले बिछुडते हैं; यही कारखाना है, तुम्हारा ध्यान किधर है? होश की दवा करो! तुम जीते रहोगे तो सब मिलेगे। जब तुम्ही नहीं हो, तो कौन किसे मिलेगा? जी कहता है, अरे! तोप तलवार चल रही है, जी बचा भाग चलो। यह कहती है, ख़बरदार जो पीछे हटा! जय तेरे ही हाथ में है, पैर आगे ही बढ़ाये चल, मर गया तो सीधा स्वर्ग को जायगा, संसार में नाम रहेगा। जीता तो बहादुर कहलायगा, राजा होगा, लूट मिलेगी, तनख़्वाह बढ़ेगी, तमग़ा मिलेगा। सिद्धान्त यह है कि, संसारी कामों से जब जी उचटता है, तब यह आगे होती है और फिर उसको उसी में सान देती है। इससे निश्चय होता है कि जगत्-चलानेवाली ईश्वर की अनेक शक्तियों में आशा भी एक प्रबल शक्ति है। गीदर्पण

——— ———

## स्वास्थ्य-रक्षा ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां,

आरोग्यं मूल कारणम् ।

समस्त लौकिक तथा पारलौकिक कामों के सम्पादन करने में आरोग्यता ही प्रधान कारण है । उसके विना हम कुछ नहीं कर सकते । इसलिये सब कामों से पहले हमे अपनी स्वास्थ्य-रक्षा पर ध्यान देना चाहिये । लोकोक्ति चरितार्थ है, "एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत है।" यदि तन्दुरुस्ती है तो दुनियां आनन्द का घर है, अन्यथा अस्वस्थ-मनुष्य को ईस ससार के समस्त सुख फीके और दु खमय दिखाई देते हैं। ईश्वर ने यह शरीर हमारे पास धरोहर के समान रक्खा है । इसके द्वारा हमें प्रतिदिन उत्तम २ काम करने का अवसर मिलता है। प्रकृति ने इस शरीर के द्वारा जो २ काम करने का हमें अधिकार दिया है उनका करना हमारा परम धर्म है । प्रकृति के नियमों को भङ्ग करना ही ईश्वरीय-आज्ञा का अनादर करना है। इसका दड हमें अवश्य भोगना पड़ता है। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का उल्लघन करने से हमें अस्वस्थतारूपी दंड मिलता है। कोई मनुष्य इसकी निस्बत यह कह नही सकता कि हमें अमुक नियम मालूम नहीं; अतएव हम दंड के भागी नही हो सकते। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि इन नियमों से अनभिज्ञ रहना ही ईश्वरीय-आज्ञा का उल्लंघन करना है। जैसे कोई मनुष्य ऐसा काम करे जो एक्ट की रू से अपराध समझा जाता हो, तो वह मनुष्य मजिस्ट्रेट के सामने यह कहने से अपराध से मुक्त नहीं हो सकता, कि, मुझे यह क़ायदा मालूम नहीं था। अस्तु, नियमों का जानना परमावश्यक है। ईश्वर

ने हमें जो जो शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियां दी है उनका समुचित उपयोग और उन्हे पूर्ण उन्नत करना हमारा धर्म है। जो मूर्ख रह कर उपर्युक्त शक्तियों की उन्नति नहीं करते वे मूर्खतावश भावी जीवन सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करके दुःख उठाते हैं। इसलिये हमें चाहिये कि इन बातो की हम सब से प्रथम जानकारी प्राप्त करे।

और बातो की अज्ञानता से इतनी हानि होनी सम्भव नहीं है, जितनी कि स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की जानकारी के बिना। यद्यपि प्रकृति ने मनुष्य की स्वास्थ्य-रक्षा का बहुत कुछ भार अपने ही ऊपर ले रक्खा है, तथापि हमारी सहायता के बिना वह उसे पूर्णरूप से सम्पादित नहीं कर सकती। हमें उसके बतलाये हुए नियमों का पालन अवश्य करना पडता है। भूख, प्यास या अधिक सर्दी गर्मी लगते ही उससे बचने की अत्यन्त प्रबल इच्छा हमारे मन में आप ही आप पैदा हो जाती है। प्रकृति की सूचना मिलते ही हमें तत्काल इसकी पूर्त्ति करना चाहिये। जब भूख या प्यास लगे तो उसी समय भोजन या पानी पीना बहुत जरूरी है। जब हमारा मस्तिष्क काम करते करते थक जावे, तब हमें चाहिये कि उसे विश्राम दें। क्योंकि हम देखते हैं कि अधिक ठण्ड और धूप मे फिरने से ज्वर आने लगता है। अधिक पढ़ने लिखने से किसी की आंखें बिगड जाती है। दिल से अधिक काम लेने से मस्तिष्क की बीमारी हो जाती है। कई लोग अधिक परिश्रम करके अपनी आरोग्यता इतनी बिगाड़ लेते है कि वे दुनियां के किसी काम के नहीं रहते। कई लोग इसके विरुद्ध बेकार रह कर आलस्य से अपना शरीर बिलकुल शक्ति-हीन और अनुपयोगी बनालेते हैं।

कुछ लोगो का ख्याल है कि, बीमारी मिट जाने पर शरीर

फिर ज्यों का त्यों हो जाता है; पर ऐसा समझना भारी भूल है। जिस कल का कील-पुर्ज़ा एक बार बिगड़ जाता है, वह हज़ार प्रयत्न करने पर भी पूर्ववत् नहीं हो सकता, उसमें कुछ न कुछ कमी हो ही जाती है।

वर्तमान में हमारे समाज और देश की दशा ऐसी है कि हमें पेट-पालन के लिये लाचार होकर स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का उल्लघन करना पड़ता है—दूसरे, हम लोगों की प्रकृति भी ऐसी है कि हम तात्कालिक सुखों को अधिक समझते हैं और उनमें लालायित और लिप्त होकर उनसे होने वाले आगामी दुःखों पर कुछ ध्यान नहीं देते। इस कारण हम लोगों की आरोग्य-रक्षा में सहज ही आघात पहुंचा करता है। आरोग्य-रक्षा के नियम पालने में जितनी हम त्रुटि करते हैं उतना दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। सूर्य अस्त के पश्चात् जिस तरह रात्रि का आना निर्भ्रान्त है, उसी तरह स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करने से दुःखों का आना भी निर्भ्रान्त है। परिमित आहार से अधिक भोजन करने से अजीर्ण होजाता है; अधिक रात्रि तक जागने से शरीर में आलस्य छा जाता है इत्यादि। इन बातों से यह सिद्धान्त निकलता है कि कुदरती नियमों में छोटीसी भूल का समावेश होना भी हानिकारक है। अतएव इन नियमों को मान-पूर्वक स्वीकार करके शारीरिक-शक्ति सम्पादन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा के नियम न जानने और जान कर भी उनका पालन न करने से आजकल इस देश में लोगों का स्वास्थ्य बहुत शोचनीय अवस्था में हो रहा है। असमय मृत्यु से लोगों का जीवन नाश हो रहा है। पूर्ण आयु व्यतीत कर मरने वालों की संख्या शायद बहुत ही कम निकले। परन्तु जिन

देशों में लोग इन नियमों को जानने की कोशिश करते तथा उनके अनुसार चलते हैं, वहां रोगों की ऐसी विपुलता नहीं दिखाई देती। वृद्धावस्था शीघ्र ही शरीर पर अपना अधिकार नहीं जमाने पाती। यूरोप, अमरीका आदि देशो के ७०। ८० वर्ष की उमर वाले मनुष्य जितना परिश्रम करते हैं, उतना इस देश के ज़वान पुरुष भी नही करते।

हमारी सरकार भी देशवासियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये प्रयत्न करती है, गवर्नमेण्ट के ऊपर इसका सारा भार छोड़ कर हमें निश्चिन्त न बैठना चाहिये। बङ्गला भाषा में स्वास्थ्य समाचार नामक एक अच्छा मासिक पत्र है। ऐसे समाचारपत्रों से इसका बहुत कुछ उद्देश्य पूरा हो सकता है। हिन्दी जोकि भारत की राष्ट्र-भाषा है इसमें ऐसे लोकोपकारी मासिक पत्रों का निकलना बहुत ज़रूरी है। यद्यपि नागरी में देशोपकारक, वैद्य, सुधानिधि, वैद्यकल्पतरु आदि पत्र निकलने लगे हैं, परन्तु तो भी इतने बहुसंख्यक हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिये इतने पत्र बस नहीं कहे जा सकते। रात दिन, उठते बैठते पद पद पर जो स्वास्थ्य-नियम, अनभिज्ञतावश नष्ट किये जाते हैं उनके तथा नित्यप्रति वहार में आने वाले खाद्य-पदार्थों के विषय में उपदेशादि, इन पत्रों द्वारा प्रकाशित करके, लोगो का बहुत कुछ उपकार साधित किया जा सकता है। हर्ष की बात है कि कुछ समय से प्रयाग में वैद्यक सम्मेलन की स्थापना हुई है।

यह एक आश्चर्य की बात है, कि लडकपन में हम स्वास्थ्य-नियमों को उतना भंग नही करते हैं जितना कि युवावस्था में। लडकपन की अज्ञानता की दशा में यदि ये नियम पूर्णतः न पाले जा सकें तो सभव है, परन्तु युवावस्था में जिस समय

हम शिक्षित और योग्य होने का दावा करते हैं, इन नियमों के भग करने में हमें लज्जित होना चाहिये।

लोग कम-समझी के कारण शारीरिक-सुख को प्रधान न समझ कर, खान-पान-जनित सुखों को ही प्रधान समझते हैं। ब्रह्मचर्य्य सम्बन्धी नियमों का पालन बहुत ही कम लोग करते हैं। जो माता पिता अपने अल्प-वयस्क लड़के लड़कियों की सन्तानोत्पत्ति को अहोभाग्य समझते हैं वे इस विषय में कहां तक ज्ञान रखते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि "धान का गांव पयार ही से पहिचाना जाता है।"

सच बात तो यह है कि, लोग शिक्षा और सभ्यता में कैसी ही उन्नति क्यों न करते जांय? पर शारीरिक-दशा तो अच्छी नहीं कही जासकती। हमें दृढ़ता-पूर्वक स्वास्थ्य-नियमों का पालन करना चाहिये, इसी में सच्चा सुख है, इसी में भलाई है, विना स्वास्थ्य के लोक बनता है न परलोक।

---

## पुरषार्थ वा श्रम।

### श्रमप्रवृत्ति और आलस्य का हेतुः—

मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही रो कर इधर उधर हाथ पाँव फेंकता है, इससे मनुष्य प्रकृति के परिश्रमी होने का पता चलता है। गो आदि के वच्चे भी धरती पर आते ही उठ कर इधर उधर दौडने की चेष्टा करते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि, कर्म करना ही जीव का स्वभाव है। काम करने में वह सदैव सचेष्ट रहता है। संसार के हरएक जीव में कर्म करने की थोड़ी वहुत प्रवृत्ति जन्म से ही रहती है। जीवों की देह की वनावट ही कर्म करने के उपयुक्त है और जगत के कर्म ही श्रम चाहते हैं। विना श्रम के इष्ट-साधन कभी नहीं होता। इससे

सिद्ध है कि परिश्रम करना जीव का साधारण धर्म है।

आलस्य, जीव की प्रकृति नही, विकार मात्र है। स्वाभाविक नही, अभ्यास से होता है। संसर्ग दोष, वा विना परिश्रम किसी वस्तु के मिलने अथवा शिक्षा के अभाव से यह दोष उत्पन्न होता है। धीरे २ अभ्यास बढ़ने से अकर्मण्यता पैदा होजाती है। कभी २ अच्छे अवसर की वाट देखना आलस्य बढ़ाता है। वहुत से आलसीवहाना किया करते हैं कि, हम क्या करें, समय ही हमारे अनुकूल नहा है, दिनही खोटे हैं; ऐसे कामों से हमारा क्या पूरा पड़ेगा; काम करें तो कोई अच्छा ही करेंगे। उनको यह समझ रखना चाहिये कि, श्रम करने ही से सुयोग और सुविधा होती है। सुफल मिलता है। श्रम करने वाले को अवसर की चिन्ता कभी नहीं सताती।

### श्रम का अवसर तथा अनावसर

आलसी मनुष्य जिस समय को वुरा कहते हैं, जिसको छोटा वा निरर्थक समझते हैं, परिश्रमी उसी समय को अमूल्य वना लेते हैं। उसी काम को अमृत-फल-प्रद कर लेते हैं।

अतएव कर्तव्य-कर्म का पालन करना ही मनुष्य का धर्म है। काम की सुविधा-असुविधा, वड़ाई, सुयोग, दुर्योग, फला-फल की चिन्ता में पड़ना आदि अनधिकार चर्चा है। वहुत लोग सोचा करते हैं कि, उस मनुष्य का वह सहायक है अथवा उसमें ऐसी शक्ति है वा उसे ऐसा संयोग मिलगया, जिससे उसकी ऐसी उन्नति हुई। वास्तव में यह वात ठीक नहीं है। कर्त्तव्य क्षेत्र में नियमित रूप से परिश्रम करना ही मनुष्यों की प्रधान सहायक शक्ति है। परिश्रम ही अच्छा अवसर ला देता है।

प्रारब्ध—एक महापुरुष का वाक्य है कि, दैव कर्मवीर

ज्ञान और सलाह मिलती है; जिसके अनुसार काम करने से देशवासियों को लाभ होता है। इसके सिवाय अनेक अनुभवियों का अनुभव, तत्त्ववेत्ताओं का आविष्कार, कवियों का काव्य, तथा आचार, विचार, व्यवहार सम्बन्धी अनेक शिक्षाएँ अनायास ही प्राप्त होती हैं।

**अध्यापकों का कर्त्तव्य—**

हमारे देशी भाषा के अध्यापकों में समाचार-पत्र पढने की रुचि बहुत कम देखी गई है। बहुतों को तो, मैंने भूत की भांति डरते हुए देखा है। ज्ञान-प्राप्त का साधन न मिलने के कारण उनमें संकीर्णता बहुत बढ़ जाती है। कई आदमियों को मैंने कहते सुना है 'कि अख़बार वाले झूठे बहुत होते हैं। अख़बार-पढ़ना निकम्मे और आलसियों का काम है।'

योग्यता और ज्ञान बढ़ाने के लिये, अख़बारों का पढना, अध्यापकों को बहुत ही आवश्यकीय है।

**जनता में प्रचार:—**

हमारे देश की जनता में अभी संवाद-पत्रों का उतना प्रचार नहीं है, जितना होना चाहिये। इसका कारण यह है कि अभी शिक्षा का प्रचार बहुत कम है। देशी नेता इसके लिये जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं कि देश की अविद्या किस भांति दूर हो।

अब रहे थोड़े से पढ़े लिखे, अधिकांश उनमें से न तो पत्रों से प्रेम रखते हैं न रुचि। बहुत से अंगरेज़ी पढ़े लिखे न तो ठीक २ देशी-भाषा बोल सकते हैं न लिख सकते हैं। इससे देशी-भाषा के पत्रों को लेखक भी नहीं मिलते।

**सारांश:—**

राजा और प्रजा की भलाई के लिये, देश के कल्याण के

लिये, जनता में शिक्षा के प्रचार व विस्तार के लिये, अध्यापकों की योग्यता और ज्ञान बढ़ाने के लिये, देशी-भाषाओं का भंडार पूरा करने के लिये समाचार पत्रों के पढ़ने की बड़ी आवश्यकता है।

---

## पुस्तकालय।

सार्वजनिक पुस्तकालय जनसमुदाय की ज्ञान वृद्धि करने मे बहुत सहायता देते हैं। जिन पुस्तकों को बहुमूल्य होने के कारण साधारण-स्थिति का मनुष्य अपने पढने के लिये मोल नहीं ले सकता, वे पुस्तकें वह किसी पुस्तकालय मे जाकर पढ़ सकता है। विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये बहुत पुस्तकें मोल-लेनी पडती हैं, परन्तु यदि वे ग़रीब हुए तो उनको पुस्तकालयों से बहुत सहायता मिल सकती है। बड़े २ शब्द कोष और प्राचीन इतिहास इत्यादि की पुस्तकें बहुत ही कम विद्यार्थी मोल ले सकते हैं। ऐसी पुस्तकों के लिये उन्हें पुस्तकालयों की ही सहायता लेनी पडती है। विद्यार्थियों की सहायता के सिवाय पुस्तकालय अन्य मनुष्यों को भी लाभ पहुंचा सकता है। किसी रोज़गारी मनुष्य को घर पर न तो इतना समय मिलता है कि वह पुस्तकें पढ़े और न उसका घर पर पढ़ने में जी लगता है। यदि समीप ही कोई पुस्तकालय हो तो, वह वहां जाकर पुस्तकें पढने में चित्त लगाता है और उसे पुस्तकें भी उसके मन की सी मिल जाती हैं। पुस्तकालय में जाने से ही, मनुष्यों को पढ़ते हुए देख कर पढ़ने की इच्छा मन में उत्पन्न हो जाती है।

प्रत्येक पुस्तकालय मे पढ़ने वालों को घर के लिये पुस्तकें देने का प्रबंध भी होना चाहिये। भारतवर्ष में तो इस बात

की आजकल बड़ी आवश्यकता है। बहुत से मनुष्य निर्धनता के कारण न तो पुस्तकालय का चंदा दे सकते हैं और न पुस्तकालय की उचित आर्थिक-सहायता कर सकते हैं। जो थोड़े धनवान मनुष्य भारतवर्ष में हैं उनका कर्तव्य है कि, अपने ग़रीब देशवासियों की उन्नति के हेतु अपने द्रव्य से पुस्तकालय खोलें।

यदि बहुत से मनुष्य मिल कर अपने लिये एक पुस्तकालय स्थापित करें, तो भी बहुत लाभ हो। क्योंकि जो पुस्तकें सब के चन्दे से आवेंगी, उनके पढने का अवसर सब को प्राप्त होगा। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने पढने के लिये उतनी पुस्तकें मंगवावे तो उसको चन्दे से कई गुना द्रव्य ख़र्च करना पडेगा, परन्तु मिल कर के एक ही पुस्तकालय से सब का काम चलेगा और ख़र्च भी कम होगा।

---

## ऋतु वर्णन।

ऋतु के भेद

संसार में जाड़ा गर्मी और बरसात यह तीन ऋतु होती हैं। लेकिन संस्कृत पुस्तकों में हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद इस नाम की छैः ऋतुएं वर्णन की गई है।

ऋतु ऋतु में सृष्टि का दिखाव

जाड़ों में अत्यन्त ठंड पडती है, बर्फ़ जम जाती है और रात्रि लम्बी होती है। जाडे से ग़रीब लोग कष्ट पाते हैं, उनका शरीर फट जाता है और होठ फट जाते हैं। धनवान लोग शाल-दुशाले ओढते हैं, बनात और कश्मीरे के कपड़े पहनते हैं और गले में गुलीबन्द बाँधते है, पुष्टिकारक भोजन कर मौज करते हैं।

गर्मी में गर्मी विशेष होती है, आकाश निर्मल होता है

और दिन बड़े होते हैं। दरियाओं में पानी कम हो जाता है, नदी नाले सूख जाते हैं। और उनकी ज़मीन संकुचित होकर फट जाती है । गर्मी नापने के यन्त्र में पारा ऊंचा दिखाई देता है। चौमासे में विशेष पानी पडने से जगह २ पानी ही पानी दिखाई देता है। नदी नाले उमड कर चलते हैं । दरियाव में पानी के ज़ोर से बहने का घडघड़ाहट होता है। पानी बरसने से वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और सब पृथ्वी, हरी चादर ओढ़े दिखाई देती है । किसान लोग खेत-क्यार के धधे में लगते हैं। अनाज के छोटे २ अंकुर उगने पर हिलते हुए बडे सुन्दर मालूम होते है।

**हर एक ऋतु की उपज**

चौमासे के मध्य भाग में सागभाजी और हरा चारा ख़ूब तैयार होता है। बहुतसी घासों में फलियां लगती हैं और बाजरा, ज्वार यह शरद ऋतु में तैयार होते हैं । जाडों में हल्दी, मूंगफली, गेहूं, चना, अरहर और बहुतसी ऐसी ही चीज़े होती हैं। गर्मी मे आम की केरियो से डालियां भर जाती हैं । ऐसे ही जामन आदि बहुत से फल पकते है।

**हर एक ऋतु के त्यौहार**

चैत-बैसाख, वसन्त; जेठ-आषाढ, गर्मी; श्रावण-भादों, वर्षा; क्वार-कार्तिक, शरद; अगहन-पौष, हेमन्त माघ-फाल्गुण, शिशिर। सब ऋतुओं में वसन्त सुन्दर ऋतु है। होली का प्रधान त्यौहार इस ही ऋतु में होता है। न तो जाड़ों के कडकड़ाते जाड़े न गर्मियों की कड़कडाती धूप होती है। हिन्दुओं में इस ऋतु में ख़ूब धूमधाम रहती है। दिवाली और दशहरे का त्यौहार शरद्-ऋतु में होता है। चन्द्रमा को प्रकाश ( शरद की चांदनी ) की शोभा इस ऋतु में विशेष वर्णन की गई है, इसी कारण क्वार की पूर्णिमा को

शरदोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। उत्तरा और चित्रा नक्षत्र की गर्मी इस ऋतु में पड़ती है और ख़रीफ़ की फ़सल तथा घास काटने का काम इसी ऋतु में होता है। मलेरिया की हवा उत्पन्न होने से ज्वर आदि रोग ऋतु के पिछले भाग मे ज़ोर करते हैं। इसी प्रकार रक्षा-बन्धन और जन्माष्टमी के दो बड़े त्यौहार वर्षा में होते हैं। जाड़ों में मकर की सक्रान्ति धूमधाम से मनाई जाती है। इनके सिवाय सैकड़ों छोटे २ त्यौहार होते हैं।

---

## डाक विभाग

पूर्व समय में डाक भेजनेका नियम

अङ्गरेज़ी राज्य से पहले यहां डाक भेजने का प्रवन्ध अच्छा नही था, यदि किसी दूर देश में खवर भेजनी होती तो ऊंटों पर सवार होकर लोग जाते थे, हरकारे दौड़ दौड़ कर डाक ले जाते थे। वहुतसे कवूतरों के द्वारा डाक भेजते थे। इस प्रकार की युक्तियां थी, जिनमें बहुत खर्च पड़ता था। और समाचार ठीक समय पर नही पहुंचता था।

वर्त्तमान समय मे इसकी उन्नति

आज एक पैसे में कलकत्ते से किरांची श्री नगर से रामेश्वर तक समाचार भेज सकते हैं। पोष्टकार्ड निकलने से लोगों को वहुत सुख हुआ है। अधिक समाचार लिखकर दो पैसे के लिफ़ाफ़े में भेज सकते हे। एक तोले तक )॥ में जा सकता है। हर एक तोले पर )॥ का टिकट चढ़ाना पडता है। छपे हुए काग़ज़ इत्यादि पर १० तोले तक )॥ का टिकट लगाना पड़ता है। समाचार-पत्रों की दर इससे भी कम है।

मनीआर्डर

डाक विभाग से परदेश को रुपया भी भेजा जा सकता है। मनीआर्डर की प्रथा से दीन, तथा धनवान सब को

विशेष लाभ हुआ है। परदेश में रहने वाले नौकर-चाकर अपने घरमें सुख-पूर्वक रुपया भेज सकते हैं। इसी प्रकार किसी कष्ट के समय घर से रुपया मनीआर्डर द्वारा शीघ्र मगा सकते हैं। १०) तक की रक़म के दो आने और १००) सैकड़े का १) है।

पारसल — कपड़े, गहने, दवा इत्यादि अनेक प्रकार की चीज़ें पारसल में बन्द करके भेजी जाती है। अधिक मूल्य की वस्तुओं की रक्षा के लिये उसका बीमा होता है। जिससे कि भेजने वालों को कुछ खटका न रहे। १० तोले की पारसल ।) आने मे जा सकती है; तथा बीमा का खर्च और थोड़ा सा देना पड़ता है। भाव जाननेके लिये नाज, दवा, कपड़े के टुकड़े के नमूने सिर्फ़ आध आने में दश तोले तक जा सकते है।

सेविङ्गबेङ्क — दीन लोग क़िफ़ायत करके कुछ रुपया बचाते है उसके लिये सरकार ने सेविङ्गबेङ्क खोले है। एक आदमी हर साल २००) तक और कुल २०००) तक और इसमे जमा कर सकता है। ।) सैकड़ा मासिक ब्याज मिलता है। ब्याज कम होने पर भी ।) तक की छोटी रक़म जमा करते २ एक बडी रक़म इकट्ठी करने को ग़रीबों के लिये सुगम मार्ग है। इच्छानुसार जब चाहे तब वहां से रुपया निकाल सकते हैं।

इस विभाग का परदेशों से सम्बन्ध — यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान आदि पृथ्वी के अनेक देशों का इस विभाग से सम्बन्ध है। दूर देशों के साथ व्यौपार इत्यादि करने का इस से बडा सुख है। पोष्ट आफ़िस में तार घर हो जाने से और भी लाभ हुआ है।

सस्ती डाक पहुंचने का कारण — वर्त्तमान समय में अग्निबोट, रेल, तार, जहाज़ इत्यादि के द्वारा बड़ी जल्दी डाक भेजी जाती है। जहां पर यह नहीं जाते वहां पर हरकारे

और सवार रक्खे जाते हैं ।

---

नोट—इसी प्रकार भिन्न २ विभागों पर निबन्ध लिखे जाते है । जैसे-पुलिस, न्याय-विभाग, आबकारी, माल-गुज़ारी, जंगल, स्वास्थ्यविभाग, चिकित्सा-विभाग, सार्वजनिकविभाग शिक्षाविभाग, आदि । ———

## नहर

नहरों की आवश्यकता पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से हमारा सबंध होने पर यहां भी बहुत से यान्त्रिक-सुधार हुए हैं । इनसे राज्य कार्यों में बड़ी उन्नति हुई है । शिक्षा आदि के प्रचार से लोगों को अपनी हीनता का पता चलता जाता है और वे अनेक प्रकार के सुधारों के लिये प्रयत्न कर रहे हैं । भारतीय-जनता का अधिकांश भाग खेती से अपना निर्वाह करता है। अब कृषि की उन्नति के लिये भी प्रयत्न हो रहे हैं। खेती का मुख्य आधार जलाशय हैं । जिस वर्ष पानी नहीं बरसता खेती का काम बिल्कुल नहीं होता । अन्न की महँगी हो जाती है। लाखों आदमी भूख से तडप तड़प कर मर जाते है । चारे और पानी के अभाव से करोड़ों उपयोगी पशुओं का प्राण नाश हो जाता है । इन डरों के मिटाने के लिये नहरों और तालावों और झीलों के बनवाने की बड़ी जरूरत है ॥

नहरों से लाभ—अकाल का भय दूर हो जाता है, खेती में बहुत कुछ उन्नति हो जाती है । अनेक प्रकार की चीज़ें, अन्न, तरकारी, घास, लकड़ी तथा फल आदि पैदा होने लगते हैं । पशुओं को जल तथा तृण का अकाल नहीं होता । नहरों के द्वारा यात्रा तथा व्यापार में बडी सहायता मिली है । नावों पर चढ़ा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जा सकते हैं।

और यात्रा कर सकते हैं। सरकार को बहुतसा रुपया जल-कर से मिल जाता है और करोड़ों रुपये की लकड़ी तैयार हो जाती है। हजारों बीघा ज़मीन जो बंजर पड़ी रहती है, उपजाऊ हो जाती है।

नहरों का प्रचार और उनकी उन्नति

सब से पहले फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ ने हरद्वार के पास गंगा जी से एक नहर निकाली थी। बहुत दिनो तक वह बुरी अवस्था में पड़ी रही। पीछे से अंगरेज़ों ने उसे ठीक किया। इसके सिवाय सतलज आदि पंजाब की नदियों तथा गंगा, यमुना, और उनकी सहायक नदियों से उत्तरी हिन्दुस्थान में बहुत सी नहरें बनाई गई हैं। इसी प्रकार दक्षिण में भी झीलों तथा नदियों से नहरें बनाई गई हैं; परन्तु जिस देश में २५ करोड के समीप किसान बसते हों वहां १०-२० नहरों से पूरा थोडा ही पड़ सकता है। नदी झील तथा बहुत बड़े २ बन्ध बना कर उनसे नहरें निकालनी चाहियें।

इसी प्रकार रेल, जहाज़ आदि पर निबन्ध लिख सकते हैं।

---

## मां बाप की आज्ञा मानना

मां-बाप ने जन्म दिया, उस दिन से हमारे लिये उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये। जिस समय जन्म हुआ हम उस समय सब प्रकार असमर्थ थे। मां ने दूध पिला कर पाला पोसा और बड़ा किया। कुछ बडा होने पर खाना पीना सिखलाया। मां गीले में सोई हमें सूखे में सुलाया। हमारी बीमारी के डर से वह अपना स्वादिष्ट भोजन नहीं करती थी और कड़ुवी २ औषधि पीती थी। मां बाप ने बोलना सिखाया और पढ़ा लिखा कर चतुर किया। कैसा ही बुरा बालक हो, मां

बुरा नहीं कहती, कहावत है "पूत कपूत हो पर माता कुमाता नहीं होती"। परन्तु क्या पुत्रों को कुपूत होना उचित है? जिस माता ने अनेक कष्ट उठाये उसके प्रति नमकहरामी करके घोर पाप से बच सकते हैं? मां-बाप की आज्ञा मानने में सन्तान कोई विशेष बात नहीं करती। मां-बाप के उपकारों का बदला हम जन्म भर नहीं दे सकते।

मा बाप की आज्ञा मानना उत्तम धर्म है।

काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, हरद्वार, मक्का आदि तीर्थों से बढ़ कर मां-बाप की घर बैठे आज्ञा पालन करना है।

उपर्युक्त यात्रा में कष्ट उठाना पड़ता है, व्यय होता है; परन्तु मां बाप की सेवा रूपी यात्रा में यह नहीं होता। ससार के समस्त धर्मों में मां-बाप की सेवा करना सर्वोपरि धर्म्म समझा गया है। अधिक से अधिक पुण्य इसी का है। श्रवण की पितृभक्ति का उदाहरण पुराणों में प्रसिद्ध है।

उसकी ही तरह मां बाप की भक्ति सब को करनी चाहिये। उसके मां बाप अन्धे थे, उसने उनकी आज्ञानुसार भारत के भिन्न २ स्थानों के ६८ तीर्थों की यात्रा कामरि में बैठाल कर कराई थी।

मावाप की आज्ञा उल्लंघन करना पाप है

मां वाप के इतने अधिक गुणों को न विचार कर, जो मनुष्य अपने मां वाप का सामना करता है और उनकी वृद्धावस्था में उनको दुःख देता है; उसकी कितनी अधिक मूर्खता, कितनी निर्दयता और कितनी अधिकता है। हे प्रभु! ऐसे प्राणी को पत्थर बनाया होता तो कैसा अच्छा होता। वह कपड़े धोने के काम में आता और दूसरों के बिगाड़ने

का आदर्श न होता। शिक्षित मनुष्यों को मां-बाप के प्रति विशेष भक्तिमान होना चाहिये। वयःप्राप्त-मनुष्यों को मां बाप की आज्ञा पालन करनी चाहिये। उनका पुत्र उनके दृष्टान्त से उनका अनुकरण करे, जिससे पिछली अवस्था में वह दुखः न पावे, परन्तु धर्म तथा कर्त्तव्यपालन के विरुद्ध आज्ञा का पालन न करना चाहिये।

---

## सत्य।

व्याख्या

अपने मन में जो बात हो, ठीक २ वैसे ही कहना, उसका नाम सत्य और उस से उलटा कहना झूठ है।

सत्य बोलने का कारण और उसका लाभ

क-सत्य के समान कोई दूसरा गुण ईश्वर का प्यारा नहीं है, ईश्वर ने मनुष्यमात्र को सत्य की ओर प्रवृत्त किया है। छोटे २ बालक और अज्ञानी मनुष्य प्रायः सत्य बोला करते हैं।

ख-सत्य-भाषण से सब झंझट दूर होते हैं। समय पर चाहे धन कम मिले, परन्तु जीव संतोष पाता है। मिथ्या-भाषी को सदैव चिन्ता रहती है। डर या लोभ से अधिकांश लोग झूठ बोलते रहते हैं। परन्तु जो झूठा है सो झूठा ही है। अन्त में उसका फल बुरा ही होता है; जिससे जीव को बड़ा कष्ट होता है।

ग-सत्यभाषी को सदा साहस रहता है, परन्तु झूठे का हृदय रात दिन भयभीत रहता है। सत्यवक्ता को उसी समय कुछ हानि हो तो हो, परन्तु ईश्वर पर विश्वास रख कर वह जी में प्रसन्न रहता है; झूठे को कभी शान्ति नहीं। सब संसार सत्य पर ही स्थित है। बिना सत्य के सब व्यौहार बन्द हो जाँय। एक को दूसरे का विश्वास न रहे। नित नई आपदाएं

उत्पन्न न हों। सच बोलने वाले ही पर विश्वास होता है। और झूठ से विश्वास चला जाता है। सत्य संसार पर अपना सिक्का जमा लेता है।

सत्य से सासारिक विभव बढ़ता है

सच्चे को कभी संसार में हानि नहीं उठानी पडती। इसके सहारे मनुष्य अपने कारोबार में बडी उन्नति करता है। आगरे में कुछ व्यापारियों ने निश्चय किया कि हम ठीक बात कहेंगे। देखते२ उनकी दूकान १०। २० गुनी बढ़ गई; तब तो अन्य लोगों को भी लाचारी से वैसा करना पड़ा।

सत्य वादी ही सच्चा आस्तिक है।

सच से आत्मा में संतोष होता है। सच्ची आस्तिकता का भाव जागृत होता है। सच बात तो यह है कि चाहे मनुष्य किसी सम्प्रदाय का अनुयायी हो, यदि वह सत्य पर विश्वास नहीं करता तो, वह धार्म्मिक ही नहीं हो सकता; क्योंकि जब ईश्वर की सत्ता पर दृष्टि रहती है तो किसी लोभ या डर से झूठ बोल ही नहीं सकता। जो किसी बहाने से झूठा व्यौहार करते हैं, उन्हें ईश्वर पर विश्वास ही नहीं, चाहे बाहर से कैसे ही धार्मिक बनें।

---

## सभ्यता

व्युत्पत्ति और व्याख्या—सभ्यता यह संस्कृत शब्द है। सभ्य सभा में बैठने योग्य जिस में योग्यता हो सो सभ्य। सभा में बैठने का जो गुण है सो सभ्यता। सच्ची सभ्यता सभा में ही देखने में आती है। इससे यह शब्द मूल अर्थ में ही होना चाहिये। साधारण अर्थ इसका यह है कि, अपने यहां आगन्तुकों से साथियों से, मां बाप से, मित्रों तथा अन्य मनुष्यों से उचित बर्त्ताव करना।

भिन्न २ रीति रिवाज वाले तथा स्वेच्छाचारी लोग जो एक दूसरे की भाषा न समझें, कभी पशुओं की भांति दो दिन भी एक साथ नहीं रह सकते। सभा के सदृश मनुष्य-समूह में शान्ति और प्रेम से रहन सहन का नाम सभ्यता है।

संसार में इस गुण की आवश्यकता

बड़ों के साथ आदर का बर्त्ताव करना, उनकी आज्ञा मानना, उनकी हँसी आदि न करना, मित्रों के साथ उचित रीति से बात चीत करना, उनके साथ कपट या घमंड का व्यौहार नहीं करना, छोटे लोगों से बुरा बर्त्ताव नहीं करना, उनसे किसी काम को प्रेम से कराना, उनके ईश्वर-प्रदत्त मानवीय स्वत्वों की रक्षा करना, सभ्यता के चिन्ह हैं।

सभ्यता की भिन्न २ पहचान

सभ्यता में कोई बात झूठी प्रतीत हो, पर वास्तव में वह झूठी नहीं है। क्योंकि किसी के प्रति बुरे विचारों को प्रगट करने के लिये तुम बँधे हुए नहीं हो। किसी को बुरा न लगे यह सोच कर अपने मन के विचारों को दाब रखना असत्य नहीं है; परन्तु परोपकारी स्वभाव का चिन्ह है।

सभ्यता में कुछ असत्यता है ऐसी झूठी दलील।

सभ्यता दो प्रकार की है "सच्ची और झूठी" सच्ची सभ्यता प्रेम से होती है। कुलीन लोगों का एक मुख्य लक्षण है। झूठी सभ्यता स्वार्थी और नीच लोगों में होती है, जो काम पड़ने पर प्रगट हो जाती है, सच्ची सभ्यता वाले मनुष्य ऊंच, नीच, बराबर वाले सब में एकसा प्रेम रखते हैं। झूठी सभ्यता वाले छोटों के साथ अत्याचार करते हैं, बराबर वालों के साथ घमंड और धनी और बड़े लोगों की खुशामद करते हैं।

सभ्यता के भेद

अ-सभ्यता से अपना समय मेलजोल और आनन्द में व्यतीत होता है। — सभ्यता से लाभ

इ-बहुत से मनुष्यों के साथ प्रेम उत्पन्न होता है, इस कारण जब आवश्यकता हो सहायता मिलने में देर नहीं लगती।

उ-सुसभ्य मनुष्य की योग्यता और गंभीरता दुनियां में प्रगट होती है। किसी का मान खंडन करने की अपेक्षा उसको प्रसन्न रखना, यह सच्चा और सब से हो सकने वाला परोपकार है। यह परोकार सभ्यता से सहज में हो सकता है।

सभ्यता यह सर्वोत्तम सद्गुण है। संसार में मनुष्य-जाति को इस सद्गुण की बड़ी आवश्यकता है। सभ्यता प्रगट करने में असत्य कुछ नहीं है। सच्ची सभ्यता सच्चे वीर और कुलीन मनुष्य का मुख्य लक्षण है। बालकों को प्रारंभ से ही सभ्यता सिखानी चाहिये, जिससे बड़े होकर सभ्य बन सकें। — सारांश और बोध

---

## परोपकार

परोपकार-( पर-पराया, उपकार-भला करना ) पराया भला करना वा कोई पुण्य का काम करना परोपकार कहलाता है। महर्षि व्यास ने कहा है "परोपकार पुण्याय पापाय पर पीड़नम्" अर्थात् परोपकार करना पुण्य है, दूसरों को दुःख देना पाप है। — अर्थ व्युत्पत्ति

क-अंधे, लङ्गड़े, लूले मनुष्यों की सहायता करना तथा अनाथ-फंड में रुपया देना परोपकार है। — सच्चा परोपकार

ख-जो लोग जन-हित के काम में सदा लगे रहते हैं उन को कुछ देना उत्तम दान है। धर्म-नीति का उपदेश करने वाले जन-हित का ही काम करते हैं। पवित्र साधु सन्यासी और सच्चे देश-भक्तों की गणना इसी में है।

ग-'अधिक मनुष्यों को बहुत लाभ पहुंचे', ऐसे काम में धन देना बड़ा परोपकार है। पाठशालाएं खोल कर विद्या-दान दिलवाना, औषधालय खोल कर रोगियों की चिकित्सा कराना, जहां पानी न हो कुए बनवाना, प्याऊ लगवाना, उच्च परोपकार हैं।

घ-धर्म से संचित किये धन का सदुपयोग करना सच्चा परोपकार है। अधर्म के पैसे से दान करना, करने से न करना अच्छा है। कहावत है 'मुहरों की चोरी करें, करें सुई का दान' ऐसा कभी नहीं करना चाहिये।

ङ-कुटुम्ब के मनुष्य मां, बाप, स्त्री आदि जिनका पोषण करना अपना कर्त्तव्य है उसको न करके धर्मात्मा बनना उचित नहीं है। जिनका आधार अपने ऊपर है उनको दुःखित करके दान करना अनुचित है।

च-जो सुदृढ़, अलमस्त, व्यसनी, अशिक्षित हों ऐसे लोगों को दान नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसे लोगों को दान देने से आलस्य को उत्तेजना मिलती है। शास्त्र में स्थान २ पर लिखा है 'पात्र को देख कर दान देना चाहिये,' सत्पात्र को दान देना ही सच्चा पुण्य है। कुपात्र को दान देने वाला पापी है; क्योंकि न जाने वह कैसे स्थान पर खर्च करे।

क-वर्त्तमान समय में हमारे देश में प्रायः पात्र कुपात्र को
वर्त्तमान समय में विना देखे दान देते हैं, इसी से भिखारी बढ़ गये हैं
प्रचलित परोपकार और देश को हानि पहुँचती है।

ख-द्वार पर आया हुआ विमुख लौट जाय, वह जो सांस लेगा वा शाप देगा ऐसा सोच कर जो दान किया जाता है वह भी सच्चा दान नहीं है।

बहुतसे भय से दान करते हैं।

ग-बहुत से धनवान अपने यश के लिये वा खिताब प्राप्त करने के लिये दान देते हैं। इससे निस्सन्देह कुछ काम अच्छे होते

है, यह बात तो सच है; पर दान करने का वास्तविक हेतु उनके मन में अंतःकरण से नहीं उपजता ऐसा दान उचित नहीं।

परोपकार के भेद—परोपकार तन, मन, धन से होता है। अपने पड़ोस में कोई अपङ्ग रहता हो, उसका काम मुफ़्त करना, तन का परोपकार है। अपने देश में कला-कौशल की वृद्धि हो ऐसी पुस्तकें प्रगट करना, विद्वानों का मन का परोपकार है। अपनी कमाई में से देश व धर्म के लिये दशांश देना, धन का परोपकार है।

सार—परोपकार यह सर्वोत्तम सद्गुण है। सच्चे भाव से सब का कल्याण करने का ठीक हेतु मन में रख कर यथाशक्ति तन, मन और धन को पुण्य कार्य्य में लगाना चाहिये।

---

## समाज-सेवा।

भारतवर्ष की अज्ञानता धीरे २ दूर होकर अब भारतवासी मोहनिद्रा से जागने लगे हैं। उनकी आँखों के सामने से अज्ञानतम का पर्दा क्रमशः हट रहा है। भविष्य के लिए ये लक्षण अत्यन्त शुभसूचक हैं। भारतवासियों में स्वार्थपरता का भाव भी कम होता जाता है। शिक्षित भारतीय अपने को किसी ख़ास समाज का व्यक्ति न समझ कर संपूर्ण देश का एक आवश्यकीय अंग समझता है। इससे यह मतलब नहीं कि भारतीयसमाज में स्वार्थ का भाव विलकुल ही नहीं रहा; परन्तु भारतीय नेताओं तथा समाचार-पत्रों के उदार विचारों से यह जान पड़ता है कि शीघ्र ही भारतवर्ष, संयुक्त-भारत के नाम से पुकारा जायगा। जिस प्रकार प्रकृति में वहुतसी शक्तियां छिपी हुई हैं, उसी प्रकार भारतवासियों में भी छिपी हुई अनेक

शक्तियां वर्तमान हैं। यदि ठीक तरह उनका उपयोग किया जाय तो देश को बहुत लाभ पहुँच सकता है। जैसे कोई नदी एकाएक विस्तीर्ण होकर प्रवाहित नहीं होती, वरन् अनेक जलाशयों के जल से विस्तीर्ण होकर वह बड़ी होती है उसी तरह यदि प्रत्येक भारतवासी देशोन्नति के कार्य्य में हाथ न बटाये तो भारतवर्ष भी एक संयुक्त-राष्ट्र नहीं बन सकता है। यदि भारतवासी संसार की उन्नत-जातियों में अपनी गिनती कराना चाहें तो उन्हें उचित है कि सब से पहिले वे अपने देश में शिक्षा का प्रचार करें। इस अल्प समय में जापान की आश्चर्यजनक उन्नति होने का प्रधान कारण भी शिक्षा का प्रचार ही है। तीस करोड़ भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध सिर्फ सरकार नहीं कर सकती, इसके लिए स्वय भारतवासियों को यत्न करना चाहिये।

शिक्षा अपने घर और परिवार ही से आरम्भ होनी चाहिये। गृह-शिक्षा में स्त्रियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि यदि स्त्रियां शिक्षिता होंगी तो उनकी सन्तानें भी सुयोग्य होंगी। पारिवारिक-जीवन के सुधार में स्त्रियों की सहयोगिता की अत्यन्त आवश्यकता है। स्त्रियों की अज्ञानता देशोन्नति के पथ में बडी रुकावट है। कालेज के विद्यार्थियों को अपने परिवार मे शिक्षा प्रचार के लिए विशेष ध्यान देना चाहिये। निरर्थक बातों में समय नष्ट करने की अपेक्षा गर्मी की छुट्टियों में यदि वे शिक्षाप्रचार के कार्य्य पर ध्यान दें तो देश को बड़ा लाभ होगा। लाहोर के पादरी फ्लेमिङ्ग साहब ने ( सोशल हैल्पफुलनेस ) नामी पुस्तक में कुछ पंजाबी विद्यार्थियों द्वारा शिक्षाप्रचार के प्रशंसनीय कार्य्य का वर्णन किया है। शिक्षाप्रचार के लिए गाँवों में जानेवाले

विद्यार्थियों को सादी पोशाक में रहना चाहिये, उन्हें अपने माता-पिता की सेवा में प्रस्तुत रहना चाहिये क्योंकि माता पिता के प्रतिकूल चलने से गृह-शिक्षा कदापि पूरी नहीं हो सकती। पादरी फ़्लेमिङ्ग साहब ने अपनी पुस्तक में एक विद्यार्थी के शिक्षाप्रचार के कार्य्य का वर्णन इस प्रकार किया है, वह विद्यार्थी अपने घर की स्त्रियों के अन्धविश्वास को वैज्ञानिक-सिद्धान्तों द्वारा दूर करने की चेष्टा किया करता था। सध्या समय बहुतसी स्त्रियों को विज्ञान के नये नये आविष्कार बताये जाते थे। इस प्रकार का काम सचमुच ही बहुत प्रशसनीय है। कालेज के विद्यार्थी अपने परिवार को शिक्षित बनाकर नगर या ग्राम की ओर ध्यान दें और असमर्थों को शिक्षित बनाने का यत्न करें।

यदि ग्राम में पाठशाला न हो तो उन्हें उसकी प्रतिष्ठा की चेष्टा करना चाहिये। यदि इसके लिए मकान न मिले तो किसी वृक्ष के तले बैठ कर भी बड़े मज़े में पाठ दिया जा सकता है। यदि इस प्रकार से शिक्षाप्रचार का कार्य्य आरम्भ हो तो शीघ्र ही गांव गांव में विद्या का प्रचार होगा। इसके साथ ही नीच जातियों की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिये। भारतवर्ष की साम्पत्तिक-उन्नति के लिये उन लोगों की सेवा आवश्यकीय है। यदि उन लोगों को अपनी गिरी हुई अवस्था का ज्ञान हो जाय तो वे अपने को सुधारने का प्रयत्न करेंगे। पादरी साहब का कथन है कि इसके लिए एक दिन की और दूसरी रात की पाठशालाएं स्थापित हों। दिन की पाठशालाएं ११ से ३ बजे तक खुली रहें जिससे बालक अपने माता पिता की सहायता भी कर सकें। मि० पराँजपे का अनुमान है कि ऐसी पाठशालाओं के लिये वार्षिक १००) रुपये व्यय होंगे। पेंशन प्राप्त-

शिक्षक इसमें शिक्षक नियुक्त किये जाँय। रात की पाठशालाएं उनके लिये खुलना चाहियें जिन्हें दिन में अवकाश न हो। इसके लिये काम करने वालों का एक दल बनाना चाहिये। अब काम करने का समय है, ज़बानी जमा-खर्च से काम नहीं चल सकता। इस प्रकार के कामों से देश की दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हो जायगा। किसी देश की उन्नति एकाएक न होकर धीरे २ होती है। यदि इस देश के प्रत्येक शिक्षित इन बातों पर ध्यान दें तो बात की बात में उन्नति हो सकती है। (मर्यादा)

---

## विद्यार्थियों को छुट्टी किस तरह बितानी चाहियें।

विद्यार्थियों को छुट्टियां किस तरह बितानी चाहियें—इस पर मैं कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं। ये विचार मेरे निज के ही नहीं हैं; मैंने शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले देश-प्रेमियों के वक्तव्यों से जो कुछ एकत्रित किया है, उसी का मैं पाठकों को दिग्दर्शन करा देना चाहता हूं।

हम लोगों का शरीर ठीक एक मशीन के समान है। यदि मशीन से सदा ही काम लिया जाय तो वह थोड़े ही दिनों में घिस कर बेकार हो जायगी। इसलिए समय समय पर उस को विश्राम देकर उसके कल पुर्ज़ों को ठीक कर देना ज़रूरी होता है। इसी प्रकार यदि हम अपने शरीर अथवा शरीर के किसी अङ्ग से सदा ही काम लिया करें और उसको कभी भी विश्राम न दें तो काल-क्रम से वह कमजोर और काम करने के अयोग्य हो जायगा। फिर भी यदि मशीन के कुछ ही भागों से काम लिया जाय और बाक़ी को यों ही बेकार छोड़ दिया जाय तो यह निश्चय है कि जिस भाग से काम नहीं लिया जायगा, वह मोर्चा खा जायगा अन्त में दुर्बल तथा

नष्ट हो जायगा और जिन भागों से बराबर काम लिया जायगा वे भी घिस कर कमज़ोर हो जायँगे। ठीक इसी प्रकार, यदि हम सदा दिमाग़ से ही काम लिया करें और शरीर को योंही बेकार छोड़ दें तो हम कमज़ोर और बेकार हो जायँगे।

स्कूलों और कालेजों में पुस्तकों का इतना बडा बोझ हमारे ऊपर लदा होता है कि हम कठिनता से अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय निकाल सकते हैं। लेकिन हमें इससे हताश होकर बैठ न जाना चाहिये। जब हमें करना है तो उसके लिये उपयुक्त-अवसर खोजना चाहिये। स्कूलों कालेजों में बड़ी बडी छुट्टियां दी जाती हैं। उदाहरण के लिये गर्मी की छुट्टी ही ले लीजिये। यह किसी भी स्कूल कालेज में दो ढाई महीने से कम नहीं होती। इन्हीं छुट्टियों में हम भले प्रकार शारीरिक आवश्यकताओं और अन्य ऐसे कामों को, जिनके करने के लिए हमें पढ़ने के समय अवसर नहीं मिलता, पूरा कर सकते हैं।

छुट्टियों के दिनों में भी हमें उसी प्रकार दिमाग से काम नहीं लेना चाहिये जैसा पढ़ाई के दिनों में। छुट्टियों में प्रत्येक विद्यार्थी को आठ नौ घंटे तक शयन करना चाहिये। स्वास्थ्य के लिये यह बहुत हितकर होगा। इससे दिमाग़ को बहुत कुछ विश्राम मिलेगा और उसकी शक्ति बढ़ेगी। शयन के पश्चात् प्रातःकाल दैनिक कामों से निपट और कुछ हलका जलपान कर खुले मैदान में टहलने, कुश्ती लड़ने, मुगदर हिलाने, डंड करने तथा अन्य प्रकार की कसरतों में अधिकांश समय बिताना चाहिये। ऐसा करने से उनकी मांस-पेशियां मज़बूत होंगी, हाथ पांव सबल होंगे और शरीर हृष्टपुष्ट तथा

सर्दी गर्मी के सहने योग्य होगा। जब गर्मी कुछ तेज़ होने लगे तो उपर्युक्त कामों से विश्राम लेना तथा भोजनादि करना चाहिये। जब दुपहर की कड़ी धूप की लू चलने लगे तो किसी शान्तिमय और शीतलस्थान में जाकर प्राचीन भारत के वीरों और ऋषियों के चरित्र और कीर्तियों का मनन करना और उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। मनन के बाद कुछ देर तक विचार करना और अर्वाचीन भारत की तुलना प्राचीन भारत से करनी चाहिये। ऐसा करने से यह लाभ होगा कि उन्हें प्राचीन गौरव, सभ्यता और महत्त्व का ज्ञान होगा और अपनी वर्तमान दशा का चित्र आगे खिंच जायगा, जिसका अवलोकन कर वे अपने प्राचीन गौरव तथा महत्त्व को प्राप्त करने मे दत्तचित्त हो जायँगे।

इसके बाद जब संध्या की ठंडी ठंडी हवा बहने लगे तो उन्हें अपने ग्राम अथवा नगर में घूमघूम कर अपने गरीब भाइयों का दिग्दर्शन करना, यथासाध्य उनकी मदद करना, उन्हें अज्ञान के फंदे से छुड़ाना, उनको विद्या पढने के महत्त्व और लाभ को बताना, उनको अपनी हीन-दशा का ज्ञान करा देना और उनके अधिकार तथा स्वत्त्व उन्हें समझा देना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम में एक वाचनालय खोलना और उसमें कुछ समाचारपत्रपत्रिकाओं के मँगाने का प्रवन्ध कर देना और ऐसी ऐसी किताबों को पढ़ कर अपने अपढ़ भाइयों को सुनाना चाहिये, जिनसे उन्हें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान हो जाय। संध्या समय खुले मैदान में टहलना, खेल कूद में स्वयं भाग लेना और छोटे छोटे बालकों को खेल में शरीक करना और किसी शान्तिमय स्थान में जाकर स्थिर-चित्त हो प्रकृति देवी

की शोभा का अनुभव करना भी ज़रूरी है। संध्या का समय इस तरह बिताने से विद्यार्थी स्वास्थ्यलाभ के साथ साथ मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्य के कुछ अशों की भी पूर्ति कर सकेंगे। रात्रि में अपने परिवार के छोटे २ बालक बालिकाओं के सो जाने के एक घंटे पहिले ही भोजनादि से निपट जाना चाहिये और एक घंटे तक उन्हें सदुपदेश तथा मातृभूमि के प्रति प्रेम उत्पन्न कराने वाली बातें सुनाना चाहिये। इसके पश्चात् परमात्मा का स्मरण कर तथा उससे अपनी उन्नति की प्रार्थना कर सो जाना चाहिये।

प्यारे युवक विद्यार्थियो! यदि आप उपर्युक्त रीति पर अपनी छुट्टियों को व्यतीत करोगे तो स्वयम् लाभ उठाने के अतिरिक्त देश को भी लाभ पहुँचाओगे। आप लोगों में नया उत्साह और नई उमगें भर आयेंगी और छुट्टी के बाद आप अपने अभीष्ट कर्म में बड़े चाव तथा आनन्द से लग जायगे। आपको यह समझ लेना चाहिये कि आपके ऊपर केवल आपके और आपके परिवार ही के कामों का भार नहीं है; परन्तु उस जननी जन्मभूमि ( जिस के अन्नजल से आप का शरीर पला है ) के प्रति भी आपके बहुत से कर्त्तव्य हैं। यदि आप उनको पूरा करने में ज़रा भी चूकियेगा तो आपको कृतघ्नता का पाप लगेगा जिसका प्रायश्चित्त होना बड़ा कठिन है। आपके पढ़ लिख जाने पर मातृभूमि आप से बहुत कुछ आशा करती है। यह चाहती है कि आप अपने उन अपढ़ तथा दीन भाइयों की भी सहायता करें जो अज्ञानान्धकार में पड़े हैं। अपने शरीर को बलिष्ठ, हट्टा कट्टा तथा प्रत्येक प्रकार की मुसीबतों को सहन करने योग्य बनाइये जिससे आपके द्वारा उत्तरोत्तर उसकी सेवा होती रहे तथा इसका मस्तक संसार में ऊंचा

रहे। आप ही भारत माता के भावी विद्वान्, राजनीतिज्ञ और नेता हैं और वह दिन भी निकट है जब आप उच्च शिक्षा पाकर नागरिकों का भार और जवाबदेही अपने ऊपर लेंगे + निकटवर्ती भविष्य ही में आपको जीवन होड़ में पदार्पण करना होगा और उसके लिए आपको अभी से तैयारी करनी चाहिये। इस होड़ में कमज़ोर और बुज़दिले लोगों का गुज़र नहीं। इसलिए अपने शरीर को बलिष्ठ बनाने में लग जाओ। मैं आशा करता हूं कि प्रत्येक विद्यार्थी, जिसके हृदय में देश प्रेम का थोड़ा भी अंश है, इस अवसर से लाभ उठावेगा।

विद्यार्थियों के शिक्षित संरक्षकों और माता-पिताओं से मेरा यह अनुरोध है कि वे अपने बालकों को छुट्टियों के दिनो में किताब के कीड़े न बनने दें। जिन पर उनकी टकटकी लगी हुई है, जिनसे वे बहुत कुछ आशा करते हैं, वे ही यदि निर्बल, कमज़ोर और अयोग्य हो जायँगे तब तो लेने के देने पड जायँगे। इसलिए अपने ही लाभ की दृष्टि से उनका यह परम कर्त्तव्य है कि वे अपने बालकों से छुट्टियों में ऐसे शारीरिक परिश्रम के काम लें जिससे वे शक्तिशाली और कर्मवीर हों। भारत की भावी जाति का निर्माण इन्हीं लोगों के हाथ में है और यदि वे इस काम को होशियारी और दूरदर्शिता के साथ अच्छी तरह न करेंगे तो मातृभूमि के प्रति बड़ा भारी अन्याय करने के दोषी होंगे। संरक्षक माता पिताओं को अपने बालकों को दुर्बल, अकर्मण्य और उत्साह-रहित बना कर मातृभूमि के भार को बढ़ाने का कोई भी अधिकार नहीं है। ( मर्यादा )

---

## सुधारक।

ढोल पर कराघात होने से शब्द पैदा होता है, शब्द से वायु-मण्डल उद्विग्न होता है और लहरें पैदा होती हैं। ये लहरें आकर कान के परदे पर पड़ती हैं और हम शब्द सुनते हैं। फूल से ज्योति की लहरें निकल कर आंखों में प्रवेश करती हैं। दृष्टि शक्ति इसी क्रिया पर निर्भर है। अभिप्राय यह है कि प्रायः जिन २ वस्तुओं का हमें ज्ञान होता है उन पदार्थों से लहरें निकल कर हमारे विशेष ज्ञानतन्तुओं पर अपना प्रभाव डालती हैं। वस्तुओं की भांति हमारे पडोसी मनुष्य तथा पशु आदि भी नाना प्रकार की लहरों द्वारा अपनी भिन्न२ स्थितियों से हमें दुखी या सुखी करते हैं। हां, यह अवश्य है कि उनका प्रभाव सब पर समान नहीं पड़ता,—सभी मृतक को देख, मृत्यु अवश्यम्भावी जान, राज पाट को लात मार, महात्मा गौतम बुद्ध नहीं वन जाते, किन्तु उनका असर पड़ता अवश्य है। इस प्रकार सहानुभूति की सृष्टि होती है। रोगी को देख स्वर्ग की कामना न करने वालों के भी हृदय में एक प्रकार की बेचैनी उत्पन्न हो जाती है और केवल इसी बेचैनी को दूर करने के निमित्त वे रोगी की सेवा में लग जाते हैं। जिनका हृदयरूपी दर्पण सतोगुण की जितनी ही पालिश से आभूषित है उनको उक्त बेचैनी उतनी ही असह्य जान पड़ती है। उपकार इस बेचैनी का आत्मीय है।

जड़-जगत में सहानुभूति और परोपकार स्वभावतः पाये जाते हैं। वृक्ष के फल, नदी का जल इत्यादि दूसरे के उपभोगार्थ होते हैं, इन बातों को फिर से दुहराने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्यों में अन्य प्राणियों की अपेक्षा एक विशेषता है—वह विशेषता बुद्धि की है। तलवार की धार तीक्ष्ण होती

है। उसका प्रयोग शत्रु की गर्दन उडाने के लिये होता है। कभी २ उससे आत्महत्या करने वाले की भी सहायता हो जाती है। उसकी धार नही रुकती। विद्या बुद्धि की भी गति तलवार सी है। नदी की धार में शक्ति है, आप चाहें तो उससे विद्युत्शक्ति उत्पन्न कर नगरों को ज्योतिमय बना दे सकते हैं और उसी शक्ति का दुष्प्रयोग यह होता है कि बलिया तीन बार उजड़ चुका। जिस विज्ञान ने रेल, तार, फ़ोनोग्राफ़ एवं मुद्रण-यंत्र सी उपकारी वस्तुओं का आविष्कार किया, उसी के गर्भ में विषाक्त गैस, बाम्ब और फ़ील्ड गन्स भी छिपे थे। हाँ, मनुष्य में बुद्धि औरों से अधिक है—वह सृष्टि-शिरोमणि है। बुद्धि में शक्ति है, शक्ति से काम होता है। इस बुद्धि के बल से मनुष्य अपने में उन गुणों को स्थित करता है, जो प्रकृति ने उसे नहीं दिये थे, जैसे व्योमयान द्वारा पृथ्वी के आकर्षण के विरुद्ध ऊपर उड़ना, किन्तु यह जान कर कष्ट होता है कि मनुष्य में यह भी अनुचित शक्ति, न जाने किस उद्देश्य से, ईश्वर ने दी है कि वे अपने स्वाभाविक गुणों को भूल भी सकते हैं—वे अपने हृदयरूपी निर्मल आइने को स्वार्थ की कालिमा से अन्धा कर सकते हैं। फल यह होता है कि बिजली तैयार होने की जगह बलिया को तीन बार उजड़ना पड़ता है। जब से सृष्टि हुई तब से लेकर आज तक गुलाब और कमल एक ही स्वर्गीय हास्य-ज्योति से आलोकित हैं; कोकिला आज भी वही कुहू २ अलापती है, जैसा उसने राम के अयोध्या लौटने पर त्रेता में अलापा था-उसका सुख ज्यों का त्यों बना है; प्रातःकाल में पूर्व दिशा आज भी उसी प्रकार हँसती है जैसा वह कृष्णाष्टमी को द्वापर में हंसी थी। किन्तु हमारी दशा वैसी नहीं है। आज जो समाज, सुख और समृद्धिशाली बना है सम्भव है कल उसे औरों को

जूतियां उठानी पड़ें। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

सुख पाने पर भी मनुष्य व्यसनी हो इतना स्वार्थी बन जाता है कि, अपने सिवाय उसे संसार में और कुछ सूझता ही नहीं। मनुष्य का यही स्वार्थ और पागलपन ईश्वर को अवतार लेने के लिये बाध्य करता है—लूथर और गौतम का आना इसी के लिये हुआ है। जब कहीं आग लगती है या विशेष गर्मी पड़ती है आस पास की शीतल वायु वहां ठंडक पहुंचाने के लिये चारों ओर से दौड़ पड़ती है। जब गर्मी से मैदान के लता-पत्रादि सूखने लगते हैं, पर्वतराज हिमालय का हृदय पिघल जाता है-हिम पानी हो जाता है और गंगा जमुना में बाढ़ आ जाती है। कहतसाली से प्रजा मर रही ह, किन्तु हमारे ताल्लुक़ेदार साहब इज़ाफ़ा लगान अवश्य करेंगे। जब वसन्त के पूर्व कंटक मय गुलाब के सहवास से भ्रमर व्याकुल हो उठता है, तब सारे वृक्षों की पत्तियाँ पीली पड जाती हैं। किन्तु मनुष्य जाति में इन गुणों की न्यूनता होने से समाज को प्रायः सुधारकों और सईदों की आवश्यकता होती है।

यह तो हुई सुधारक की आवश्यकता की बात। अब और सुनिये। दुनियां में कोई हाट इस समय ऐसी नहीं है जहां सचाई का गला न घोंटा जाता हो। देश जाति और समाज-सुधारकों में ऐसे पुरुष हैं या नहीं; इसका विचार करना चाहिये। आप देश की किसी भी ऐसी सस्था पर दृष्टिपात करें, जिसका संचालन सुधारकों द्वारा होता है तो, आपको मालूम होगा कि वहां 'हनोज़ दिल्ली दूरस्त' के सिवाय और कुछ नहीं है। और जन-साधारण को यह कह कर सान्त्वना दी जाती है कि 'कारज धीरे होत है, क्यों मन होत अधीर' काम धीरे २ होता है किन्तु होता अवश्य है। वर्षा से खेती हरी भरी होती

है, किन्तु वह पानी नदी, तालाब और समुद्रों का होना चाहिये। यदि समुद्र का न होकर वह भाप हिमालय के हिम की बनी होगी तो अधिक सम्भव है कि ओले गिरेंगे और (जैसा जाड़े की बरसात में होता है) खेती का नाश हो जायगा। अभिप्राय यह है कि सभी सुधारक, संस्थाओं का सञ्चालन नहीं कर सकते। उनके सुधार की जगह और है। जैसे हिमालय का बर्फ़ नदियों के जल की वृद्धि कर सकता हैं, किन्तु वह बादलों का सगा बनने के अयोग्य है।

'सुधारक' यह एक बडा महत्त्व और दायित्त्वपूर्ण पद है। इसकी वेदी पर जीवन तक अर्पण करना पड़ता है। जब ससार के सब मनुष्य इस पद के अयोग्य हो जाते हैं तो अवतारों की आवश्यकता पड़ती है। सुधार ईश्वरीय कर्त्तव्य है—सुधारक ईश्वर की इच्छा पालन करता है, जिससे संसार में और कोई अच्छा काम नहीं है। सुधार नाना प्रकार के हैं और सुधारकों की सख्या भी अनन्त होनी चाहिये। शंकर और दयानन्द इने गिने होते हैं। सभी वैसे नहीं हो सकते और न ऐसी आवश्यकता ही है। आवश्यकता है ऐसे होनहार नवयुवकों की जो यह समझते हों कि समाज-सुधार रूपी मन्दिर के निर्माण में बाबू रमानाथ इंजिनियर की आवश्यकता जितनी है उतनी ही या उससे भी बढकर रामू और सोहन इँटा ढोने वालों की भी है। कोई आवश्यकता नहीं है कि अपने भाई को निरोग करने के लिये जगन्नाथ मिश्र वैद्यक पढ़े। इसके लिये और वैद्य हैं। उन्हें भाई की शुश्रूषा करनी चाहिये। इससे कोई यह न समझे कि सुधार-विषय दो एक का काम है और शेष को इससे उदासीन रहना चाहिये। कदापि नहीं ज़रूरत इस बात की है कि हम समझें कि सुधार के कई अङ्ग हैं और प्रत्येक अङ्ग समान आवश्यकीय है। न.नि.

## हमारी निद्रा और जागृति।

जब मनुष्य की शक्तियां काम करते २ थक जाती हैं, तब उसे विश्राम की आवश्यकता होती है, यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के अनुसार महाभारत में अपनी समस्त सञ्चित शक्तियां व्यय कर देने पर हमें भी विश्राम की आवश्यकता हुई। हम लेटे और थोड़ी ही देर में ऐसे सोये कि तन-बदन की सुधि न रही।

अकस्मात् १२ वीं शताब्दी में स्वदेश पर अरबी सभ्यता का आक्रमण होने से हमारी निद्रा भङ्ग हुई। हम जाग उठे। हमने देखा कि भारत की शक्तियां हमारी निद्रा के कारण जर्जरित हो गई हैं। समस्त देश पारस्परिक कलह का गृह बना हुआ है। विदेशी इस सुअवसर से लाभ उठा देश में घुस आए हैं और मनमाने ढङ्ग से हमारे चिररक्षित धन, वैभव, ज्ञान को नष्ट कर रहे हैं। हमने अपनी दुरवस्था को समझा। हमने दृढ़ निश्चय किया कि जीवन रहे या जाय हम देश के सङ्कट अवश्य दूर करेंगे। बस फिर क्या था, पानीपत और कुरुक्षेत्र की भूमि पुनः एक बार वीर-घोष की प्रतिध्वनि से परिपूर्ण हो गई। चहुं ओर रक्त की नदियां बह कर रणचण्डी के पैर पखारने लगीं। वीर राजपूत अपने शिरसुमनों को स्वाधीनता देवी के चरणों पर अर्पण करने लगे। स्वातन्त्र्य-प्रेम की उज्ज्वल नदी का प्रवाह अदम्य वेग से वहना आरम्भ हुआ। पृथ्वीराज, मालदेव, चन्द्रसेन, प्रताप आदि अनेक व्यक्तियों ने इस पुण्यतटिनी के प्रवाह में स्नान कर अपने नश्वर शरीर को अमर किया। चकित-दृष्टि से अरबी सभ्यता ने देखा कि सुषुप्त सिंह को जगा कर उसने अपना सर्वनाश आप ही उपस्थित कर लिया है। उसने हमें पुन: सुषुप्तावस्था पर पहुंचाना चाहा, अनेक औषधियाँ बनाई गईं, कई चतुर वैद्य बुलाए

गए और अन्त में अकबर के मस्तिष्क से निकलने वाली "कूट नीति" नामक औषधि हमको सहानुभूति रूपी दूध में मिला कर पिलाई गई, जिससे हम पुनः पूर्ववत् जड़ अवस्था को प्राप्त हो गए।

कुछ कालोपरान्त अकबर के प्रपौत्र औरङ्गज़ेब ने हमारी अद्भुत जागृति और धर्मप्रियता स्वचक्षुओं से देखने की इच्छा से बेहोशी दूर करने वाली जज़िया नामक औषधि हमको सुंघाई। औषधि का असर होते ही हमको दो एक छींकें आईं और साथही निद्रा के दूर होने की देर थी कि भारत की चतुः सीमा खड्गों की खड़खड़ाहट से गूंज उठी। चारों ओर से होने वाली शतघ्नियों और लघुनालिकाओं की भीषण गर्जना दुर्गम बनों और गिरिकन्दराओं को कँपाती हुई अत्याचार का हृदय विदीर्ण करने लगीं। स्थान २ पर योगिनियां हाथ में खप्पर लिए छिन्नमस्ता के सम्मुख नृत्य करने लगीं। कट २ शब्द कर विकट अट्टहास करने वाले भैरव ने पुनः भूत वैतालों सहित दुर्गा ( दुर्गा दास ) और शिवराज के दर्शन किए। हमारी स्वातंत्र्यप्रियता और धार्मिक दृढता का दूसरा प्रमाण इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से अङ्कित हुआ। औरङ्ग-ज़ेब ने बहुत चाहा कि हम किसी प्रकार पुनः निद्रित हो जांय, किन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुआ और अन्त में शासक और शासित का भाव मिटने पर ही शान्ति स्थापित हुई। हमने देखा कि जो अबतक हमारे लिए विदेशी थे वे अब हमारे देशवासी भाई हैं: अतः विशेष रक्तपात की आवश्यकता नहीं। यह विचार आते ही विश्राम की ठानी, गहरी छानी और लम्बी तानी। संसार ने करुणापूर्ण दृष्टि से देखा कि क्षत्रिय जाति अपना कार्य अधूरा छोड़ कर ही निद्रा के

भूत हो गई। जिसके बल पर भारत की अन्य जातियां शताब्दियों से सुखनिद्रा में निमग्न थीं वही जाति अपनी प्राणप्रिय प्रजा को दूसरों से पददलित होने के लिए सुषुप्त-अवस्था में हीं छोड़ चिरकाल के लिए अचेतन अवस्था में पड गई। यद्यपि पराधीनता राक्षसी उसे चारों ओर से घेरती जाती थी, किन्तु उसे इसकी कुछ भी खबर नहीं थी। हा ! राजपूत जाति, क्या अन्त में तेरे असाधारण आत्मत्याग और स्वातन्त्र्य प्रियता का यही परिणाम निकलना था। शोक ! शोक !! महाशोक !!!

रक्षकों के निद्रित होने पर, संसार-चक्र की अनेक चपेटों के आघात से भारत की अन्य जातियों की निद्रा भङ्ग हुई। उन्होंने भी देखा कि उनके रक्षक अचेतन अवस्था में पडे हैं। उन्होंने बहुत चेष्टा की, किन्तु हमने करवट न बदली। अन्त में न्यायप्रिय महारानी विक्टोरिया ने इस देश का शासन अपने हाथों में लिया और शान्ति स्थापित कर यहां की प्रजा को अपनी बिगडी दशा सुधारने का अवसर दिया। क्रमशः भारत की सब जातियों ने निद्रा त्यागी और वे अपनी स्थिति को जान कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होने लगीं, और सौभाग्य से आज का दिन हमारे सम्मुख है। आज भारत की कदाचित् कोई जाति होगी, जो अपने उन्नति-पथ को परिष्कृत करने में न लगी हो, किन्तु हमारी कुम्भकर्णी निद्रा ज्यों की त्यों है। ईश्वर, क्षत्रिय-जाति की रक्षा करें।

राजपूतो, स्मरण रक्खो, ऐसा शान्तिपूर्ण सुअवसर फिर न मिलेगा। उठो, देश की निद्रा को पूर्णतः भगा दो। इस समय तुम्हारे साम्राज्य को भी तुम्हारी वीरता की अपेक्षा है। अतएव उठो, अपनी बिगड़ी हुई दशा को सुधारो और देश

को हानि पहुँचाने के पाप से बचो। हम तुम्हें उद्दाम आचरण करने से निषेध करते हैं। तुम उस ज्ञान का सञ्चय करो, जिससे भारत का कल्याण हो। उसी मार्ग का अनुकरण करो, जिससे तुम्हारी जाति अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करे।

( क्षत्रिय मित्र )

## शुद्ध जीवन के उपाय।

अच्छे स्वास्थ्य के लिये शरीर और मन की शुद्धता अत्यन्त आवश्यक है। विशेष करके युवावस्था में अशुद्धता के इतने अवसर आते हैं कि मित्रता के सम्बन्ध से कुछ सलाह और उपाय बतलाना उपयोगी ही सिद्ध होगा। इसके लिये नीचे हम कुछ उपाय बतलाते हैं:—

१—सब से प्रथम विचारों को शुद्ध रखने की आवश्यकता है। इसका अभिप्राय यही नहीं कि अशुद्ध विचारों से दूर रहो; परन्तु अपने अन्तःकरण में शुद्ध विचार की इतनी अधिकता रक्खो कि बुरे विचारों को स्थान ही न मिले।

अपना कार्य्य करने के समय मन लगा कर उसे करो और उसके हो जाने पर दिलबहलाव का कुछ काम करो या कोई अच्छी पुस्तक पढ़ो। नित्य का परिश्रम ईश्वर-प्रदत्त एक सुख है, जिससे हमारा आचरण शुद्ध होकर शरीर और मन को बल प्राप्त होता है। शुद्ध-जीवन के लिये किसी प्रकार का व्यायाम करना जरूरी है, व्यायाम से शरीर में रुधिर का संचालन अच्छी तरह होता है और शरीर में वात का बढ़ना रुक जाता है। इससे गाढी नींद आती है, जो शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

२—क्षुधा को अपने वश में रक्खो। भोजन साधारण और प्रकृति के अनुकूल होना चाहिये। क्षुधा को वश में कर लेने से काम-क्रोधादि अन्य वासनाएं भी वश में हो जाती हैं। युवा

मनुष्यों के लिये मांस-भोजन हानिकारक है क्योंकि इससे मनुष्य की अधोवृत्तियां जागृत होकर काम-क्रोधादि की वृद्धि होती है।

मित्र और साथी अच्छे होने चाहियें, यदि अच्छे साथी न मिलें तो बुरे साथियों का साथ न करना चाहिये। युवक को शुद्ध वाणी बोलना चाहिये। यदि उसके सामने कोई दूषित बात कहे तो उससे घृणा करनी चाहिये। इसके लिए मानसिक बल की विशेष आवश्यकता है, परन्तु जिस युवक में यह बल नहीं उसको मनुष्य कहना उचित नहीं है।

किसी युवक को इस विचार से धोखा न खाना चाहिये कि स्वास्थ्यपूर्वक रहने के लिए विषय-वासनाओं में प्रवृत्त होना आवश्यक है। स्त्रियों के लिए शुद्ध-जीवन उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिए। हमारे समाज की रीतियों में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। जबतक कोई युवक अपने विचारों को शुद्ध बनाने और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने को समर्थ न हो तबतक वह किसी कन्या से विवाह करने को अधिकारी नहीं है। इसलिए कभी धोखा न खाना चाहिये क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक और न्यायी है। जो जैसा पेड लगायेगा, वैसा ही फल पायेगा।

## गुप्त बुराइयों का परिणाम।

आजकल प्रायः सब युवकों में जो बुरी आदतें पाई जाती हैं, उनसे शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का बल ही नष्ट नहीं होता बल्कि उनसे मानसिक-बल का भी ह्रास होता है। इससे मस्तिष्क निकम्मा हो जाता है। जो इनके शिकार बन जाते हैं, उनका सर्वथा नाश ही अवश्यम्भावी है। आजकल ऐसे अभागे युवकों की सख्या कम नहीं है, इसलिए स्वास्थ्य-

सम्बन्धी लेखों द्वारा इसकी अधिक चर्चा होनी चाहिये। यदि ये दत्तचित्त होकर अपनी दशा सुधारना चाहें, तो वह सुधर सकती है। इसका होना स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ नियमों पर निर्भर है। इन अभागों के लिए तो यह विशेष उपयोगी ही है, परन्तु जो अभी तक इस बुराई से बचे हुए हैं उनको भी इस से अधिक लाभ हो सकता है।

## स्वास्थ्य किस प्रकार से सुधर सकता है ?

१—सब से प्रथम निराश न होकर यह विचार करो कि हमारी अवस्था ऐसी असाध्य नहीं है जैसी कि हम सोचते है।

२—इलाज के लिए नोटिस और अख़बारों की औषधियों या उन वैद्यों और हकीमों पर ध्यान न दो जो अख़बारों में नोटिस निकालते है, क्योंकि सुयोग्य वैद्यों के पास नोटिस दिये बिना ही बहुत रोगी आ जाते हैं। किसी वैद्य या डाक्टर से अपना हाल साफ २ कह कर उसकी राय लो और नित्य के आहार-विहार के बारे में उससे पूंछतांछ करो। विषाक्त या अधिक गर्म औषधियों का सेवन करना हानिकर होता है।

३—किसी प्रकार के मादक-द्रव्य का सेवन मत करो, यदि करते हो तो छोड़ दो। तम्बाकू भी न खाओ न पीओ। तेज़ चाय वा काफ़ी का सेवन भी न करना चाहिये।

४—सदा प्रसन्नचित्त रहो। मन में अच्छे होने का निश्चय करो। अपने सब विचार स्वास्थ्य पर एक करो। जो काम करने हों उन्हें स्वास्थ्य के लिए करो। भोजन, व्यायाम, निद्रा आदि सभी स्वास्थ्य के लिए करो। सदा सुखदायक और शुद्ध मित्रों का साथ कर प्रत्येक प्रकार की दुर्बलता को दूर करने की कोशिश करो। शोक, निराशा और चिन्ता को सदा अपने से दूर करो। शुद्ध वायु और फल फूल-युक्त उद्यानों

और पहाड़ियों पर भ्रमण करो और प्रकृति के मनोहर दृश्यों को देख कर उनसे प्रेम करो। घर से बाहर जाकर यथासम्भव शुद्ध वायु में घूमो।

५—परमेश्वर की आज्ञा का पालन करो और अपना जीवन शनैः २ सुधारते जाओ, और उस उच्चकोटि के आनन्द को प्राप्त करो जो उस परब्रह्म परमात्मा की इच्छा है।

६—भूतकाल को भूल जाओ। तुमने जो भूलें और अपराध पहिले किये हैं, उनको भूल जाओ। ईश्वर पश्चात्ताप करने वाले के अपराधों को क्षमा कर देता है। वह नहीं चाहता कि तुम उनका भार सदा अपने ऊपर लिये रहो। यदि तुम बीती हुई बातों का ही विचार करते रहोगे तो कभी वर्तमान समय के गुरुतर कार्य्य को नहीं कर सकोगे। याद रक्खो कि प्रत्येक दिन बिलकुल नया और शुद्ध आता है, मानो प्रत्येक दिन तुम अपने जीवन की पुस्तक में एक नया पन्ना उलटते हो। तुम उस साफ़ और खाली पत्र पर आनन्द देने वाले और स्मरणीय शुद्ध-विचार, उच्च-अभिलाषा, दया और प्रीतियुक्त वचन और अच्छे २ कार्य्य लिख सकते हो। प्रत्येक दिन का तुम्हारा यही कर्तव्य है। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो इस सुअवसर को हाथ से न जाने दो। तुमको यथासम्भव सब से अच्छा जीवन बिताना और ईश्वर से उस सहायता और दया की आशा रखनी चाहिये, जो वह प्रार्थना करने वाले को देता है। मर्य्यादा

---

## आलोचनात्मक-निबंध।

व्याख्यात्मक-प्रबंधों के प्रकरण में दो एक आलोचनात्मक प्रबंध भी आगये हैं। कहीं २ व्याख्या करते २ आलोचना की झलक भी आगई है। पर विशेष रूप से आलोचनात्मक प्रबंधों

के नमूने इस भाग में नहीं दिये जाते। इस पुस्तक के दूसरे भाग अर्थात् "आदर्श लेखमाला" में दिये जांयगे। सर्वत्र आलोचनात्मक विषय पृथक् नहीं होते। जब किसी वर्णन, चरित्र, घटना, तथा व्याख्या को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगजाँय तो उसी में आलोचना का भाव आ जायगा। दूसरे भाग में आलोचनात्मक प्रबंधो के अतिरिक्त विविध-विषयों पर बहुत ही आवश्यकीय, सामयिक और शिक्षाप्रद सिद्धहस्त लेखकों द्वारा लिखे हुए प्रबंध होंगे जो प्रसिद्ध पत्र व पत्रिकाओं से संग्रहीत किये गये हैं। ऐसे प्रबंधों में भाषा वैज्ञानिक, विचार स्वतंत्र और क्रम स्वाभाविक होता है।

## उपसंहार।

यों तो विषय अनन्त हैं और लेखकों के ढङ्ग भी अनेक हैं। न तो यह आवश्यकीय ही है और न संभव ही, कि हर प्रकार के ढांचे, नमूने तथा हर विषय का ज्ञान एक, दो, प्रबंध पुस्तकों में भर दिया जासके। पहले अध्यायों में इसके लिये पर्याप्त लिखा जा चुका है। रचना के लिये प्रबल निरीक्षण-शक्ति, मनन-शील बुद्धि, अध्ययन शील स्वभाव और भाषा के प्रौढ़-परिज्ञान की आवश्यकता है। यह पुस्तक मार्ग दिखाने के लिये है न कि गम्य स्थान; साधन है न कि साध्य। पहले आँखें खोलो, देखो, विचार करो अपने वाक्यों में उसे लिखो; सुनो, समझो, अपने वाक्यों में लिखो; पढ़ो, गुनो, सारांश अथवा विस्तार अपने वाक्यों में लिखो; यही लेखक बनने के लक्ष्य की सीढ़ी है, यही रचना सीखने का ढङ्ग है। हरएक विद्यार्थी को सरस्वती, विद्यार्थी तथा ऐसा ही कोई अन्य मासिकपत्र नियमपूर्वक पढ़ना चाहिये और हर विषय की नई तथा पुरानी पुस्तकें-जो चरित्र बिगाड़ने वाली न हों देखना चाहियें, उपदेश-

जनक गल्पें इसके लिये बहुत लाभदायक होंगी । प्रयाग के विद्यार्थी पत्र में बहुत से विषय विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य निकला करते हैं । हरएक उन्नत-शील विद्यार्थी को उसे अवश्य पढ़ना चाहिये । प्रसिद्ध गल्पलेखक प्रेमचन्द जी की सप्त सरोज (सात कहानियां) मैंने पढ़ीं, बहुत संतोष हुआ । इसके सिवाय, बंकिम-निबंधावली, गुप्त-निबंधावली, सत्यनिबंधावली निबंध मालादर्श आदि विविध निबंधों पर अनेक पुस्तकें हैं जिनमें मनुष्य-जीवन उच्च बनाने की बहुत कुछ सामग्री है। साहित्य सम्बंधी परिज्ञान बढ़ाने के लिये श्रीयुत मिश्रबंधुओं का हिन्दी नव-रत्न तथा साहित्य का इतिहास अच्छी सामग्री है। ओंकार प्रेस के आदर्श जीवन चरित्र पढ़ने योग्य हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने अनेकानेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित कराई है, हिन्दी शब्द सागर अद्वितीय कोष है । बम्बई की हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर का० ने अनेक उपयोगी पुस्तकें निकाली हैं। ग्रंथ रत्नाकर मंडली खडुआ ने भारत का इतिहास विस्तीर्ण रूप से निकालना आरंभ किया है। खड्गविलास प्रेस बॉकीपुर से स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र जी के ग्रंथ समूह प्रकाशित हुए हैं। और भी अनेक पुस्तकें हैं जिनसे विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं। कुछ अध्यापक महाशय ऐसे होते हैं कि स्कूली पुस्तकों के अतिरिक्त किसी अच्छी पुस्तक को विद्यार्थी के हाथ में देखते ही ख़ाक हो जाते हैं। न तो उन्हें महात्मा रामतीर्थ की जीवनी पढने देते हैं न विवेकानन्द के उपदेश। भगवान् ऐसे अध्यापकों को सुमति दे । विशेष फिर कभी निवेदन करूंगा। लेखक

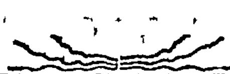
---

गोस्वामि प० व्रजनाथ शर्मा द्वारा
दी कारोनेशन प्रेस, सीतलागली आगरा में मुद्रित।

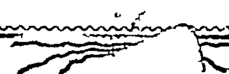
# निवेदन ।

बहुत दिनों की आशा आज पूर्ण हुई। चिरकाल से निश्चय किये थे कि भट्ट जी के चटकीले रसीले लेख-पुष्प चुन उनके प्रेमियों के सन्मुख रक्खें; लेकिन जब ही मन किया कांटे नज़र आये। कांटों में सब कांटे सुलझ जा सकते थे, पर अर्थ-कृच्छ के चोखे कांटे बराबर ही चुभते रहे। अस्तु, किसी न किसी तरह यह अवसर हाथ आया और अब यह एक उपदेशात्मक रसीली लेखमालिका पाठकों के सन्मुख रक्खी जाती है। यह माला टटकी तत्काल की गुथी हुई नहीं है। भट्ट जी के स्वसम्पादित ३२ साल के "हिन्दी प्रदीप" में स्थान स्थान पर ये लेख जगमगा चुके हैं। पर इनकी तरोताज़गी, चटकीलेपन और रसीलेपन में कहीं से भी बासीपन की गंध नहीं झलकती। भट्ट जी के रसीले पाठक जब ही इनका स्वाद चक्खेंगे कहीं से भी सुगन्ध की कमी इनमें न पावेंगे।

"हिन्दी प्रदीप ग्रन्थावली" के नाम से भट्ट जी की लेखनी से निकली हुई तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस "ग्रन्थावली" की यह चौथी पुस्तक "साहित्य-सुमन" के नाम से आज हिन्दी प्रेमियों के भेंट की जाती है। इस लेख-माला में साहित्य और नीति सम्बन्धी सब २५ लेख के गुच्छे



अभ्युदय प्रेस प्रयाग में
बदरीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से मुद्रित ।



पर कोई लेख लिखते थे भाषा भी उसी के अनुसार रहती थी। यदि वे हास्य या ठठोल लिखते थे तो भाषा भी वैसी ही हास्य और ठठोल से भरी रहती थी, यदि किसी पर कटाक्ष करते थे तो भाषा भी व्यंग्यपूर्ण रहती थी, यदि शृङ्गार रस लिखते थे तो भाषा भी रसीली और शृङ्गारमयी रहती थी और यदि कोई गम्भीर विषय उठाते तो भाषा भी गम्भीर और साहित्य के गुणों से पूर्ण रहती थी। यह भी भट्ट जी के लेखो का एक प्रधान गुण है। इस संग्रह में दिये गये लेखों से पाठकों को भट्ट जी की भाषा का पूरा पूरा रसास्वादन मिल जायगा अस्तु।

भट्टजी के ३२ साल के "हिन्दी प्रदीप" में अनेकों उत्तम उत्तम उपन्यास, नाटक, कवियों के जीवन चरित्र, प्राचीन पुस्तकों की समालोचनाएं, हास्य रस के लेख तथा सामाजिक, राजनैतिक और साहित्य विषयक अन्यान्य प्रबन्ध निकल चुके हैं। वे सब यदि पुस्तकाकार छपा दिये जांय तो विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कोना अवश्य भर जायगा। यही समझ यह संग्रह प्रकाशित करने का साहस किया गया है।

हमें "हिन्दी साहित्य सम्मेलन," से बहुत बडी आशा है कि जिस तरह उसने स्वर्गीय भट्टजी के रचे हुए "सौ अजान और एक सुजान" को आदर दे सम्मेलन की 'प्रथमा परीक्षा' में स्थान दिया उसी तरह वह इस "साहित्य-सुमन" को भी इस योग्य समझ अपनावेगा। सम्मेलन ही से नहीं वरन काशी विश्व-विद्यालय से भी हम यही आशा रखते हैं कि वह निष्पक्षपात होकर स्वर्गीय भट्ट जी के लेखों को भी अपनी पाठ्य पुस्तकों

चुन चुन के सजाये गये हैं। इन लेखों को पढ़ कर भट्ट जी की लेखनी का पूर्ण स्वाद मिल सकता है। भट्ट जी उन थोड़े से प्रतिभाशाली लेखकों में से थे जिन्होंने आधुनिक हिन्दी भाषा के गद्य की नींव डाली है। उन्होंने अपने "हिन्दी प्रदीप" के द्वारा बहुतों को हिन्दी लिखना सिखा दिया। भट्टजी का "हिन्दी प्रदीप" सदा शुद्ध हिन्दी की ज्योति से जगमगाता रहा। वह अन्य भाषाओं के उच्छिष्ट लेखों की सहायता से कभी प्रकाशित नहीं हुआ। जिस तरह से भट्टजी की भाषा शुद्ध हिन्दी रहती थी उसी तरह उनके लेख भी उन्हीं के विचार की उपज रहते थे, किसी की छाया अथवा अनुवाद नहीं। वे जो कुछ लिखते थे अपने दिमाग़ से लिखते थे। भट्टजी के लेखों में यह प्रधान गुण है।

भट्टजी की हिन्दी में भट्टजी की छाप लगी हुई है। उनकी भाषा उन्हीं की अपनी भाषा है। भट्ट जी की भाषा से एक अनोखा रस टपकता है, जो अन्य लेखकों की भाषा में मिलना प्रायः कठिन है। जिस तरह से वे अकारण संस्कृत के शब्दों को अपने लेखों मे नहीं ठूसते थे उसी तरह वे उर्दू फ़ारसी के शब्दों को अपनी भाषा से बीन बीन कर अलग नहीं करते थे। हिन्दी लिखते समय वे संस्कृत की विद्वत्ता का बोझ अपनी लेखनी से दूर रखते थे। जब कभी संस्कृत साहित्य की परख अपने हिन्दी पाठकों को कराने के लिए वे उसपर अपने अनोखे निबन्ध लिखते थे, तो अपनी विद्वत्ता के भार से पढनेवालों को दवाते न थे, बल्कि संस्कृत कवियों की कृति और सौन्दर्य को वे अपनी ही स्वाभाविक सरल भाषा में लिखकर पाठकों के सामने रखते थे। भट्टजी जिस विषय

पर कोई लेख लिखते थे भाषा भी उसी के अनुसार रहती थी। यदि वे हास्य या ठठोल लिखते थे तो भाषा भी वैसी ही हास्य और ठठोल से भरी रहती थी, यदि किसी पर कटाक्ष करते थे तो भाषा भी व्यंग्यपूर्ण रहती थी, यदि श्रृङ्गार रस लिखते थे तो भाषा भी रसीली और श्रृङ्गारमयी रहती थी और यदि कोई गम्भीर विषय उठाते तो भाषा भी गम्भीर और साहित्य के गुणों से पूर्ण रहती थी। यह भी भट्ट जी के लेखों का एक प्रधान गुण है। इस संग्रह में दिये गये लेखों से पाठकों को भट्ट जी की भाषा का पूरा पूरा रसास्वादन मिल जायगा अस्तु।

भट्टजी के ३२ साल के "हिन्दी प्रदीप" में अनेकों उत्तम उत्तम उपन्यास, नाटक, कवियों के जीवन चरित्र, प्राचीन पुस्तकों की समालोचनाएं, हास्य रस के लेख तथा सामाजिक, राजनैतिक और साहित्य विषयक अन्यान्य प्रबन्ध निकल चुके हैं। वे सब यदि पुस्तकाकार छपा दिये जांय तो विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कोना अवश्य भर जायगा। यही समझ यह संग्रह प्रकाशित करने का साहस किया गया है।

हमें "हिन्दी साहित्य सम्मेलन," से बहुत बडी आशा है कि जिस तरह उसने स्वर्गीय भट्टजी के रचे हुए "सौ अजान और एक सुजान" को आदर दे सम्मेलन की 'प्रथमा परीक्षा' में स्थान दिया उसी तरह वह इस "साहित्य-सुमन" को भी उस योग्य समझ अपनावेगा। सम्मेलन ही से नहीं वरन काशी विश्व-विद्यालय से भी हम यही आशा रखते हैं कि वह निष्पक्षपात होकर स्वर्गीय भट्ट जी के लेखों को भी अपनी पाठ्य पुस्तकों

में स्थान देकर अपनी उदारता और गुणग्राहकता का परिचय देगा। यदि भट्ट जी के लेखों का आदर काशी 'विश्वविद्यालय' और 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' ऐसी जातीय संस्थाओं में न हुआ तो फिर प्रयाग विश्वविद्यालय या अन्य संस्थाओं से क्या आशा की जा सकती है। अस्तु, कभी तो भट्ट जी के लेखों का समुचित आदर होगा, क्योंकि—

"कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"

विनीत

प्रकाशक।



# प्रवचन।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन पं० बालकृष्ण भट्ट वर्तमान युग की हिन्दी के जन्मदाताओं में समझे जाते हैं। वह भारत माता के गत शताब्दि के उन अल्प-संख्यक सुपुत्रों में थे जो किसी न किसी रूप मे मातृभूमि की सेवा को अपने जीवन का प्रधान उद्देश बना, नर-जन्म के साफल्य का उदाहरण संपादन कर गये हैं।

इस गुटिका मे जो भट्ट जी के लेख संगृहीत हैं वे उनकी उच्च धारणा और अनाक्रम्य सत्य-प्रियता के प्रतिबिम्ब हैं; उनकी सार्वलौकिक हित-निष्ठा के साथ ही उनकी असाधारण प्रतिभा और बुद्धि-प्रखरता के साक्षी हैं। इनका अध्ययन पाठक को असामान्य मनस्विता के असीम साम्राज्य में लेजाकर अपरिमित मनोज्ञता की सैर कराता है। जिस समय के लिखे हुए यह लेख हैं उस समय का चिन्तन करते सहृदय पाठक के हृदय में लेखक की सुरुचि और प्रवणता की ओर प्रेमाप्लुत श्रद्धा उदित होती है, और उनका चटकीलापन चित्त में चिरस्थिरता प्राप्त करता प्रतीत होता है। शैली का यत्किञ्चित् अनोखापन जो यत्र तत्र पाया जाता है वह भी इनकी उपादेयता को बढाता ही है और एक विशेष कौतूहल का उत्पादक है।

हिन्दी भाषा की चारों ओर प्रतिपल फैलती हुई बढ़नी में यह आशा है कि यह संग्रह अल्प काल ही में अनेक आवृत्तियों का सौभाग्य अनुभव करेगा, एक अल्प बात है। आशा है कि समय की प्रगति के साथ इन लेखों की ओर लोक-रुचि उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती जायगी।

श्री पद्मकोट,
प्रयाग, फाल्गुन कृ० १४
सं० १६७५

श्रीधर पाठक।

# विषय-सूची।

॥ श्रीः ॥

# साहित्य-सुमन ।

अर्थात्

## भट्टजी के चटकीले लेखों का संग्रह ।

( १ )

### साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है ।

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिप्लुत रहती है वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रगट हो सकते हैं। मनुष्य का मन जब शोक-संकुल, क्रोध से उद्दीप्त, या किसी प्रकार की चिन्ता से [illegible] रहता है तब उसकी बुद्धिवृत्ति शोका-कुल, उदासीन और मलिन रहती है उसके कण्ठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो कुढ़ी [illegible] समान बेसुरी, बेताल, बेलय या करुणापूर्ण, मन्द तथा विकृत-स्वर संयुक्त होती है। वैसे जब चित्त आनन्द की लहरी से [illegible] हो नृत्य करता है और सुख की परम्परा में मग्न रहता है उस समय मुख विकसित कमल सा प्रफुल्लित, नेत्र मानों हँसते हुए, और वह अलमस्ती और चालाकी से जिन्दगी को बसर करता

करते हैं; कण्ठध्वनि भी तब वसन्त-मदमत्त कोकिला के कण्ठ-रव से भी अधिक मीठी और सोहावनी मन को भाती है। मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुलङ्घनीय प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है, जिसमें कभी को क्रोधपूर्ण भयङ्करगर्जन, कभी को प्रेम का उच्छ्वास, कभी को शोक और परितापजनित हृदय-विदारी करुणा-निस्वन, कभी को वीरता गर्व से बाहुबल के दर्प में भरा हुआ सिंहनाद, कभी को भक्ति के उन्मेष से चित्त की द्रवता का परिणाम अश्रुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्गार देखा जाता है। इसलिए साहित्य यदि जन समूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाय तो सङ्गत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।

हमारे पुराने आर्यों का साहित्य वेद है। उस समय आर्यों की शैशवावस्था थी, बालकों के समान जिनका भाव, भोलापन, उदार भाव, निष्कपट व्यवहार, वेद के साहित्य को एक विलक्षण तथा पवित्र माधुर्य प्रदान करते हैं। वेद जिन महापुरुषों के हृदय का विकाश था वे लोग मनु और याज्ञवल्क्य के समान समाज के आभ्यन्तरिक भेद, वर्ण-विवेक आदि के झगड़ों में पड़ समाज की उन्नति या अवनति की तरह तरह की चिन्ता में नहीं पड़े थे; कणाद या कपिल के समान अपने अपने शास्त्र के मूलभूत बीजसूत्रों को आगे कर प्राकृतिक पदार्थों के तत्व की छान में दिन रात नहीं जुने रहते थे, न कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष आदि कवियों के संप्रदाय के अनुसार वे लोग कामिनी के विभ्रम-विलास और लावण्य-

लीला-लहरी में गोते मार २ प्रमत्त हुए थे। प्रातःकाल उद-योन्मुख सूर्य की प्रतिभा देख उनके सीधे सादे चित्त ने विना कुछ विशेष छानबीन किये इसे अज्ञात और अजेय शक्ति समझ लिया। इसके द्वारा वे अनेक प्रकार का लाभ देख क़ानन-स्थित-विहङ्ग-कूजन समान कलकल रव से प्रकृति की प्रभात वन्दना का साम गाने लगे; जल-भार-नत श्यामला मेघमाला का नवीन सौन्दर्य देख पुलकित गात्र हो कृत-ज्ञता-सूचक उपहार की भांति स्तोत्र का पाठ करने लगे; वायु जब प्रबल वेग से बहने लगी तो उसे भी एक ईश्वरीय शक्ति समझ उसके शान्त करने को वायु की स्तुति करने लगे इत्यादि। वेही सब ऋक् और साम की पावन ऋचाएं हो गईं। उस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था इसी से उनका साहित्य राजनीति की कुटिल उक्ति युक्ति से मलिन नहीं हुआ था। नये आये हुए आर्यों की नूतन ग्रथित समाज के संस्थापन में सब तरह की अपूर्णता थी सही पर सब का निर्वाह अच्छी तरह होता जाता था; किसी को किसी कारण से किसी प्रकार का अस्वास्थ्य न था; आपस में एक दूसरे के साथ अब का सा बनावट का कुटिल बर्ताव न था। इस लिए उस समय के उनके साहित्य वेद में भी कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सौहार्द्, कपट वृत्ति, बनावट और चुनाचुनी ने स्थान नहीं पाया। उन आर्यों का धर्म अबके समान गला घोंटनेवाला न था। सब के साथ सब की खान पान द्वारा सहानुभूति रहती थी। उनके बीच धार्मिक मनुष्य अब के धर्मध्वजियों के समान दाम्भिक वन महाव्याधि सदृश लोगों के लिए बलप्रद न थे। सिधाई, भोलापन और उदारभाव उनके साहित्य के एक एक अक्षर से टपक रहा है। एक बार महात्मा ईसा ए-

सुकुमारमति बालक को अपने गोद में बैठाकर अपने शिष्यों की ओर इशारा करके बोले कि जो कोई छोटे बालकों के समान भोला न बने उसका स्वर्ग के राज्य में कुछ अधिकार नहीं है। हम भी कहते हैं जो सुकुमार-चित्त वेदभाषी इन आर्यों की तरह पद पद में ईश्वर का भय रख, प्राकृतिक पदार्थों के सौन्दर्य पर मोहित हो, बालकों के समान सरलमति न हो उसका स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना अति दुष्कर है।

इन्हीं प्राकृतिक पदार्थों का अनुशीलन करते करते इन आर्यों को ईश्वर के विषय में जो जो भाव उदय हुए वेही सब एक नए प्रकार का साहित्य उपनिषद् के नाम से कहलाए। जब इन आर्यों की समाज अधिक बढ़ी और लोगों की रीति-नीति और बर्ताव में विभिन्नता होती गई तब सबों को एकता के सूत्र में बद्ध रखने के लिए और अपने अपने गुण कर्म से लोग छल विच्छल हो सामाजिक नियमों को जिसमें किसी प्रकार की हानि न पहुचावें इसलिए स्मृतियों के साहित्य का जन्म हुआ। मनु, अत्रि, हारीत, याज्ञवल्क्य आदि ने अपने अपने नाम की संहिता बनाय विविध प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक और धर्म-सम्बन्धी विषयों का सूत्रपात किया। इन्हीं के समकालीन गौतम, कणाद, कपिल, जैमिनि, पतञ्जलि आदि हुये जिन्होंने अपने अपने सोचने का परिणाम रूप दर्शन शास्त्रों की बुनियाद डाली। यहां तक जो साहित्य हुए यद्यपि वेद की भाषा का अनुकरण उनमें होता गया परन्तु नित्य नित्य उनकी भाषा अधिक अधिक सरल, कोमल और परिष्कृत होती गई। तथापि उनकी गणना वैदिक भाषा में ही की जाती है। इन स्मृतियों और आर्ष ग्रन्थों की भाषा को हम वैदिक और आधुनिक संस्कृत के बीच की

भाषा कह सकते हैं। अब से संस्कृत के दो भेद होने लगे और वेद तथा लोक के नाम से कहे जाते हैं। पाणिनि के सूत्रों में, जो संस्कृत पाठियों के लिए कामधेनु का काम दे रहे हैं और जिनसे वैदिक और लौकिक सब प्रयोग सिद्ध होते हैं, लोक और वेद की निरख अच्छी तरह की गई है। और इससे वेद और लोक के अलग अलग भेद से साबित होता है कि संस्कृत किसी समय प्रचलित भाषा था जो लोगों के बोल-चाल के वर्ताव में लाई जाती थी।

वेद के उपरान्त रामायण और महाभारत साहित्य के बड़े बड़े अङ्ग समझे गये। रामायण के समय भारतीय सभ्यता का प्रेमोच्छ्वास-परिप्लावित नूतन यौवन था, किन्तु महाभारत के समय भारतीय सभ्यता क्षतिग्रस्त हो वार्द्धक्य भाव को पहुंच गई थी। रामायण के प्रधान पुरुष रघुकुलावतंस श्री रामचन्द्र थे और भारत के प्रधान पुरुष बुद्धि की तीक्ष्णता के रूप, कूट-युद्ध विशारद, भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण या उनके हाथ की कठपुतली युधिष्ठिर थे। रामायण के समय से भारत के समय में लोगों के हृदय भाव में कितना अन्तर हो गया था कि रामायण के दो प्रतिद्वन्द्वी भाई इस बात के लिए विवाद कर रहे थे कि यह समस्त राज्य और राज्य-सिंहासन हमारा नहीं है यह सब तुम्हारे ही हाथ में रहे, अन्त में रामचन्द्र ने भरत को विवाद में पराजित कर समस्त साम्राज्य उनके हस्तगत कर आप आनन्द-निमग्न-चित्त हो रसोद्गम वनवासी हुए। वहीं महाभारत में दो भाई राज्य करने के लिए कलह करने पर उद्यत हुए कि जितने में सुई का अग्रभाग ढँक जाय इतनी पृथ्वी भी बिना युद्ध के न दूंगा "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव"। परिणाम में यह

भाई दूसरे पर जयलाभ कर तथा जङ्घा में गदाघात और मस्तक पर पदाघात से उसे बध कर भाई के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हो सुख में फूल अनेक तरह के यज्ञ और दान में प्रवृत्त हुआ। रामायण और महाभारत के आचार्य क्रम से कविकुलगुरु बाल्मीकि और व्यास थे। पृथ्वी के और और देशों में इनके समान या इनसे बढ़कर कवि नहीं हुए ऐसा नहीं है। यूनान देश में होमर, रूम देश में वरजिल, इटली में डेएटी, इङ्गलैंड में चासर और मिलटन अपनी अपनी असाधारण प्रतिभा से मनुष्य जाति का गौरव बढाने में कुछ कम न थे। परन्तु विचित्र कल्पना और प्रकृति के यथार्थ अनुकरण में चिरन्तन वृद्ध बाल्मीकि के समान होमर तथा मिल्टन किसी अंश में नहीं बढ़ने पाये, जिनकी कविता के प्रधान नायक श्री रामचन्द्र आर्य जाति के प्राण, दया के अमृतसागर, गाम्भीर्य और पौरुष दर्प की मानो सजीव प्रतिकृति थे। वे प्रीति और समभाव से महा नीच जाति चांडाल तक को गले से लगाते थे। उन्होंने लङ्केश्वर से प्रवल प्रतिद्वन्द्वी शत्रु को भी कभी तृण के बराबर भी नहीं समझा। स्वर्णमण्डित सिंहासन और तपोवन में पर्णकुटी उन्हें एकसी सुखकारी हुई। उनके स्मितपूर्वाभिभाषित्व और उनकी बोलचाल की मुग्धमाधुरी पर मोहित हो दण्डकारण्य की असभ्य जाति ने भी अपने को उनका दास माना। अहा! धन्य श्री रामचंद्र का अलौकिक माहात्म्य, धन्य बाल्मीकि की कल्पना-सरसी जिसमें ऐसे ऐसे स्वर्णकमल प्रस्फुटित हुए।

काल के परिवर्तन की कैसी महिमा है जो अपने साथ ही साथ मानुषी प्रकृति के परिवर्तन पर भी बहुत कुछ असर पैदा कर देता है। बाल्मीकि ने जिन जिन बातों को अवगुण

समझ अपनी कल्पना के प्रधान नायक रामचन्द्र में वरकाया था वेही सब व्यास के समय में गुप्त हो गई, जिनकी कविता का मुख्य लक्ष्य यही था कि अपना मान, अपना गौरव, अपना प्रभुत्व जहां तक हो सके न जाने पावे। भारत के हर एक प्रसङ्ग का तोड़ अन्त में इसी बात पर है। शत्रु-संहार और निज कार्य-साधननिमित्त व्यास ने महाभारत में जो जो उपदेश दिये हैं और राजनीति की काट ब्योंत जैसी जैसी दिखाई है उसे सुन बिस्मार्क सरीखे इस समय के राजनीति के मर्म में कुशल राजपुरुषों की अकिल भी चरने चली जाती होगी। इससे निश्चय होता है कि प्रभुत्व और स्वार्थसाधन तथा प्रवञ्चना परवश भारतवर्ष उस समय कहां तक उदार भाव, समवेदना आदि उत्तम गुणों से विमुख हो गया था। युधिष्ठिर धर्म के अवतार और सत्यवादी प्रसिद्ध हैं पर उनकी सत्यवादिता निज कार्य साधन के समय सब खुल गई। "अश्वत्थामा हतः नरो वा कुञ्जरो वा" इत्यादि कितने उदाहरण इस बात के हैं विस्तारभय से नहीं लिखते।

महाभारत के उपरान्त भारत और का और ही हो गया। इसकी दशा के परिवर्तन के साथ ही साथ इसके साहित्य में भी बड़ा परिवर्तन हो गया। उपरान्त बौद्धों का ज़ोर हुआ। ये सब वेद और ब्राह्मणों के बड़े विरोधी थे। वेद की भाषा संस्कृत थी इसलिए इन्होंने संस्कृत को बिगाड़ प्राकृत भाषा जारी की। तब से संस्कृत सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा न रही। फिर भी संस्कृत-भाषी उस समय बहुत से लोग थे, जिन्होंने इस नई भाषा को प्राकृत नाम दिया जिसके अर्थ ही यह हैं कि प्राकृत अर्थात् नीचों की भाषा। अतएव संस्कृत नाटकों में नीच पात्र की भाषा प्राकृत और उत्तम पात्र

ब्राह्मणों, राजा आदि की भाषा संस्कृत रक्खी गई है। कुछ काल उपरान्त यह भाषा धीरे धीरे उन्नति को पहुंची। शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी, पैशाची आदि इसके अनेक भेद हैं। इससे भी बहुत से साहित्य के ग्रंथ बने। गुणाढ्य कवि का आर्यविद्धलक्षश्लोक का ग्रंथ बृहत्कथा प्राकृत ही में है। सिवा इसके शालिवाहन-सप्तशती आदि कई एक उत्तम प्राकृत के ग्रंथ और भी मिलते हैं। नन्द और चन्द्रगुप्त के समय इस भाषा की बड़ी उन्नति की गयी। जैनियों के सब ग्रंथ प्राकृत ही में हैं, उनके स्तोत्र पाठ आदि भी सब इसी में हैं। इससे मालूम होता है कि प्राकृत किसी समय वेद की भाषा के समान पवित्र समझी गयी थी।

संस्कृत यद्यपि बोलचाल की भाषा इस समय न रह गयी थी, पर हर एक विषय के ग्रन्थ इसमें एक से एक बढ़ चढ़ कर बनते गये। और साहित्य की तो यहां तक तरक्की हुई कि कालिदास आदि कवियों की उक्ति युक्ति के मुकाबिले वेद का भद्दा और रूखा साहित्य अत्यन्त फीका मालूम होने लगा। कालिदास की एक एक उपमा पर और भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाण की एक एक छटा पर वेद की, उमदा से उमदा सूक्त, जिनमें हमारे पुराने आर्यों ने सरपञ्च साहित्य की बड़ी भारी कारीगरी दिखलाई है, न्यौछावर है। संस्कृत के साहित्य के लिए विक्रमादित्य का समय "ऑगस्टन पीरियड" कहलाता है अर्थात् उस समय संस्कृत, जहां तक उसके लिये परिष्कृत होना सम्भव था, अपनी पूर्ण सीमा तक पहुंच गई थी। यद्यपि भारवि, माघ, मयूर प्रभृति कई एक उत्तम कवि धाराधिपति भोजराज के समय तक हुए और उनके उपरान्त भी जगन्नाथ पण्डितराज तक बराबर होते ही गये किन्तु संस्कृत में

परिष्कृत होने की सामग्री उस समय तक पूरी हो चुकी थी। भोज का समय तो यहां तक कविता की उन्नति का था कि एक श्लोक के लिए अलभ्य इनाम राजा भोज कवियों को देते थे। वेद का साहित्य उस समय यहां तक दब गया था कि छान्दस मूर्ख की एक पदवी रक्खी गई थी। केवल पाठ-मात्र वेद जानने वाले छान्दस कहलाते थे और वे अब तक भी निरे मूर्ख होते आये हैं।

बौद्धों के उच्छेद के उपरान्त एक जमाना पुराण के साहित्य का भी हिन्दुस्तान में हुआ। उस समय बहुत से पुराण, उपपुराण और संहितायें दो तीन चार सौ वर्ष के हेर फेर में रची गयी। अब हम लोगों में जो धर्मशिक्षा, समाज-शिक्षा और रीति नीति प्रचलित है वह सब शुद्ध वैदिक एक भी नहीं है। थोड़े से ऐसे लोग हैं जो अपने को स्मार्त मानते हैं, उनमें तो अलबत्ता अधिकांश वेदोक्त कर्म का यत्किञ्चित् प्रचार पाया जाता है। सो भी केवल नाममात्र को पुराण उस में भी बीच २ आ घुसा है। हमारी विद्यमान छिन्नभिन्न दशा, जिसके कारण हजार २ चेष्टा करने पर भी जातीयता हमारे में आती ही नहीं, सब पुराण ही की कृपा है। जब तक शुद्ध वैदिक साहित्य हम लोगों में प्रचलित था तब तक जातीयता के दृढ़ नियमों में जरा भी अन्तर नहीं होने पाया था। पुराणों के साहित्य के प्रचार से एक बड़ा लाभ यों हुआ कि वेद-के समय की बहुत सी घिनौनी रीतियों और रस्मों को, जिनके नाम लेने से भी घृणा होती है और उनके अनाचार हिंसाओं को, जिनके सबब से अपने अहिंसा धर्म के प्रचार करने में बौद्धों को सुविधा हुई थी, पुराणकर्ताओं ने, उठाकर, पुनः स्मार्त धर्म को विशुद्ध स्थापित किया और अनेक मत मतान्तरों का प्रचार

भी पुराणों ही की करतूत है। पुराण वाले तो पंचायतन पूजन ही तक से सन्तोष करके रह गये। तंत्रों ने बड़ा संहार किया। उन्होंने अनेक क्षुद्र देवता भैरों, काली, डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत तक की पूजन को फैला दिया। मद्य मांस के प्रचार को, जिसे बौद्धों ने तमोगुणी और मलिन समझ उठा दिया था, तांत्रिकों ने फिर बहाल किया। पर बलवीर्य की पुष्टता से, जो मांसाहार का प्रधान लाभ था, ये लोग फिर भी वञ्चित ही रहे। निःसन्देह तांत्रिकों की कृपा न होती तो हिन्दुस्तान ऐसा जल्द न डूबता। वेद के अधिकारी शुद्ध ब्राह्मण के लिये तांत्रिक दीक्षा या तन्त्र मन्त्र अति निषिद्ध हैं। ब्राह्मण तन्त्र के पठन पाठन से बहुत जल्द पतित हो सकता है यह जो किसी स्मृतिकार का मत है हमें भी कुछ २ सयुक्तिक मालूम होता हैं। बहुत से पुराण तन्त्रों के बाद बने। उनमें भी तांत्रिकोंका सिद्धान्त पुष्ट किया गया है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि हिन्दू जाति में कौमियत के छिन्न भिन्न होने का सूत्रपात पुराणों के द्वारा हुआ और तन्त्रों ने उसे बहुत ही बहुत पुष्ट किया। शैव शाक्त वैष्णव जैन बौद्ध इत्यादि अनेक जुदे जुदे फिरके हो गये जिनमें इतना दृढ़ विरोध कायम हुआ कि एक दूसरे के मुह देखने के रवादार न हुये तब परस्पर का एका और सहानुभूति कहां रही। जब समस्त हिन्दू जाति की एक वैदिक सम्प्रदाय न रही तो वही मसल चरितार्थ हुई कि "एक नारि जब दो से फंसी जैसे सत्तर वैसे अस्सी"। हमारी एक हिन्दू जाति के असंख्य टुकड़े होते २ यहां तक खण्ड हुए कि अब तक नये २ धर्म और मत प्रवर्त्तक होते ही जाते हैं। ये टुकड़े जितना वैष्णवों में अधिक हैं उतना शैव शाक्तों में नहीं और आपस में एका

दूसरे के साथ मेल और खान पान जितना कम इनमें है उतना औरों में नहीं। राम के उपासक कृष्ण के उपासक से लड़ते हैं, कृष्ण के उपासक रामोपासकों से इत्तिफ़ाक़ नहीं रखते। कृष्णोपासकों में भी सत्यानासिन अनन्यता ऐसी आड़े आई है कि यह इनके आपस ही में बड़ा खटपट लगाये रहती है।

प्राकृत के उपरान्त हमारे देश के साहित्य के दो नमूने और मिलते हैं एक पद्मावत और दूसरा पृथ्वीराज रायसा। पद्मावत की कविता में तो किसी क़द्र कुछ थोड़ा सा रस है भी पर पृथ्वीराज रायसा में तारीफ़ के लायक़ कौन सी बात है यह हमारी समझ में बिलकुल नहीं आती। प्राकृत से उतरते २ हमारी विद्यमान हिन्दी इस शकल में कैसे आई इस बात का पता अलबत्ता रायसा से लगता है। मतमतान्तर के साथ ही साथ हमारी भाषा भी गुजराती, मरहठी, बंगाली इत्यादि के भेद से प्रत्येक प्रान्त की जुदी २ भाषा हो गई। इन एकदेशी भाषाओं में बंगाली सबसे अधिक कोमल, मधुर और सरस है। मरहठी महा कठोर और कर्णकटु, तथा पंजाबी निहायत भद्दी कठोर और रूखापन में उर्दू की छोटी बहन है। अब अपनी हिन्दी की ओर आइये। इसमें सन्देह नहीं विस्तार में हिन्दी अपनी बहिनों में सब से बढ़ी है। ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, बैसवारे की तथा भोजपुरी इत्यादि इसके कई एक अवान्तर भेद हैं। ब्रजभाषा में यद्यपि कुछ मिठास है पर यह इतनी ज़नानी बोली है कि इसमें सिवाय शृङ्गार के दूसरा रस आ ही नहीं सकता। जिस बोली को कवियों ने अपने लिये चुन रक्खा है वह बुन्देलखण्ड की बोली है। इसमें सब प्रकार के काव्य और सब रस समा सकते हैं। अपनी २ पसन्द निराली होती है "भिन्नरुचिर्हि लोकः"। हमें बैसवारे की

मरहठी बोली उर्दू से अधिक भली मालूम होती है। दूसरी भाषायें जैसे मरहठी, गुजराती, बंगला की अपेक्षा कविता के अंश में हिन्दी का साहित्य बहुत बढ़ा हुआ है तथा संस्कृत से कुछ ही न्यून है। किन्तु गद्य रचना "गोरा" हिन्दी की बहुत ही कम और पोच है। सिवाय एक प्रेमसागर सी दरिद्र रचना के, इसमें और कुछ है नहीं। जिसे हम इसके साहित्य के भाण्डार में शामिल करते। दूसरे उर्दू इस जी पेली देठ मारे हुये हैं कि शुद्ध हिन्दी तुलसी, सूर इत्यादि कवियों की पद्य रचना के अतिरिक्त और कहीं मिलती ही नहीं। प्रसङ्ग प्राप्त अब हमें यहां उर्दू के साहित्य की समालोचना का भी अवसर प्राप्त हुआ है किन्तु यह विषय अत्यन्त ऊब पैदा करने वाला हो गया इसलिये इसे यहीं समाप्त करते हैं। उर्दू की समालोचना फिर कभी करेंगे।



## मनुष्य की बाहरी आकृति उसकी एक प्रतिकृति है

बुद्धिमानों ने वेदादि ग्रन्थों में मन के अनेक जुदे जुदे काम लिखे हैं। तद्यथा—

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरंगमं
ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।"

अर्थात्:—जो जागृत दशा में दूर से दूर चला जाता है अर्थात् जो मनुष्य के शरीर में रहता हुआ भी दैवी शक्ति सम्पन्न है; जो सोती दशा में लय को प्राप्त होता है अर्थात् न जाने कहां कहां चला जाता है, जो जागते ही फिर लौट के आजाता है अर्थात् पहिले के समान अपना सब काम करने लगता है, जो दूरगामी है अर्थात् जहां नेत्र आदि इन्द्रियां नहीं जा सकतीं वहां भी पहुंच जाता है, जो भूत भविष्य और वर्त्तमान तीनों को जान सकता है, जो प्रकाशमान है अर्थात् जिसके प्रकाश से प्रकाशित हो इन्द्रियां अपने अपने विषयों में जा लगती हैं वह मेरा मन कल्याण की बातों का सोचने वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् अच्छा सारथी बागडोर के द्वारा घोड़ों को [illegible] जाता है वैसा ही जो मन प्राणीमात्र को [illegible] जाता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता अर्थात् शरीर में [illegible] बाल्य यौवन और बुढ़ापा आते हैं [illegible] बाल्य यौवन और बुढ़ापा नहीं होते, [illegible] वह मेरा मन कल्याण की बातों का सोचने वाला हो।

इस मन की भावनाएं या तरंगें जो प्रतिक्षण इसमें उठा करती हैं मनुष्य के बाहिरी आकृति से प्रगट होती हैं। इस लिए इस बाहिरी आकृति को यदि मन की एक प्रतिकृति कहा जाय तो अनुचित न होगा। किसी के चेहरे को देख कोई कहता है इनके चेहरे पर ज़नानपन बरस रहा है। यह ज़नानपन क्या चीज़ है ? यही मन की एक प्रतिकृति है जो सर्वथा उस प्रकृति के विरुद्ध है जो पुरुष जाति की होनी चाहिये। पुरुषों के समान वीरता, उत्साह आदि पौरुषेय गुण स्त्रियों के मन में कहां रहते हैं। इसी तरह स्त्रियां भी बहुतेरी ऐसी होती हैं जो कितनी बातों में मर्दों के कान काटती हैं, जिससे यही प्रगट होता है कि अनेक पौरुषेय गुण उनके मन में बसे रहते हैं। ऐसा ही शूर वीर का चेहरा कायर और भगोड़े से, नम्र का अभिमानी से, ज़िद्दी हठीले का सरल सीधे स्वभाव वाले से, कुटिल का सरल से, चालाक का गाउदी से नहीं मिलता। इतना ही नही जगत् के बाह्य प्रपंच का जो कुछ असर चित्त पर होता है वह सब आदमी के चेहरे से प्रकट हो जाता है। किसी रूपवती सुन्दरी नारी को देख कामी, दार्शनिक या विरक्त योगी के मन में जो असर पैदा होता है और जो भावनायें चित्त में उठती हैं वे सब अलग अलग उन उन लोगों के चेहरे से ज़ाहिर हो जाती हैं। कामी कामातुर हो जामे के बाहर हो जाता है, लाज और शरम को जलांजलि देकर हज़ारों चेष्टाएं उससे मिलने की करता है, दिनरात विकल रहता है और अपनी कोशिश में कामयाब न हो कभी को वियोग में ज़िन्दगी से हाथ धो बैठता है। ऐसा ही दार्शनिक तत्ववेत्ता ज्ञानी उस सुन्दरी को पांचभौतिक पदार्थों का परिणाम मान उसके एक एक अङ्ग की शोभा निरख

सृष्टिकर्त्ता की निर्माण-चातुरी पर मनहीमन प्रसन्न होता है। विरक्त ज्ञानी उसे हाड़, मांस, बिष्टा, मूत्र आदि मलिन और दूषित पदार्थों की समष्टि समझ मन में वैराग्य प्रदीप के प्रकाश को अधिक स्थान देता है। इसी तरह धन देख चोर, साह, लोभी, कदर्य के मन में जुदे जुदे भाव उदय होते हैं जिनकी तसवीर प्रत्येक के चेहरे पर उतर आती है। चोर का मन धन देखते ही उसके लेने की फिकिर में लगता है। उसका यह मानसिक भाव आंख और चेहरे से स्पष्ट हो जाता है। दियानतदार उस धन को साधारण वस्तु जान वेजां किसी का एक पैसा न लेना इस दृढ़ निश्चय को उस धन से अधिक कीमती मानता हुआ उसी के अनुसार वर्त्तता है। यह भाव उसकी उदार प्रसन्न मुखच्छवि, ईषत् हास्ययुक्त फरकते हुए ओष्ट आदि मरदाने ढँग से प्रगट हो जाता है। लोभी और कदर्य का बाहरी आकार, जिसको रुपया ही सब कुछ है और जो "मर जैहौं तोहि न भुजैहौं" वाली कहावत का नमूना है, उसकी मलिन राक्षसी प्रकृति को अच्छी तरह से प्रगट करता है। बाहरी आकार से मन की बात पहिचानने वाले बुद्धिमान इसके द्वारा अपना बड़ा बड़ा काम निकाल लेते हैं। यह एक हुनर है। पुलिस के महकमे में कितने ऐसे ताड़बाज़ इस फ़न के उस्ताद हैं जो देखते ही चोर, ठग या खूनी को पहचान लेते हैं। जिससे साफ़ जाहिर है कि आकृति मन की प्रतिकृति है। इसी तरह किसी भक्तजन की मुखच्छवि से मन में भक्ति के उद्गार की बानगी ज़ाहिर होती है। पहचानने वाले लोग कपटी, मक्कार, दाम्भिक से सरल सीधे सच्चे भक्त को चट्ट पहचान लेते हैं। बुद्धिमानों ने मन को मुकुर की साथ

उपमा की है। मुकुर में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसका समूद बाहरी आकृति ही में होता है।

बाह्य आकृति सर्वोपरि मुख है जिससे मानसिक भाव चट्ट, प्रतिबिम्बित हो जाता है। मन में किसी प्रकार की वेदना या विकार उत्पन्न होते ही फिर उसका छिपना कठिन ही नहीं वरन असंभव है। मन की कोई बात यदि प्रगट होगी तो मुख्यतर मुख ही के द्वारा। किसी मनुष्य को कोई मानसिक वेदना है या उसने चार दिन से कुछ नहीं खाया या वह और किसी प्रकार की पीड़ा से आक्रान्त है तो उसके लाख छिपाने पर भी मुख पर अवश्य ही कुछ शिकन सी मालूम पड़ेगी और उस पीड़ा का असर अवश्य मुख पर झलक पड़ेगा। यदि न झलके तो वह उस योगी के समान है जिसने मन को जीत लिया है। जिस समय चित्त में कुछ विकार रहता है उस समय आदमी के चेहरे से वह मानसिक भाव चट प्रगट हो जाता है। जिस समय चित्त में क्रोध रहता है तो भौं चट चढ़ जाती है, आंख लाल हो जाती है, चेहरा तमतमा उठता है। इसी तरह जब कुछ शोक का उद्वेग मनमें रहता है तो बाह्य आकृति उदास, चेहरा उतरा हुआ, मुख मलीन, आंख में आंसू डब-डबाया रहता है। इसी तरह भयभीत का चेहरा जर्द, मुह सूखा हुआ, आकृति नितान्त दीन हीन होती है। जब चित्त प्रसन्न रहता है तब बाह्य आकृति टटके फूले हुये गुलाब की सी, चेहरा मनोहर और रौनक दार मालूम होता है। ये सब लक्षण तात्कालिक चित्त और चेहरे के परिवर्त्तन के हैं। इसी तरह बहुत से चिन्ह चेहरे या और और अंगों के भी होते हैं वे चिन्ह चाहे मनुष्य के हों या किसी पशु पक्षी के भी उनके मानसिक भाव को प्रकट करते हैं। मुख से मानसिक भाव

प्रतिबिम्बित होता है यह सामुद्रिक विद्या का एक सूत्र है, जो मालूम होता है बहुत जांच के बाद निश्चित किया गया है। वाराहमिहिर ने बृहत्संहिता में पंचमहापुरुष के लक्षण तथा एक एक अध्याय में गौ, बैल, बकरा, मेढा, हाथी, घोड़ा ऊंट आदि पशुओं के अलग अलग लक्षण दिये हैं। पंच महा पुरुष के लक्षण जैसा बडे बड़े नेत्र, चौडा लिलार, उतार चढाव दार सीधी सुग्गा की टोंट सी नासिका, गड्ढेदार सीधी ठुड्ढी इत्यादि भाग्यवानों के चिन्ह हैं। कजी आंखवाला, छोटी गरदन वाला तथा पस्तकद अवश्य कुटिल और फसादी होगा। एवम् जिसके आगे के दो दांत बड़े हों वह मूर्ख न होगा। इसी प्रकार "क्वचित खल्वाट निर्धनः" इस वाक्य के अनुसार यह प्रायः देखा गया है कि खल्वाट या गंजी चांदवाला अर्थात् जिसके चांद में बाल न हों वह कदाचित ही निर्धन होगा। कानी आंखवाला साधु न होगा, आजानु लम्बबाहु अर्थात् जिसका हाथ इतना लम्बा हो कि खड़े होने पर घुटने तक छू जाय वह बड़ा वीर, विक्रान्त, दानी, उदारप्रकृतिवाला होगा; स्त्रियों में जिसके शरीर में रोंआं अधिक हो वह चण्डी, कलहप्रिया, महाकर्कशा होगी और जल्द विधवा हो जायगी इत्यादि। इसी से लिखा है :—

"आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।"

अर्थात् चतुर लोग चेहरा देखते ही मन में क्या है झट भांप लेते हैं। सच मुच यही तो चतुराई है। चेहरा देखते ही मन में तुम्हारे क्या है न जान गये तो चतुर और गाउदी में अन्तर ही क्या रहा। साधारण मनुष्यों का मन टटोलना तो कुछ बड़ी बात नहीं है अलबत्ता ऐसों का मन टटोलना कठिन है

जो या तो बड़े गम्भीर हैं या महाकुटिलहृदय हैं। ऐसों ही के मानसिक भाव के विवेचन के लिए सामुद्रिक का यह सूत्र है :—

## "मुख से मानसिक भाव प्रतिबिम्बित होता है।"

तो सिद्ध हुआ कि मुख मानो एक मुकुर या दर्पण है जिसमें चित्त की छाया पड़ा करती है। कोई मनुष्य भाग्यवान् है या अभागा, मूर्ख है या विद्वान, चतुर है या गाउदी, चालाक सयाना है या सीधासाधा इत्यादि इन सब बातों का परिज्ञान आदमी के चेहरे ही से होता है और यह परिज्ञान केवल बुद्धिमान् ही को हो सकता है। यह बात केवल एक व्यक्ति पर नहीं वरन् कभी को समस्त जाति पर सुघटित होती है। चेहरा या शरीर का निर्माण उस जाति की मानसिक शक्ति प्रगट करता है। फलड़ी नाक, मोटे होंठ, मोटे बाल जैसा हबशियों के होते हैं बुद्धितत्व के ह्रास के द्योतक हैं। जिसमें ये लक्षण मिलते हों अवश्य उसमें बुद्धितत्व की कमी होगी। केवल यही नहीं वरन् वह अकिल का भोंड़ा और शरारत का पुतला होगा। जानवरों में भी एक एक गुण ऐसा देखा जाता है जिससे उस विशेष गुण का उसी से नाम पड़ गया है। जैसे "काकचेष्टा" अर्थात् कौवे की सी चेष्टा, "बकध्यान" बगुले के समान ध्यान लगाना। अब जिसकी चेष्टा कौए की सी या ध्यान बगुले के समान हो या जिसके चेहरे पर कौआ बगुले का सा भाव प्रगट होता हो बस जान लेना चाहिये कि इसमें उस जीव का कुछ गुण अवश्य है। इसी तरह पर "घोड़मुहा" अर्थात् घोड़े का सा लम्बा मुंहवाला कुनही और जी का

कपटी होगा। वही बात लुखरी सा मुंहवाले में होगी इत्यादि। और भी भारी सिरवाला बुद्धि का तीक्ष्ण और गभीर विचार में प्रवीण होगा। लम्बकर्ण अर्थात् जिसके कान के नीचे की लौर लम्बी होगी वह अवश्य दीर्घजीवी होगा। जिसकी जीभ प्रमाण से अधिक लम्बी होगी वह या तो चटोरा या बड़ा बकवादी होगा। निदान "यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति" सामुद्रिक शास्त्र का यह सिद्धान्त बहुत ही ठीक है। इसी से कालिदास आदि कवियों ने बड़े लोगों के शरीर के वर्णन में

"व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ॥"

इत्यादि अनेकों श्लोक इस विषय के लिखे है।



( ३ )

## कवि और चितेरे की लाड़ा लेड़ी।

इन दोनों की लाडा लेडी हम इसलिए कहते हैं कि मनुष्य तथा प्रकृति के भावों को ये दोनों ही प्रगट किया चाहते हैं— कवि लेखनी और शब्दों के द्वारा, चितेरा अपनी "तूलिका" (रंग भरने की कूंची) और भांति भांति के चित्र विचित्र रंगों से। काम दोनों का बहुत बारीक और अति कठिन है। केवल इतना ही नहीं किन्तु एक प्रकार की लोकोत्तर प्रतिभा दोनों के लिए आवश्यकीय है। किसी कवि का यह श्लोक हमारे इस आशय को भरपूर पुष्ट करता है:—

नामरूपात्मकं विश्वं यदिदं दृश्यते द्विधा।
तत्राद्यस्य कविर्वेधा द्वितीयस्य चतुर्मुखः॥

अर्थात् नाम और रूपात्मक जो दो प्रकार का यह संसार देख पड़ता है उसमें से आदि अर्थात् नामात्मक जगत् का निर्माणकर्ता कवि है और दूसरे का ब्रह्मा।

जानीते यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिनः
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कविः स्वयम्

अर्थात् इस दृश्य जगत के साक्षीरूप सूर्य और चंद्रमा जिस बात को नहीं जानते, परोक्ष ज्ञानवान् योगीजन जिसे नहीं जानते और किसकी कहें सर्वज्ञ सदाशिव भी जो बात नहीं जानते उसे कवि अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के बल से जान लेता है। कवि की प्रतिभा जिस बात के वर्णन से लोकोत्तर

चातुरी प्रगट कर दिखाती है अच्छा निपुण चितेरा उसी को अपनी प्रतिभा से चित्र के द्वारा दिखला देता है। अच्छा चितेरा कवि के एक एक श्लोक या दोहे के नीचे उसी भाव की ठीक तस्वीर खींच सकता है और तब इन दोनों में कहां तक तुलना है इसका ठीक परिज्ञान हो सकता है, किन्तु इन दोनों की कारीगरी के परीक्षक भी बड़े निपुण होने चाहियें। दोनों के काम की बारीकी और सूक्ष्म सौन्दर्य के देखने को पैनी दृष्टि चाहिये। इस तरह के परीक्षक कोई विरले नागरिक जन होते हैं। उत्तम काव्य तथा चित्र के समझने को एक ही तरह की सूक्ष्म और तीखी समझ चाहिये। कवि और चित्र-कार की कल्पना-शक्ति भी बिलकुल एक सी है।

अब रहा "उपादान कारण" या सामान अर्थात् कवि के लिए वाग्विभव और चितेरे के लिए रंग का चटकीलापन इत्यादि सो जिसके पास जैसा होगा वैसा ही वह काव्य तथा चित्र बना सकेगा। क्योंकि कवि तथा चितेरे के लिये बाह्य वस्तु, जैसा वन, नदी, पर्वत आदि के वर्णन की अपेक्षा मानसिक भावों का प्रकाश कविता तथा चित्र के द्वारा अधिक कठिन है। जिसे चित्रकार (Shades) रंग की ज़रा सी झांई में प्रगट कर दिखाता है उसी का प्रगट करना कवि के लिए इतना दुरूह है कि बेहद दिमागपच्ची करने पर दो चार सत्क-वियों ही के काव्य में यह खूबी पाई जाती है। फिर भी उतनी सफाई काव्य में न आवेगी। चित्र में अन्तर्लीन मनोगत भाव सहज में दरसाया जा सकता है। मनोगत भावों का प्रकाश कालिदास और शेक्सपियर इन्हीं दो के काव्यों में विशेष पाया जाता है। मनोगत भाव जैसा हर्ष, शोक, भय, घृणा, प्रीति इत्यादि के उदाहरण साहित्य दर्पण के तीसरे परिच्छेद

में अच्छी तरह संग्रहीत कर दिये गये हैं। यह बात कवि और चितेरे में बताने और सिखाने से उतना नहीं आती जितना स्वाभाविक बोध (Intuitive perception) से होती है, किन्तु फिर भी फ़र्क इतना ही रहेगा कि कवि जिस आशय या भाव को बहुत से शब्दों में लावेगा उसे चित्रकार तूलिका (रंग भरने की कूंची) के एक हलके से झोंक (Touch) में प्रगट कर देगा और कवि के वर्णित आशय का स्वरूप सामने खड़ा कर देगा।

चित्रकारी से कविता में इतनी विशेष बात है कि चित्र उतना चिरस्थायी न रहेगा जितना कविता रह सकती है। तस्वीर तथा काव्य से मनुष्य की प्रकृति का पूरा परिचय मिल जाता है। हमारे यहां के अमीरों के ड्राइङ्ग रूम में नङ्गी तस्वीरों का रहना फ़ेशन में दाख़िल हो गया है। लखनऊ के नवाबों के खिलवतगाह में वेश्या और हसीनों की तस्वीर न हो तो उनकी हुस्नपरस्ती में ख़ामी समझी जाय। उर्दू फ़ारसी के काव्यों का प्रधान अङ्ग केवल श्रृङ्गार रस है। आशिकी माशूकी का दास्तान जिसमें न हो वह कोई शायरी ही नहीं है। उस भाषा के शायर इश्क को जैसी उम्दी तरह पर कह सकते है वैसा उम्दा और नव रसों में दूसरे रस का वर्णन उनसे न वन पड़ेगा, और सो भी उनका इश्क बहुधा पुरुषों पर होगा, स्त्रियां उनकी माशूका बहुत कम पाई जाती हैं। हमारे देश के रामागती वाले भद्दी पसन्द के महाजन तथा मारवाड़ियों की दूकानों पर बनारस की बनी निहायत भद्दी देवताओं की भोंड़ी तस्वीर के सिवाय और कुछ न पाइयेगा जिन तस्वीरों की भद्दी चित्रकारी के सामने मानो कलकत्ते का आर्ट स्टूडियो

और पूना की चित्रशाला झख मारती है। इनकी निराली पसन्द के ठीक उपयुक्त "दानलीला" "मानलीला" इत्यादि के आगे हम लोगों के प्रौढ लेख की चातुरी कब इनके मन में स्थान पा सकती है। कहा है :—

"ये गांहक करवीन के तुम लीनी कर बीन।"

इसी तरह प्रकृति के प्रेमियों को शान्ति उत्पादक वन, पर्वत, आश्रम, नदी का पुलिन,' ऋतु, हरियाली आदि के चित्र पसन्द आते हैं। उनके स्थान पर जाने से प्रायः ऐसे ही चित्र पाइयेगा। किसी अंगरेज़ी के विद्वान का कथन है:— "A picture in the room is the picture of the mind of the man who hangs it" अर्थात् कमरों में लटकी हुई तस्वीर लटकानेवाले के मन की तस्वीर है। इसी तरह पर भक्तजनों के घर जाइये तो सन्त, महन्त, महापुरुषों के चित्र पाइयेगा जिनके देखने मात्र से एक अद्भुत शान्ति रस का उद्गार मन में आ जायगा। पालिटिक्स की मदिरा के नशे में चूर प्रसिद्ध राज-नीतिज्ञों के स्थान पर क्रामवेल, विस्मार्क सरीखे पटु बुद्धि वालों का चित्र देखियेगा इत्यादि। बालविवाह की सर्वस्व नाश करने वाली कुरीति ने हिन्दू जाति के सन्तानों की वृद्धि और उपचय को कहां तक सत्यानाश में मिलाया और किस घृणित दशा में इनको पहुँचा दिया और इस कुरीति की विष-मय वायु से बच कर मनुष्य बल, पुष्टता, तेज, कान्ति, सौन्दर्य का कहां तक संचय कर सकता है इस बात को प्रत्यक्ष करने के लिए हमें चाहिये कि मुगल तथा यूरोप देश के कमनीय बालक, युवती और दृढ़ांग पुरुषों की कुछ तस्वीरें अपनी चित्र-सारी में टांग रक्खें और सदैव उनको देखा करें।

में अच्छी तरह संग्रहीत कर दिये गये हैं। यह बात कवि और चितेरे में बताने और सिखाने से उतना नहीं आती जितना स्वाभाविक बोध (Intuitive perception) से होती है, किन्तु फिर भी फ़र्क इतना ही रहेगा कि कवि जिस आशय या भाव को बहुत से शब्दों में लावेगा उसे चित्रकार तूलिका (रग भरने की कूंची) के एक हलके से झोंक (Touch) में प्रगट कर देगा और कवि के वर्णित आशय का स्वरूप सामने खड़ा कर देगा।

चित्रकारी से कविता में इतनी विशेष बात है कि चित्र उतना चिरस्थायी न रहेगा जितना कविता रह सकती है। तस्वीर तथा काव्य से मनुष्य की प्रकृति का पूरा परिचय मिल जाता है। हमारे यहां के अमीरों के ड्राइङ्ग रूम में नङ्गी तस्वीरों का रहना फ़ेशन में दाख़िल हो गया है। लखनऊ के नवाबों के खिलवतगाह में वेश्या और हसीनों की तस्वीर न हो तो उनकी हुस्नपरस्ती में ख़ामी समझी जाय। उर्दू फ़ारसी के काव्यों का प्रधान अङ्ग केवल शृङ्गार रस है। आशिकी माशूकी का दास्तान जिसमें न हो वह कोई शायरी ही नहीं है। उस भाषा के शायर इश्क को जैसी उम्दी तरह पर कह सकते हैं वैसा उम्दा और नव रसों में दूसरे रस का वर्णन उनसे न बन पड़ेगा, और सो भी उनका इश्क बहुधा पुरुषों पर होगा, स्त्रियां उनकी माशूका बहुत कम पाई जाती हैं। हमारे देश के रामागती वाले भद्दी पसन्द के महाजन तथा मारवाड़ियों की दूकानों पर बनारस की बनी निहायत भद्दी देवताओं की भोंड़ी तस्वीर के सिवाय और कुछ न पाइयेगा जिन तस्वीरों की भद्दी चित्रकारी के सामने मानो कलकत्ते का आर्ट स्टूडियो

और पूना की चित्रशाला झख मारती है। इनकी निराली पसन्द के ठीक उपयुक्त "दानलीला" "मानलीला" इत्यादि के आगे हम लोगों के प्रौढ लेख की चातुरी कब इनके मन में स्थान पा सकती है। कहा है :—

**"ये गांहक करवीन के तुम लीनी कर बीन।"**

इसी तरह प्रकृति के प्रेमियों को शान्ति उत्पादक वन, पर्वत, आश्रम, नदी का पुलिन,' ऋतु, हरियाली आदि के चित्र पसन्द आते हैं। उनके स्थान पर जाने से प्रायः ऐसे ही चित्र पाइयेगा। किसी अंगरेज़ी के विद्वान का कथन है:— "A picture in the room is the picture of the mind of the man who hangs it" अर्थात् कमरों में लटकी हुई तस्वीर लटकानेवाले के मन की तस्वीर है। इसी तरह पर भक्तजनों के घर जाइये तो सन्त, महन्त, महापुरुषों के चित्र पाइयेगा जिनके देखने मात्र से एक अद्भुत शान्ति रस का उद्गार मन में आ जायगा। पालिटिक्स की मदिरा के नशे में चूर प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों के स्थान पर क्रामवेल, विस्मार्क सरीखे पटु बुद्धि वालों का चित्र देखियेगा इत्यादि। बालविवाह की सर्वस्व नाश करने वाली कुरीति ने हिन्दू जाति के सन्तानों की वृद्धि और उपचय को कहां तक सत्यानाश में मिलाया और किस घृणित दशा में इनको पहुँचा दिया और इस कुरीति की विषमय वायु से बच कर मनुष्य बल, पुष्टता, तेज, कान्ति, सौन्दर्य का कहां तक संचय कर सकता है इस बात को प्रत्यक्ष करने के लिए हमें चाहिये कि मुगल तथा यूरोप देश के कमनीय बालक, युवती और दृढ़ांग पुरुषों की कुछ तस्वीरें अपनी चित्रसारी में टांग रक्खें और सदैव उनको देखा करें।

कवि और चितेरे में कहां तक डांड़ा मेढी या परस्पर की स्पर्द्धा है इसे हम अपने पाठकों को दर्शा चुके हैं। अब इन दोनों में बड़ा अन्तर केवल इतना ही है कि सभ्यता का सूर्य ज्यों ज्यों उठता हुआ मध्यान्ह को पहुंचता जाता है त्यों त्यों चित्रकारी में नई नई तराश ख़राश की बारीकी चौगुनी होती जाती है, पर कवियों की वाग्देवी जिस सीमा को पहले ज़माने में पहुँच चुकी है उससे बराबर अब तक घटती ही गई, यद्यपि हाल की सभ्यता, बुद्धिवैभव, शाइस्तगी के मुक़ाबिले वह ज़माना बहुत पीछे हटा हुआ था। लार्ड मेकाले ने अपने एक लेख में इस बात को बहुत अच्छी तरह पर लिख कर दिखाया है। मेकाले कहते हैं कि "लोग इस सभ्यता के समय दर्शन, विज्ञान और दूसरी दूसरी बुद्धि का विकाश करने वाली बातों में प्रवीणता प्राप्त कर पहले की अपेक्षा अधिक सोच सकते हैं, अनेक ग्रंथों के सुलभ हो जाने से अधिक जान सकते हैं सही, किन्तु उस अपनी सोची या जानी हुई बात को बुद्धि की अधिक पैनी आंख से देखना उन पुराने कवियों ही को आता था।" इसमें सन्देह नहीं इन दिनों के विशेषज्ञ विद्वान् तर्क बहुत अच्छा कर सकेंगे, जो बात उनके तर्क की भूमिका है उसका रूप खड़ा कर देंगे, अत्यन्त साधारण बात को अपने वाग्जाल से महाजगड्वाल कर डालेंगे, विज्ञान और शिल्प में नई नई ईजाद कर ख़ोदाई का भी दावा करने को सन्नद्ध हो जांयगे, पर उन कवियों की प्रतिभा स्वरुप सूक्ष्म बुद्धि की छाया भी न पा सकेंगे। जिसे उन्होंने दो अक्षर के एक शब्द में सरस और गंभीर भाव पूर्ण करके प्रगट किया है उसे ये आधे दरजन शब्दों में भी न प्रकाश कर सकेंगे। हमारे कवियों की पैनी बुद्धि का कारण यह भी है कि पूर्व काल में

जब हमारी समाज बालक दशा में थी, उनके लिए "ज्ञातव्य-विषय" (जानने के लायक बात) बहुत थोड़े थे। जिधर उन्होंने नजर दौड़ाया उधर ही उन्हें नये नये जानने के योग्य पदार्थ मिलते गये। बुद्धि इनकी विमल थी, चित्त में किसी तरह का कुटिलभाव नहीं आने पाया था, क्योंकि समाज अब के समान प्रौढ दशा को नहीं पहुंची थी; इसलिए बहुत बातों में सभ्यता की बुरी हवा का झकोर भी उन शिष्ट पुरुषों तक न पहुंच सका था। जब पात्र बड़ा होगा और जो वस्तु उस पात्र में धरी जायगी वह कम होगी तो वह वस्तु उसमें बहुत अच्छी तरह समा सकेगी। बुद्धि उनकी जैसी तीव्र और विमल थी, वैसा ही मन में इनके किसी तरह की कुटिलता और मैल न रहने से जिस बात के वर्णन में उन्होंने अपने ख़याल को रूजू किया वह साङ्गोपाङ्ग पूरा उतरा। तात्पर्य यह कि एक अर्थात् कविता के लिए यह नई सभ्यता विष हो गई, दूसरी अर्थात् चित्रकारी के लिए अमृत का काम दे रही है। इसीसे काव्य दिन दिन घटता गया और चित्रकारी रोज़ रोज़ बढ़ती गयी।



( ४ )

# पुरुष अहेरी की स्त्रियां अहेर हैं।

Man is the hunter, and woman is his game,
The sleek and shining creature of the chase,
We hunt them for the beauty of their skins.

Tennyson

यह बड़ी पुरानी कहानी है। शिशुता की झलक के मिटते ही ज्योंही तरुनाई की गरमाहट का सचार होने लगता है कि यह अहेरी चारों ओर अपने अहेर की खोज में आंखें दौड़ाने लगता है। यह लाचार केवल इतने ही से हो जाता है कि किसी किसी अवस्था में समाज के जटिल बन्धन इसे ऐसा जकड़ लेते हैं कि यह अपने स्वेच्छाचार को वर्ताव में नहीं ला सकता और कभी कभी अपने हस्तगत शिकार को भी छोड़ बैठता है। यह नरपशु तभी तक सुमार्ग पर चलता है, तभी तक स्वभाव का सरल, विनीत और साधु है और तभी तक लोकलाज, लोकनिन्दा तथा अपवाद या राजदण्ड की यातना से बचा हुआ है जब तक दवसट में पड़ा हुआ अपने स्वेच्छाचार में प्रवृत्त नहीं हो सकता। कितनी ऐसी दंत-कथायें, गवारू किस्से कहानियां जो गांव के केवल दश पांच घर तक प्रचलित हैं और बहुत से ऐसे इतिहास, कथा, हादसे और वर्णन जिन्हें कवियों ने पद्यबद्ध कर डाला है जैसा पद्मावत, आल्हा ऊदल की कहानी, रामायण, होमर की इलियड, युसुफ़ जुलेख़ा, लैला मजनू इत्यादि और अनेक प्रसिद्ध नावेल (उपन्यास) जो अङ्गरेज़ी और फ्रांस की भाषा में लिखे गये हैं हमारे इस लेख के उदाहरण हैं। वलिक उन उन

उपन्यासों की भूमिका में ही आप यह पाइयेगा कि अमुक ड्यूक या प्रिन्स या शाहज़ादा ने अमुक सुन्दरी, नाज़नीन या हूर की खूबसूरती या गोरे चाम पर आशिक हो इतनी २ तकलीफ़ उठाई और अन्त को वह अपने प्रयत्न में इस तरह पर कृतकार्य हुआ या जान तक से हाथ धो बैठा। इसी गोरे चाम की लालच या तलाश में सैकड़ों हजारों हमारे भाई मुसलमान और क्रिस्तान हो गये और रावण सरीखे न जाने कितने जड़ पेड़ से उच्छिन्न हो गये। पुरानी तवारीखें गवाही दे रही हैं कि मुग़लों की मुग़लानी और पठानों की पठानी का निचोड़ यही था। एक दो की कौन कहे उनका हरम का हरम इस गोरे चाम के शिकार से भरा हुआ था। हम लोगों में औरतों को परदे में रखने के दस्तूर की बुनियाद भी यही हुआ। बाल्यविवाह की कुरीति इसी कारण से चल पड़ी कि कन्याओं को सात भांवर फिराय किसी को सौंप दें जिसमें उसके सतीत्व की रक्षा रहे और जवानी की झलक आने पर कहीं ऐसा न हो कि दुष्ट अत्याचारी यवन अहेरी इसे अपना शिकार कर डालें। और शिकारों से इस शिकार में यह बड़ा ही अनूठापन है कि तरुनी जन पहिले एक बार दूसरे का अहेर बन जन्मपर्यंत उस अहेर करने वाले को उलटा अपना शिकार बना लेती हैं और उसके तन, मन, धन सब का अहेर कर पुरुषपशु को घरेलू जानवर, क्रीड़ामृग, खेलौना, क्रीतदास, या वशंवद तथा तावेदार कर लेती हैं। नूर-जहां ने जहांगीर को जो नाच नचाया वह मदारी अपने बन्दर को क्या नचावेगा। एक बार जहांगीर को शिकार बना उसने जन्म भर के लिए नामी दिल्ली के बादशाह को बिल्ली बना कर रख छोड़ा। जहांगीर केवल नाम का बादशाह रह गया

सलतनत का कुल इंतिज़ाम नूरजहां करती थी। जहांगीर ने एक आम हुक्म दे दिया था कि जिस सिक्के पर उसके नाम के साथ नूरजहां का नाम खुदा हो उस सिक्के का दाम सौगुना अधिक समझा जाय। जहांगीर का दृष्टान्त एक उपलक्षण मात्र है किन्तु हम तुम सब इसी भवर जाल में पड़े गोते खा रहे हैं।



( ५ )

# हमारे मन की मधुपवृत्ति ।

आदमी का मन भी एक क्या ही गोरख-धन्धा है जिसे नई नई बात सुनने, नये नये दृश्य देखने तथा नई नई चीज़ सीखने की सदा अभिलाषा रहती है। मनुष्य को इन बातों की ओर झुकावट और उनको खोजने की लालसा परिपक्वबुद्धि होने पर उपजती हो सो नहीं वरन लड़कपन से ही, जब वह अत्यन्त सुकुमारमति रहता है, इस बात का अंकुर उसके चित्त में जमता है। कोई बालक कैसा ही खिलवाड़ी हो उसे भी खेल के नये रास्ते की खोज होगी और यह तो बहुधा देखने में आया है कि जो लोग दिनभर कोई फ़ायदे का काम नहीं करते वरन् खेल कूद में दिन गवांते हैं उनको भी जिस दिन कोई नया तरीक़ा खेलने या दिल बहलाने का मिल जाता है उस दिन उनके चित्त की प्रसन्नता का ओर छोर नहीं रहता। परन्तु सच पूछिये तो निरे खेल कूद में दिन काटना मनुष्यत्व या मनुष्य शब्द के अर्थ पर आक्षेप करना है। हमारे यहां के मननशील पूर्वकाल के दार्शनिकों ने आदमी का पर्याय जो मनुष्य रक्खा है सो यही देख कर कि वह अपनी भली या बुरी दशा को सोच सकता है, उसके चारो ओर जो संसार के अनेक प्राकृतिक कार्य हो रहे हैं उनका भेद लेकर उनकी असलीयत जान सकता है और नित्य नई विद्या और विज्ञान की वृद्धि कर सकता है। वह ज़िन्दगी को मज़ेदार करने की ज़रूरियात पैदा करता जाता है और उन आवश्यकताओं को पूरा कर अपने जीवन को सुख और आराम से काटने का नया नया ढंग बढ़ाता जाता है। यही कारण है कि आज दिन

जो सैकड़ों तरीके आराम और आशाइस के निकल पड़े हैं हमारे पहिले के लोगों को कभी स्वप्न में भी उन पर ध्यान नहीं गया था। ऐसा मालूम होता है कि आदमी का दिमाग़ कबूतर के दरबों सा है जिनमें एक समय केवल थोडे से कबूतर और उनके अण्डे बच्चे थे, ज्यों ज्यों कबूतरों की सृष्टि बढ़ती गई त्यों त्यों दरबे के ख़ाने भी बढ़ते गये। कदाचित् यही दशा आदमी के दिमाग़ और उसमें भरे हुए विविध विषयों की भी है। हमारा केवल विज्ञान-सम्बन्धी विद्याओं से प्रयोजन नहीं है किन्तु उन सब शास्त्रों और विद्याओं से भी है जो मनुष्य के घर गृहस्थी के कामों में उठते, बैठते, चलते, फिरते, प्रतिक्षण हमारे उपयोग मे आ सकती हैं। हम समझते हैं इस बात के स्वीकार करने में आपको कुछ आगा पीछा न होगा कि इन्ही सब नई ईजादों का यह फल हुआ कि आदमी की अक़िल और चालाकी पर मानो सान सी रख दी गई है। हज़ारों नये नये धन्धे लोगों को काम में लगा रखने के ऐसे निकले जिनकी हमारे यहां की पूर्वकाल की समाज में कोई उपयोगिता ही न थी। ज्यों ज्यों समाज पुष्ट पड़ती गई और सभ्यता का प्रादुर्भाव होने लगा त्यों त्यों नई ईजाद होती गई और अब इस नई सभ्यता के ज़माने में तो एक से एक अचम्भे की नई नई बातें सुनने और देखने में बराबर आ रही हैं। इस लिए यह कहना कि विज्ञान या मनुष्य के सोचने का परिणाम कोई दूसरी विद्या अपने हद और छोर को पहुँच गई बडी भूल होगी। हम तो कुछ ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य का जन्म ही नई नई वस्तुओं के खोजने के लिए हुआ है। इसी से यह सिद्धान्त बडा पक्का मालूम होता है कि दुनिया रोज रोज़ तरक्क़ी पाती जाती है और जो बातें पहले के लोगों के कभी मन में

भी न आई थीं उन्हें अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। हमारा मन मधुप की सी वृत्ति धारण किये है। जैसा भंवरा टटके से टटके सुगन्धित फूलों को ढूंढ़ता फिरता है वैसा ही हम प्रकृति माली की सींची हुई इस अनोखी संसार वाटिका में जिसका ओर छोर नहीं है नई नई वस्तु ढूंढ़ते फिरते हैं। हमारे दार्शनिकों ने मन में चंचलता का महा दोष आरोपित किया है। हम कहते हैं निस्तब्ध, निश्चेष्ट हमारा वह बुझा मन किस काम का जिसमें उत्साह और ज़िन्दादिली को ठहरने के लिए स्थान ही नहीं मिलता। मन वही है जिसे क्षण क्षण में अनोखी टटकी बातों के जानने और सोचने का उत्साह रहता है।



( ६ )

## प्रेम के बाग़ का सैलानी।

"प्रेम का बाग" यह हम इस लिए कहते हैं कि इस बाग़ मे सब भांति प्रेम ही प्रधान है। प्रेम ही इस बाग़ का माली है, प्रेम ही की सुगन्धित कली हृदय के आलबाल में खिल इस बगीचे के सैलानी को प्रमुदित करती है। इस प्रेम वृक्ष की जड बहुत नीचे है। इसकी प्रस्फुटित कली वियोग की एकान्त चिन्ता ओस से सिंचित हो मुरझाने पर भी अपनी महक नहीं छोडती किन्तु बार बार की सुधरूपी प्रातः-समीरण से अधिक अधिक पुष्ट पढती जाती है और अपने प्रेमी से मिलने की प्रखर इच्छा के सूर्योदय से इस कली की आशा रूपी पखुरियां खुलती जाती है। इसके चारो ओर भांति भांति के मनोरथ के वृक्ष हैं जिसमें कोई फूलते फलते है, किसी में केवल पत्ते ही पत्ते देख पड़ते हैं और किसी के अंकुरमात्र निकल कर रह गये हैं। इस प्रेमवृक्ष की मुकुलन दशा सौन्दर्य है जिसकी अनिर्वचनीय शोभा आदि से अन्त तक वर्णन कर कौन पार पा सकता है। मन गुलाव प्रफुल्लित और इच्छा वायु के झोंके से प्रेरित हो बार बार इसके चुम्बन को झुकता है। इसके स्वर्गीय बीज को सौन्दर्य का चोखा परखने वाला पक्षी उस स्थल से उठा लाया है जिसको वैकुण्ठ भवन का सार प्रदेश कह सकते हैं। विषयी कामीजन जो नित्य नई जारिणी ललनाओं के विलास लालसा में लालायित रहते है और झूठी चाह दिखला पाकदामन सावित्री सी सती कुलाङ्गनाओं को बहकाया करते हैं कभी इसकी पवित्रता का अनुभव कर सकते हैं? कभी नहीं। इसको तो वही

जान सकता है जो अपने आराम और सुख से हांथ धो दूसरे के सुख में प्रसन्न होने वाला है। इस प्रेम की धारा का प्रबाह यद्यपि भोगवती गङ्गा की भांति पाताल में गुप्त है किन्तु उदारभाव के साथ जो प्रेम के सच्चे पुजेरी हैं उनके लिए इसकी प्रच्छन्न विमल धारा में गोते मारना बहुत सहज है। इससे निश्चय हुआ कि निश्छलता, अकुटिलभाव, सचाई ये सब प्रेम के बडे पक्के सहवर्ती हैं।

अहा! "प्रेम" यह शब्द ही कैसा कोमल और मधुर है। सब पुस्तकों के सिद्धान्त का सारांश इस दो अक्षर के एक शब्द में रख दिया गया है।

"दो ही आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय"

प्रेमासक्त वियोगी की एक ही ठण्ढी सांस एक साथ चारो समुद्र के उमड आने से प्रलय काल की आंधी का नमूना है। संयोग और वियोग में अनन्त कोटि स्वर्ग और नरक के सुख दुःख की झलक दिखलाई पड़ती है। प्रेम महामोह का सारभूत, निश्चलता का लौहस्तम्भ, करुणा का अपार समुद्र, नैराश्य का गगनस्पर्शी उच्च पर्वत, सहिष्णुता का जनक, मन की गति का सीमा चिह्न, सुख और दुःख दोनों का निश्चित सिद्धान्त है। भय और निर्भयता, लालसा और वैराग्य, ढिठाई और शरम, नैराश्य और आशा, शोक और हर्ष, दोनों विरुद्धधर्माश्रयी भी परस्पर प्रतिस्पर्धी हो अपनी पूरी ताक़त से इसके साथ लगे रहते हैं। यह हृदय के उस तहख़ाने के खोलने की कुंजी है जिसके भीतर अनन्त आनन्द-रत्न राशि का आकर सुगम है। यह एक विचित्र ऐनक है जिसको आंख पर रखते ही जुदे जुदे रङ्ग की वस्तु मद पर

रङ्ग की दीखने लगती हैं और यह अपना है तथा यह पराया है इस द्वैविध्य की जड कट जाती है। यह भाव हृदय में उदय होते ही मनुष्य पृथ्वी भर को अपना ही समझने लगता है और :—

"उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।"

इस वचन का अनुगामी हो जाता है।

प्रेम की अकथ कहानी को आद्योपान्त कौन वर्णन कर सकता है ? यदि कुछ भी हम इसका वर्णन करना चाहें, तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि भक्ति, आदर, ममता, आनन्द, वैराग्य, करुणा आदि जो भाव प्रतिक्षण मनुष्य के चित्त में उठा करते हैं उन सबों के मूलतत्व को एक में मिलाय उसका अतर निकाला जाय तो उसे हम "प्रेम" इस पवित्र नाम से पुकार सकेंगे। तो निश्चय हुआ कि जो इस प्रेम के बाग का सैलानी हुआ चाहे तो पहिले इन पूर्वोक्त गुणों से अपने को भरा पूरा कर ले तब इस बाग के भीतर जाने का मन करे। ससार में ऐसे इने गिने दो चार भाग्यवान् पुरुष होंगे जो प्रेम की कसौटी में कसे जाने पर ठहर सकेंगे और उन्हीं के लिए प्रेम की वाटिका का विस्तार यहां हमने दिखलाया है। सच है:—

प्रेम सरोवर यह अगम—यहाँ न आवत कोय।
आवत सो फिर जात नहीं—रहत यहीं को होय

( ७ )

# संसार-महानाट्यशाला ।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, पञ्चमहाभूत की बनी यह विस्तृत नाट्यशाला उस चतुर शिरोमणि, सकल-गुण-आगर, नटनागर, महानट, अनोखे खेलवाडी, सूत्रधार के खेलवाड़ की ऐसी रंगभूमि है जिसमें दृश्य अदृश्य रूप से भासमान हो वह दर्शकों की दृष्टि से मायामयी जवनिका के भीतर छिप अपने महा विराट वैभव का अनेकों ऐसे अभिनय किया करता है जिसमें, शृङ्गार वीर, करुणा आदि नवो रस बारी बारी स्थायी और सञ्चारी होते हुये तमाशबीनों को अद्भुत तमाशे दिखलाते हैं। स्वभावमधुराकृति प्रकृति उस महा सूत्रधार की सहचारिणी नर्तकी इस नाट्यशाला की नटी है। पृथक् पृथक् नाम रूप में विचित्र वेषधारी जीव समूह सब उस बडे नटनागर की नाट्यलीला के सहायक सहकारी नट हैं। इस अद्भुत नाट्यशाला का अभिनय रातों दिन हर घण्टे हर घड़ी, प्रतिपल. प्रतिनिमेष, अविच्छिन्नरूप से हुआ करता है—कोई ख़ास घण्टा या मिनिट मुक़र्रर नहीं है कि इस समय से इस समय-तक अभिनय होगा और इस समय इस नाट्यशाला का दरवाज़ा खुलेगा। न फ़ीस का कोई नियम है कि अमुक अमुक तमाशबीनों से इस इस दरजे की फ़ीस ली जायगी। उस बड़े नटनागर ने सबों को अपना अभिनय देखने की आज्ञा दे रक्खी है। उसकी नज़र में कोई छोटा या बड़ा दर्जा नहीं है। उसका प्राणीमात्र पर एक भाव और सबों के साथ एक सा बर्ताव है।

"बाबा वह दरबार हमारा, हिन्दू मुसलमान से न्यारा।
जहां जनेऊ सुनत न होई, पण्डित मुल्ला बसै न कोई॥"

समस्त जीवराशि का निरन्तर कोलाहल इस नाट्यशाला की संगीत है। एक ओर जयध्वनिपूरित हर्षनिस्वन, दूसरी ओर क्लेश और करुणा में भरी हुई रोने की आवाज तथा जीवराशि रूपी अद्भुत यन्त्र के अनोखे तान दर्शकों के मन में एक ही क्षण हर्ष और शोक में मिला हुआ अनिर्वचनीय भाव पैदा करते हैं। सूर्य चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र, सरित् समुद्र, अभ्रलिह अत्युच्च शिखर वाले हिमधवलित पर्वत इत्यादि कारण-सामग्री लाखों वर्ष की पुरानी हो जाने पर भी उनके द्वारा जो अभिनय दिखलाये जाते हैं वे सब नये से नये और टटके से टटके होते हैं। अचिन्त्य-चातुर्य-समन्वित, विराट् मूर्ति मय यह सम्पूर्ण जगत देख देखनेवाले के मन में रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत आदि रस एक साथ स्थान पाते हैं और उस "पुरुष पुरातन" "महाकवि" की महिमा का विस्तार प्रतिपद में प्रगट करते हैं।

अब अन्तर उस बड़े नट के नाटक और हम लोगों के नाटक में यह है कि हम लोग इस दृश्यकाव्य नाटक में असल की नकल कर दिखलाते हैं और वह अपने नाटक में जो कुछ नकल कर रहा है वह माया जवनिका के कारण हमें असल और सत्य मालूम होता है। देखनेवालों के चित्त में उसकी भांति भांति की नकल का यहां तक सच्चा असर होता है कि वे विवश हो झूठ को सच मान तदाकार हो जाते हैं और उसके अचिन्त्य दिव्यरूप को, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा, ऊंचे से ऊंचा, दूर से दूर, समीप से समीप है सर्वथा भूल जाते हैं तथा उसे और का और समझ गोते खाया करते हैं

और निन्यानवे के फेर में पड इस चक्कर के बाहर कभी होतें ही नही। माया की फांसी से जकड़े हुए हम लोग उससे अपने को अलग मान अपनी भलाई और तरक्की की अनेक चेष्टा करते हैं किन्तु किसी अदृष्ट दैवीशक्ति से प्रेरित हो जो चाहते है वह नहीं होता।

## "अपना चेता होत नहिं. प्रभु चेता तत्काल"

जिसका कभी सपने में भी ख़याल नही किया जाता वह आ पड़ता है। हमें पात्र बनाय जिस अभिनय को उसने हमारे द्वारा करना आरम्भ किया था वह यदि पूरा उतर आया तो हम फूले नहीं समाते और भाग्यवानों की श्रेणी में अपना औवल दरजा क़ायम कर लेते हैं। सर्वथा स्वच्छन्द निरंकुश हो उस छिपी दैवीशक्ति पर ज़रा भी ध्यान न दे 'हम सब भांति समर्थ हैं' यही समझने लगते है। बड़े शूर वीर योद्धा सम्राट् चक्रवर्त्ती जिनकी एक बार की भ्रुकुटि विक्षेप में भूडोल आ जाने की सम्भावना है उनके भी हम महाप्रभु हैं; राम, युधिष्ठिर तथा सिकन्दर और दारा प्रभृति विजेता जगद्विजयी हमारे आगे किस गिनती में हैं; उशना और वाचस्पति को तो हमारा वाग्वैभव देख शरम आती ही है, चतुरानन भी अपनी चतुराई भूल अचरज में आय हक्का बक्का बन बैठता है; हम सब भांति सिद्ध हैं, पूर्णकाम हैं, न हमारे सदृश किसी ने यज्ञ किया होगा, न हम सा दानी कोई दूसरा है; आज हमने एक मुल्क फ़तेह किया, कल दूसरा अपने वश में कर लेंगे, अपने विपक्षी शत्रुओं को बीन बीन कर खा डालेंगे, एक को भी जीता न छोड़ेंगे, कटक से अटक तक हमारी पताका फहरा रही है. संसार की कोई जाति या फ़िरक़े नहीं बचे जिनके बीच यदि

हमारा नाम लिया जाय तो वे थर्रा न उठते हों; हम सभ्यता की चरम सीमा को पहुँचे हैं, किसकी इतनी हिम्मत या ताक़त जो हमारी बराबरी कर सके; तुम जित हो हम विजेता हैं, हम तुम्हारे स्वामी हैं, प्रभविष्णु हैं, हम जो करेंगे या सोचेंगे सब तुम्हारी भलाई के लिये करेंगे और सोचेंगे, हम जो क़ानून गढ़ दें वही तुम्हारे लिये व्यवस्था है; तुम हमारे वशम्वद हो इसलिए हम जो कहें वह तुम्हें करना ही पड़ेगा; हमारा खान, हमारा पान, हमारी रहन, हमारी सहन सब में हमारे समान बनो; देखो सम्हले रहो कहीं किसी बात में अपनापन न आने पावे; तुम्हें जब हम किसी बात में अपनापन ज़ाहिर करते देखते हैं हमारा जी कुढ़ जाता है, जो कुछ तुम्हारी भलाई भी कभी किसी तरह हो सकती उसे भी हम रोक देते हैं; हम नहीं चाहते कि ऐसी कोई बात का अंकुर भी रह जाय जिसमें तुम ज़ोर पकड़ हमारी बराबरी करने लगो इत्यादि भाव हमारे मन में उस समय उठने लगते हैं जब उस छिपी दैवीशक्ति की प्रेरणा से हम कृतकार्य और सफलमनोरथ हो जाते हैं।

वही यदि अपनी कर्तव्यता में हम कृतकार्य न हुए और जो अभिनय वह हमसे करा रहा है वह पूरा न उतरा तो हम उदास, विषण्णवदन, अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं, उस समय ज़िन्दगी हमें फीकी मालूम पड़ती है, बल्कि महाशोकग्रस्त हो ऐसे समय हम लोग जीवन से भी हाथ धो बैठते हैं। इस तरह पर इस संसार-नाट्यशाला में उस महापुरुष के अनेक खेल हैं जिन्हें वह क्रीडाविलसित के समान सर्वथा स्वच्छन्द हो जब जैसा चाहता है वैसा अभिनय करता है।

---

( ८ )

# पुरातन तथा आधुनिक सभ्यता ।

पुरानी सभ्यता का उद्देश्य Simple living and high thinking अर्थात् साधारण जीवन और उच्च विचार था। हमारे पुराने लोग शून्य एकान्त स्थान में जनसमाज से बड़ी दूर किसी पर्वत स्थली या पवित्र नदी के तट पर स्वच्छ जल वायु में नीवार, साग पात या कन्द, मूल, फल खा कर रहते थे। बेशकीमत दस्तरख़ान उनके लिए नही सजाया जाता था। पर विचार उनके ऐसे ऊँचे होते थे कि संसार की कोई ऐसी बात न बच रही जिस पर उन्होंने ख़याल नही दौड़ाया और जिसको अपने मस्तिष्क में नहीं रख लिया। इस समय की सभ्यता का जो चलन है उसके साथ उनकी सभ्यता का मुकाबिला करने से वे लोग Rude (रूड) जंगली और असभ्य कहे जा सकते हैं। तब के लोगों को शान्ति बहुत प्रिय थी। जो जितना ही मन को वश में कर दमनशील और शान्त रहता था वह उतनाही अधिक सभ्य समझा जाता था। इस समय शान्त-शील बोदा समझा जाता है। मन को वश में करना तो दूर रहा बल्कि मन को चलायमान और इन्द्रियों का अतिशय लालन करने की कितनी तदबीरें और सामग्रियां चल पडी हैं। फ़ान्स में दिन में तीन बार लेडियों के फ़ैशन बदले जाते हैं। फ़ेशन जो इस समय अन्तिम सीमा को पहुँच रहा है यह सब सभ्यता ही का प्रसाद है। इसके सिवाय लोभ, ईर्ष्या, ममता इत्यादि दोष जो इन्द्रियों को दमन न करने से पैदा होते हैं सब इस समय की शोभा और गुण हो रहे हैं। सारांश यह कि उस समय की सभ्यता का लक्ष्य

केवल बाहरी उन्नति पर नहीं वरन भीतर की उन्नति पर था जिसे आध्यात्मिक उन्नति कहते हैं। हमारी आध्यात्मिक उन्नति में बिना बाधा पड़े Material बाह्य भौतिक उन्नति उस समय लोगों को स्वीकृत थी। इस समय "मेटीरियल" भौतिक उन्नति पर ज़ोर दिया जाता है, जिसका परिणाम यह है कि हम आध्यात्मिक विषय में दिन दिन गिरते जाते हैं।

हमारी आधुनिक सभ्यता बिलकुल रुपये पर निर्भर है। रुपया पास न हो तो आप सकल-गुण-वरिष्ठ शिष्ट समाज के शिरमौर होकर भी श्रद्धास्पद नहीं हो सकते। सर्वसाधारण को जब यह निश्चय हो गया कि केवल रुपया सब इज़्ज़त और प्रतिष्ठा का द्वार है तब जैसे बने वैसे रुपया इकट्ठा करना ही हमारा उद्देश्य हो गया और हमारी आध्यत्मिक शक्ति का ह्रास दिन पर दिन होने लगा। तब के लोगों में ऐसा न था। आभ्यन्तरिक शक्तियों को विमल रख रुपये का लाभ होता हो तो वह लाभ उन्हें ग्राह्य था। एक कारण इसका यह भी कहा जा सकता है कि तब देश सब ओर से रंजा पुंजा था, धन की कमी न थी; अब इस समय मुल्क में ग़रीबी बढ़ जाने से लोगों को रुपया कमाने में यत्न ( struggle ) विशेष करना पड़ता है। यूरोप और अमेरिका के आढ्यतम देशों में इस आधुनिक सभ्यता की पोल इस लिए नहीं खुलने पाती कि वहां Struggle ( कोशिश ) इतनी अधिक नहीं है। यहां सब भांति अभाव और क्षीणता है इससे इस वर्त्तमान सभ्यता की भरपूर पोल खुल रही है।

सभ्यता का देश के जल वायु के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी देश में प्राकृतिक नियमानुसार जो बात या

जो वर्ताव जल वायु के अनुकूल पड़ता है वही वहां की सभ्यता समझी जाती है। जैसा हमारा देश कृषि प्रधान है तो जो कुछ यहां की खेती के अनुकूल या पृथ्वी की उपज का बढ़ाने वाला है उसकी वृद्धि या उसका पोषण इस देश की सभ्यता का एक अंग है। जैसा गोरक्षा या गोपालन यहां की सभ्यता का श्रेष्ठ अंग है। सामयिक सभ्यता में गोधन की क्षीणता महापातक सा देश भर को आक्रमण किये है। हमारे पूर्वज प्रकृति को छेड़ना नहीं पसन्द करते थे वरन् प्रकृति में विकृति भाव बिना लाये सहज में जो काम हो जाता था उसी पर चित्त देते थे। आधुनिक सभ्यता जो विदेश से यहां आई है, हमारी किसी बात के अनुकूल नहीं है; किन्तु इससे प्रतिदिन हमारी क्षीणता होती जायगी। भोग विलास आधुनिक सभ्यता का प्रधान अंग है। दरिद्र का विलासी होना अपना नाश करना है।

"उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति।"

अर्थात् अपने से अधिक वाले का अनुकरण करने से कौन नहीं दरिद्र हो जाता! तस्मात् अन्त को यही सिद्ध होता है कि "साधारण जीवन और ऊँचा विचार" यही पुष्ट सभ्यता है। अस्तुः—

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीत बहार
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार

---

( ६ )

# जवानी की उमंगें।

मनुष्य के जीवन में जवानी की उमर भी एक बड़ी बरकत है। फूल जब तक कली के रूप में रहता है तब तक वह डाल और पत्तों की आड़ में मुंदा हुआ न जाने किस कोने में पड़ा रहता है, पर खिलने के साथ ही अपनी सुवास, सौन्दर्य और सोहावनापन से सबों के नेत्र और मनमधुप को अपनी ओर खींच लाता है और किसी तरह छिपाये नहीं छिप सकता। कली होने पर वह किस उठान से उठा था तथा क्या क्या उसमें गुन बेगुन थे यह सब खिलने के साथ ही एकबारगी खुल पड़ता है; आगे को अब उससे क्या क्या उम्मेद है सो भी उसका इस समय का विकाश प्रगट कर देता है। मनुष्यों में इसी बात को हम "उमंग" इस नाम से पुकारते हैं, जो हम लोगों के भविष्य आशाबन्ध को मज़बूत या ढीला करती है। "आत्मानं नावमन्येत" मनु की इस आज्ञा के अनुसार उन्नतमना तथा ऊंची तबियतवालों में उमंग सदा ऊपर को उठने के लिए होती है; जघन्य, निकृष्ट, मलिनसंस्कार तथा मैली तबियत के लोगों में पहले तो उमंग होती ही नहीं और हुई भी तो सदा नीचे गिरने की ओर होती है। नवयुवक में ऊंची उमंग देख आशालता लहलहाती हुई नित्य दृढ़ होती जाती है; उनमें उस उमंग का अभाव या उसे नीचे की ओर जाते हुए पाय आशालता सूख कर मुरझाती हुई ढीली पड़ जाती है। हम उत्तम श्रेणी में दाख़िल हों इसके लिए यत्न करना किसी ख़ास एक आदमी के हिस्से में नहीं आ पड़ा वरन् हर एक आदमी को इसकी कोशिश करना मनुष्य जीवन

की सफलता और मुख्य काम है। वह नौजवान जो ऊपर को नहीं देखता निश्चय है नीचे को ताकेगा। उस तीर चलानेवाले का निशाना जो अपनी बाण विद्या से आकाश को वेध डालना चाहता है कहां तक ऊंचे से ऊचे पेड के ऊपर तक न जायगा। जिसके ऊचे से ऊचे ख़याल हैं या जिसका ऊचे से ऊंचे बर्ताव का क्रम है वह कहां तक अपने ख़याल और बर्ताव में उस आदमी से बेहतर न होगा जिसमें उन बातों का अंकुर भी नहीं है। बोल चाल और काम में कपट या कुटिलाई का अभाव मनुष्य में चरित्र पालन का पीठ की रीढ़ के समान सहारा है और सचाई पर दृढ़ता तो मानो चरित्र का मुख्य अंग है। इसलिए ऊंची उमंग वाले युवक जनों को चरित्र पालन के इन दो प्रधान साधनों को दृढ़ता के साथ पकड़े रहना चाहिये। दूसरा बडा दोष नौजवानों में बनावट (Assumption) का है। जैसे बाज कीड़े न जाने कहां से पैदा हो फूल को विकाश के पहले ही जब वह कली रहता है नष्ट कर डालते हैं वैसे ही इस बनावट का अंकुर नवयुवकों में तारुण्य के विकाश के पहले स्थान कर लेता है। हजारों लाखों नौजवान इस तराश ख़राश, बनावट सजावट के पेच में पड़, दुर्व्यसनी हो बीस या पचीस वर्ष की उमर तक पहुंचने के पहले ही लोहे तांबे उतर चुकने हैं तथा जो समय उनके पूर्ण विकाश का है उसमें जराजर्जरित हो जाते हैं। इसलिए नई उमंग वालों को इस बनावट कृमि से अपने को बचाने के लिए बड़ी चौकसी रखना उचित है। किसी बुद्धिमान् गभीराशय का कथन है:-

"Always endeavour to be really what you would wish to appear"

अर्थात् हमेशा इस बात की कोशिश करते रहो कि तुम अपने को लोगों में वैसा ही ज़ाहिर करो जैसा तुम वास्तव में भीतर से हो। नौजवानों मे नुमाइश का आना उमर का तकाज़ा और उनकी नई नई उमंगों का एक अङ्ग समझा जाता है, पर उसका न आना बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये। ज़ाहिरदारी या नुमाइश को दूर रख कर जो उमङ्गे उठती हैं वह नौजवान के भविष्य जीवन में महोपकारी हो उसको Great man महापुरुष बना देने में सहकारी होती है। इस प्रकार की उमंग से वह धीरे धीरे चुपचाप अपने महत्व की आलीशान इमारत लगातार बनाता जाता है। कुआर कातिक में जो शरत्कालीन बादल उठते हैं वे जितना गरजते हैं उतना बरसते नहीं। पर बरसात में जो बादल आते हैं वे इतना गरजते नहीं पर बरस के वसुधा को सब ओर से जलमग्न कर देते हैं। वैसा ही ओछे छिछोरे भडक तो बहुत दिखलाते है पर करतूत बहुत कम उनमें देखी जाती है; किन्तु जो गुरुतासंपन्न होते हैं वे मुख से कुछ नहीं कहते बल्कि कर के दिखला देते हैं।

"फलानुमेयाःप्रारंभाःसंस्काराःप्राक्तना इव"

"करतूती कहि देत आप नाहिं कहिये सांई"

गर्जति शरदि न वर्षति।
वर्षति वर्षासु निस्वनो मेघः॥
नीचो वदति न कुरुते।
न वदति सुजनः करोत्यवश्यम्॥

ये सब वाक्य ऐसोंही के लिए कहे गये हैं।

नौजवानी की उठती उमर ऐसे अल्हड़पन की होती है कि इस उमर में Precaution दूरन्देशी या पूर्वावधान बिल्कुल नहीं रहता, बल्कि बुरी आदते एक एक करके पड़ती जाती हैं। जिस समय उन ख़राब आदतों का आना आरम्भ होता है कुछ नही मालूम होता। जैसा पहाड़ों पर जब वर्फ गिरने लगता है तब कभी किसी के ध्यान में भी नही आता, पीछे थोड़ा थोड़ा करके जमा होते होते वही Avalanche हिमसहति हो जाती है, तब सूरज की तेज़ गरमी भी उसे नहीं टिघला सकती। इसी तरह अल्हडपन की उमग में ख़राव आदतें जब आना शुरू होती है तब उस पर बहुत ध्यान नही जाता, पीछे वही इतनी दृढ़ और बद्धमूल हो जाती हैं कि आमरणान्त जन्म भर के लिए दामनगीर हो जाती हैं और हज़ार हज़ार उपाय उनके हटाने के किये जाते हैं कोई कारगर नही होते। इससे जब तक गदहपचीसी का यह नाजुक वक़्त गुज़र न जाय तब तक बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। इस नाजुक वक़्त में यदि भलाई का बीज न बोया जाय तो बुराई आप से आप आ जाती है; जैसा खेत जिसकी धरती बहुत फलवन्त और उर्वरा है जोता बोया न जाय तो लम्बी लम्बी घास उसमें खुद बखुद उपज आती है :—

Vice quickly springs unless we goodness sow;
Rankest weeds in richest garden grow

बुद्धिमानो का सिद्धान्त है कि आदत या बान पडते पड़ते पीछे दृढ़ और बद्धमूल हो स्वभाव हो जाती है। यूरोप के एक दार्शनिक का मत है कि 'मनुष्य पाप या पुण्य आदि जो कुछ करता है वह सब उसको वैसी बान पड जाने का नतीजा

है।" खुलासा यह कि स्वभाव से बहुत कम काम होते हैं जो कुछ किया जाता है वह सब आदत है। तो आदमी क्या है मानो जुदी जुदी तरह की आदतों का एक गट्ठर है। इसी से यह कहावत चल पड़ी है Habit is a second nature "आदत दूसरे तरह का एक स्वभाव है।" इस कहावत का सबूत यह है कि यदि धैर्य, गाम्भीर्य, विचारशीलता, संयम आपकी आदतों मे दाख़िल हो जाय तो छिछोरापन, टुच्चापन, साहस आदि से आपको चिढ़ हो जायगी। ऐसाही जो ओछी छिछोरी आदत का है उसको संयमी, विचारवान्, गम्भीराशय काहे को भले लगेंगे। एवम् चुगली चबाव, हेरफेर, कुटिलाई इत्यादि जिसकी आदत मे दाख़िल हो जाते हैं उसको चैन नहीं पड़ती और अन्न नहीं पचता जब तक वह किसी का कुछ चबाव या किसी की चुगली अथवा हेर फेर की कोई एक बात न कर ले। तो नवयुवक को सावधान रहना चाहिये कि ये बुरी आदतें उसमें क़दम न जमाने पावें नहीं तो वे जन्म भर छुटाये न छुटेंगी।

ये सब गुन ऐगुन जिन्हें हमने ऊपर कहा प्रतिक्षण बड़े ज़ोर के साथ बढ़ते हुए आदमी के चरित्र को या तो शोभित करते हैं या उसे दगीला कर डालते हैं, जिससे वह अपने में चरित्र पालन की शेष बातों को भी नहीं बचा सकता। जो सुफ़ेद कपड़ा पहने हुए है वह कपड़ों के मैले होने के भय से जहाँ तहाँ बैठते सकुचता है; जो मैला कपड़ा पहने हुए है उसे क्या, वह जहां चाहे वहां बैठ सकता है।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते।
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति॥

जैसा उंजाला छोटे से छिद्र के द्वारा भीतर प्रवेश कर अन्धकार को दूर हटा देता है वैसाही आत्मगौरव का अणु-मात्र भी ख़याल मनुष्यों को बुराई या बुरी आदतों की ओर से अलग करता है। जिनके आंख का पानी ढरक गया है और जो शरम और हिजाब को धो बैठे हैं उन्हें नीचे से नीचा काम करने मे संकोच नहीं रहता। नौजवानों में इसके नमूने बहुत से पाये जाते हैं। नई उमंग में बहुधा नौजवान आत्म-गौरव का ध्यान न रख बड़ों की बडाई रखने में चूक जाते हैं जिससे वे संसार में बदनाम हो अशालीन और धृष्ट की उपधि पाते हैं। इसलिए बड़ों की बड़ाई रखना मानो अपना बड़प्पन बढ़ाना है।



( १० )

# पौगएड या कैशोर।

बालक की पांच से चौदह या पन्द्रह तक जो अवस्था है उसे पौगएड या कैशोर अवस्था कहते हैं। तारुण्य के विकाश के पहले जो समय मनुष्य का होता है वह कैसे सुख का रहता है। उस समय बालक का चित्त तुर्त के मथे मक्खन के समान कोमल, निर्मल और सर्वथा विकारशून्य रहता है। उस समय जो जो बातें उसके नेत्रगोचर होती हैं उन्हें उसका निष्कपट सरल चित्त बिना शंका समाधान के ऋजुभाव से ग्रहण कर लेता है। तरुनाई का प्रवेश होते ही बाल्य काल के वे सब सुख सपने के ख़याल से हो जाते हैं। सरल भाव, अकुटिल निष्कपट प्रीति, उदार व्यवहार और पहले का सा वह अलहड़पन, अब कहीं नाम को भी न रहा। स्कूल या पाठशाला में नित्य का जाना, मोटी २ किताबों का बोझ लादने का अभ्यास, सहपाठियों के साथ एकान्त गोष्ठी, अध्यापक या मास्टर साहब की उत्साह बढ़ाने वाली उपदेश सनी बानी, मेला तमाशा या तरह तरह के खेल कूद में नई नई उमंग का अब कहीं सम्पर्क भी न रहा। हमारे साथ के पढने वाले सब मित्र अब हमें अवश्य भूल गये होंगे, जिन्हें कुछ याद भी होगी तो वही स्नेह अब काहे को होगा जैसा उस समय था जब हम उनके साथ एकही बेंच पर सट के बैठते थे और मास्टर साहब को अनेक तरह का भुलावा और जुल दे काना फुस्की में भांति भांति की गप्पें हांक हांक प्रसन्न होते थे। मास्टर साहब जैसा देखन में कड़े और सख्त मिज़ाज थे वह हम सब खूब जानते थे, न केवल हमीं बरन हमारे समान

नटखट जितने लड़के हैं सबी जानते होंगे। हम लोगों में से जो कोई कभी उनकी इच्छा के प्रतिकूल कोई काम कर गुज़रता था तो वह सबेरे की जून स्कूल खुलते ही साक्षात् रुद्र मूर्ति अध्यापक महाशय की भौं चढी तिरछी चितवन देखतेही चट भांप लेता था कि देखें आज हम पर क्या भद्रा उतरे, ईश्वरही कुशल करे। सदा वे कड़ाई करते रहे हों सो भी नही, कभी कभी हंसाते इतना थे और ऐसी बात बोलते थे कि हंसते हंसते पेट फूलने लगता था। जब वे क्रोध में भर शेर सा तड़प गरजने लगते थे तब क्लास भर में सन्नहटा छा जाता था और हम सब लोग मौन हो बकरी सा दबक बैठ रहते थे। उनकी ये सब बातें ऊपर से केवल रोब जमाने के लिए थीं भीतर से वे ऐसे कृपालु, कोमल और सरस हृदय थे मानो दाखरस हों।

"उपरि करबालधारा: क्रूरा:
सर्पाः भुजंगमपुंगवाः।
अन्तः साक्षाद्द्राक्षा दीक्षा-
गुरवो जयन्ति केपि जनाः"॥

जो घुड़कते झिडकते थे सो सब इसीलिये कि हम अपना पाठ याद करने में सुस्त और आलसी न हो जांय। अङ्गरेज़ी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ ने अपने काव्य Deserted village में कैसा अच्छा चित्र इसी का उतारा है:—

A man severe he was and stern to view,
I knew him well and all the truant knew;

Well had the boding tremblers learn'd to trace
The day's disasters in his morning face;
Full well they laugh'd with counterfieted glee
At his jokes for many a joke had he,
Full well the busy whisper circling round,
Conveyed the dismal tiding when he frown'd,
Yet he was kind or if severe in aught,
The love he bore to learning was in fault.

अब वह कोई बात न रही। अब कैसे कैसे कुटिल, नीरस कपट-नाटक की प्रस्तावना के सदृश मानसिक भाव हमारे चित्त में उठा करते हैं। बहुत चाहते हैं कि वे सुख चैन के दिन अब फिर आवें पर वे अब क्यों नहीं आते? जी चाहता है मोहन, बच्चन, छुन्नू से फिर वैसाही गप्प हाकैं; तब कैसा कहकहे मार मार हसा करते थे और बिना कारन हँसी आती थी; अध्यापक महाशय कितना खिजलाते झुंझलाते थे पर हम एक नहीं मानते थे। अब वैसी हँसी एक बार भी आवे तो नोन तेल लकड़ी की चिन्ता के कारण दुःख-दुर्भर हृदय के दुःख का बोझ कितना हलका हो जाय; पर वैसी हँसी अब काहे को आवेगी! अब पहिले के माफ़िक़ हम उन छोटे छोटे बालकों में बेधड़क क्यों नहीं जा मिलते? अब हमारा उन के साथ मिलना सींग कटाय बछड़ा बनना क्यों जान पड़ता है? पहिले के समान सरल अकुटिल भाव से वे अब हम से काहे को मिलेंगे?

कवियों ने युवा अवस्था को "सब सुखों की खान" लिखा है, किन्तु वह सब उन धूर्तों की जल्पना मात्र है—"कवयः किम्न जल्पन्ति"। इस समय तो हमारा पूर्ण यौवन है फिर हमें

सुख क्यों नहीं मिलता। माना कि जवानी का आलम बड़ा मज़ेदार और दिलचस्प होता है। इस में हमें दुनियां की सब तरह की लज़्ज़तों का मज़ा मिलता है। आशिकी का मज़ा उठाते हैं; माशूकी की लज़्ज़त चखते हैं; नव यौवन के उमंग में बड़े बड़े काम सहज में कर डालते हैं; नई जवानी, नया जोश, नई उमर, नवीन उत्साह, नूतन अभिलाष, जितनी बात सब नई; पुरानी कोई नहीं। किन्तु विचार दृष्टि से देखो तो सिवा हिर्स हवा के लड़कपन का वह वास्तविक सच्चा सुख कहीं नाम को नहीं। छिक्! यह वह समय है जिसमें जो कुछ करते हैं किसी से तृप्ति और सन्तोष नहीं होता। जितना भोग विलास करते जाते हैं जी नहीं ऊबता वरन् चौगुनी लालसा बढ़ती है।

"हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते"।

जैसा आग में घी छोडने से आग चौगुनी धधकती है। अनगिनती रुपया पैदा किया, बडी बड़ी विद्यायें सीखीं, बहुत तरह के गुण उपार्जन किये, संसार में सब ओर अपना यश फैलाया पर तृप्ति न भई; हवस नित नित बढ़ती ही गई; सदा यही इच्छा रहती है थोड़ा और होता तो अच्छा था। आज एक काम सिद्ध हो जाने पर मन आनन्द से पूर्ण हो जाता है। उस समय यही मालूम होता है मानो स्वर्ग सुख भी तुच्छ और फीका है। वही किसी काम के बिगड जाने पर ऐसी उदासी छा जाती है कि समस्त संसार असार जचता है। सुतराम्, अन्त को यही सिद्धान्त ठहरता है कि यौवन सुख केवल अतृप्त लालसाओं के सिवाय और कुछ नहीं है। सच्चे सुख का समय केवल बाल्य अवस्था है।

( ११ )

## शब्द की आकर्षण शक्ति।

"शब्द की आकर्षण शक्ति" न्यूटन की आकर्षणशक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती। बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षणशक्ति से विशेष कहना चाहिये। इसलिए कि जिस आकर्षणशक्ति को न्यूटन ने प्रगट किया है वह केवल प्रत्यक्ष में काम दे सकती है। सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है पृथ्वी चन्द्रमण्डल को, योंही जितने बड़े पदार्थ हैं सब छोटे को आकर्षण कर रहे हैं। किन्तु एक पदार्थ दूसरे को तभी आकर्षण करते हैं जब वे दोनों एक दूसरे के मुकाविले में हों। पर शब्द की आकर्षण-शक्ति में यह आवश्यक नहीं है। यह बात ज़रूरी नहीं है कि शब्द की आकर्षणशक्ति तभी ठहर सकती हो जब नेत्र भी वहां योग देता हो। इन शब्दों का जितना ही अधिक समूह बढ़ता जायगा उतनी ही उनमें आकर्षणशक्ति भी अधिक होती जायगी। प्रत्येक जाति के धर्म-ग्रन्थ इनके प्रमाण हैं। वेदादि धर्म-ग्रन्थ जो इतने माननीय हैं सो इसीलिए कि उनमें धर्म का उपदेश ऐसे शब्द-समूहों में है जो चित्त को अपनी ओर खींच लेते हैं और ऐसा चित्त में गड़ के बैठ जाते हैं कि हटाये नहीं हटते। न्यूटन ने जिस आकर्षण शक्ति को प्रगट किया वह उनके पहिले किसी के दिलों को आकर्षित न कर सकती थी। वृक्ष से फल का टूट कर नीचे गिरना साधारण सी बात है पर किसी के मन में इसका कोई असर नहीं होता। न्यूटन के चित्त में अकस्मात् आया कि "यह फल ऊपर न जा नीचे को क्यों गिरा ?" अवश्य इसमें कोई बात

है। देर तक सोचने के उपरान्त उसने निश्चय किया कि इसका कारण यही है कि "बड़ी चीज़ छोटी को खींचती है।" पर शब्द की आकर्षण शक्ति में इतना असर है कि वह मनुष्य को कौन कहे वन के मृगों को भी मुग्ध कर देती है। कोयल का पंचम स्वर में अलापना सबों को क्यों भाता है, इसीलिए कि मीठी आवाज़ Melodious voice सबों को सुखद है। बीन इत्यादि बाजन भी लोगों को क्यों रुचते हैं, इसीलिए कि वे कान को सुखद और मन को आकर्षण करने वाले हैं।

केवल शब्द की मधुर ध्वनि में जब इतना प्रलोभन है तब यदि उन शब्दों में अर्थचातुरी भी भरी हो तो वह कितना मन को खींचने वाला न होगा। अलंकारों में अनुप्रास Alliteration कितना कर्ण-रसायन है पर उसमें अर्थचातुरी न रहने से वह आलंकारिकों में इतनी प्रतिष्ठा नहीं पाता। यदि किसी काव्य में पद-लालित्य के साथ साथ अर्थचातुरी भी हो तो उसके समान बहुत कम काव्य निकलेंगे। जैसा दामोदर गुप्त का यह श्लोक है:—

"अपसारय घनसारं
कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि मृणालैरिति
वदति दिवानिशं बाला" ॥

अर्थात् कोई विरहिणी नायिका अपने प्रियतम के वियोग में कामाग्नि से व्याकुल हो अपनी सहेली से कह रही है:—"कामज्वर के दूर करने को जो तुमने यह घनसार ( चन्दन ) हमारे

शरीर में पोत रक्खा है इसे अपसारय ( दूर करो ), इसलिये कि चन्दन से तो और भी कामाग्नि धधक उठेगी। मोतियों का हार उतार लो। कमलों से क्या होगा वह भी ठंढक न पहुँचा सकेंगे। अलमलमालि मृडालैः ( ठंढक के लिए जो मृड़ाल मेरे ऊपर धरा है उसे हटाओ। )" इस भांति वह वाला रातों दिन कहर कहर तुम्हारे वियोग में रोया करती है।

तुलसी और बिहारी के काव्यों में ऐसा बहुत ठौर आ गया है जहां अनुप्रास की मिठास और अर्थचातुरी दोनों एक साथ आई है। कुछ उदाहरण उसके यहां पर हम देते हैं :—

"टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति।
फिरत रसोंई के घरन जगर मगर द्युति होति॥
मानहु मुख दिखरावनी दुलहिन करि अनुराग।
सास सदन मन ललन हूं सौतिन दियो सुहाग॥
भूषण भार सम्हारिहैं किमि ये तन सुकुमार।
सूधे पाय न धरि परत महि सोभा के भार॥
लगालगी लोचन करैं नाहक मन बंध जाय।
देह दुलहैया की बढ़ै ज्यों ज्यों यौवन ज्योति॥
त्यों त्यों लखि सौतें सबै बदन मलिन द्युति होति।"

तुलसी का जैसा :—

"तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की"।

"धिग् मोहि भयउं वेनु वन आगी।
दुसह दाह दुख दूषन भागी॥
सुनी वहोरि मातु मृदुवानी।
सील सनेह सरल रससानी॥"

अंगरेज़ी में भी कहीं कहीं पर ऐसा है। जैसा पोप की इस पंक्ति में :—

"The sound should seem an echo to the sense".

अर्थात् शब्द ऐसे होने चाहियें जिनमें अर्थों की गूंज सी निकले। जैसा कालिदास का :—

"कन्यालल्लाम कमनीयमजस्य लिप्सोः"

भवभूति का जैसा—

"कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटा" इत्यादि।

वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण इस तरह के काव्यों के प्राण हैं। पोप की एक और भी बानगी है :—

'How high His Highness holds his haughty head'

पर इसमें अर्थ चातुरी का अभाव है। शेक्सपियर के :—

"His heavy-shotted hammer shroud"

इस पद में अनुप्रास अर्थ चातुरी सहित है।

तात्पर्य यह कि जो अनुप्रास बिना प्रयास आ जाय तथा उसके द्वारा अर्थ में भी अधिक सौन्दर्य बढ़ जाय तो वह सर्वथा ग्राह्य है। पर जिस अनुप्रास के पीछे अर्थ चातुरी की हत्या करना पड़े तो वह अनुप्रास किस काम का! कालिदास के :—

"इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्"

इस श्लोक में अनुप्रास बिना बनावट के आ गया है इससे यह बहुत उत्तम अनुप्रास का उदाहरण है। जयदेव कोकिलकण्ठ इसीलिये कहलाये कि उनके पदों में लालित्य अर्थ चातुरी से कहीं पर खाली नहीं है। जैसा :—

"ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे।"

प्रसाद गुण विशिष्ट अनुप्रास जैसा :—

परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोहम्

वैदर्भी रीति का अनुप्रास जैसा :—

कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथम्
त्वमापीता पीताम्बर-पुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्संगे गंगे! पतति यदि कायस्तनुभृताम्
तदा मातः! शातक्रतवपदलाभोप्यतिलघुः॥

अर्थात् हे गंगे तुम्हारी वीचि ( लहर ) यदि नेत्र पथ में आ जाय तो अवीचि ( नरक या पाप ) कहां! तुम जल रूप में जो पी ली जाओ तो पीताम्बर पुर (वैकुण्ठ धाम) का वास दे देती हो। तुम्हारी गोद में जो देहधारी मात्र का शरीर आ गिरे तो शातक्रतव ( इन्द्र ) के पद का लाभ भी बहुत थोड़ा है।

जगन्नाथ पण्डितराज का जैसा :—

यवनी नवनीनकोमलांगी शयनीये यदि नीयते कथंचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माघवनी विनोदहेतुः॥

इत्यादि शब्द की आकर्षणशक्ति के अनेक उदाहरण संस्कृत और भाषा दोनों में पाये जाते हैं। अधिक पल्लवित न कर केवल दिग्दर्शन मात्र यहां पर कराया गया है।

---

( १२ )

## माता का स्नेह।

वात्सल्य रस की शुद्ध मूर्त्ति माता के सहज स्नेह की तुलना इस जगत् में, जहां केवल अपना स्वार्थ ही प्रधान है, कहीं ढूंढ़ने से भी न पाइयेगा—सच है:—

## कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

मातृस्थानापन्न दादी, दादा, चाचा, ताऊ आदि का स्नेह बहुधा औचित्यविचार और मर्यादापरिपालन के ध्यान से देखा जाता है। किन्तु माता तथा पिता का स्नेह पुत्र में निरे वात्सल्य भाव के मूल पर है। अब इन दोनों में भी विशेष आदरणीय, सच्चा और निःस्वार्थ प्रेम किसका है? इसकी समालोचना आज हमारे इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। लोग कहते हैं लाड़ प्यार से लड़के विगड़ते हैं पर सूक्ष्म विचार से देखिये तो बालकों में हर एक अच्छी बातों का अङ्कुर गुप्त रीति पर प्यार ही से जमता है। विलायत के एक चितेरे ने लिखा है कि "मेरी मा के एक बार चूम लेने ने मुझे चित्रकारी में प्रवीण कर दिया।" गुरु और उस्ताद जितना हमें पाठशालों में भय और ताड़ना दिखला कर वर्षों में सिखला सकते हैं उतना अपने घर में हम सुत-वत्सला मा के अकृत्रिम सहज स्नेह से एक दिन में सीख लेते हैं। मा का स्वाभाविक, सच्चा और बेबनावटी प्रेम का प्रमाण इससे बढकर और क्या मिल सकता है कि लड़का कितना ही रोता हो या विरझाया हुआ हो मां की गोद में जाते

ही चुप हो जाता है। इसी तरह जहां थोड़ी देर तक लड़के ने दूध न पिया तो मां के स्तन भी दूध से भर आते हैं, दूध टपकने लगता है और वह विकल हो जाती है। बिन्दुपात के उपरान्त पिता अलग हो जाता है। दश मास तक गर्भ में धारण का क्लेश, जनने के समय की पीडा, उसके पालन-पोषण की चिन्ता और फिकिर, उसे नीरोग और प्रसन्न देख चित्त का हुलास, रोगी तथा अनमन देख अत्यन्त विकल होना इत्यादि सब माता ही में पाया जाता है। माता और पिता के स्नेह का तारतम्य इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि लड़का कुपूत और निकम्मा निकल जाय तो बाप कभी उसका साथ नहीं देता, बल्कि घर से निकाल अलग कर देता है, पर मां बहुधा सात भांवरवाले पति को भी त्याग निकम्मे पुत्र का साथ देती है। बङ्गालियों में तथा हमारे देश के कनौजियों में, जिनके बीच बहु-विवाह प्रचलित है अर्थात् पुरुष बहुत सी स्त्रियों को व्याह लेने की बुराई को बुराई नहीं समझते, इसके बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं। दो चार नहीं वरन् हज़ार पांच सौ ऐसी मा देखी गई हैं जिन्होंने बालक की अत्यन्त कोमल अवस्था ही में पिता के न रहने पर चक्किया पीस पीस अपने पुत्र को पाला और उसे पढ़ा लिखा कर सब भांति समर्थ और योग्य कर दिया। पुत्र भी ऐसों के ऐसे ऐसे सुयोग्य हुये हैं कि जैसे सब भांति भरे पूरे घरानों में भी न निकलेंगे। जब महाकवि श्रीहर्ष केवल पांच वर्षके थे तो इनके पिता ने वादमें पराजित हो लाज से तन त्याग दिया। तब इनकी मा ने चिन्तामणि मन्त्र का इनसे जप करवा कर तथा सरस्वती देवी का कृपा-पात्र इन्हें कर अत्यन्त उद्भट पण्डित इन्हें बना दिया और

पीछे से अपने पति के परास्त करने वाले पण्डितों को इनके द्वारा वाद में हराय पूरा बदला चुका लिया।

पुराणों में ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं जिनमें माता का वात्सल्य टपक रहा है। मां का एक बार का प्रोत्साहन पुत्र के लिये जैसा उपकारी और उसके चित्त में असर पैदा करने वाला होता है वैसा पिता की सौ बार की नसीहत और ताड़ना भी नहीं होती। सौतेली मां सुरुचि के वज्रपात सदृश वाक् प्रहार से ताड़ित और पिता की अवज्ञा और निरादर से अत्यन्त सन्तापित ध्रुव को, जब वह केवल पांच ही वर्ष के बालक थे, सुनीथा देवी का एक बार का प्रोत्साहन उनके लिये ध्रुवपद की प्राप्ति का हेतु हुआ, जिसके समान उच्च और स्थिर पद आज तक किसी को मिला हो नहीं। पिता का स्नेह बदला चुकाने की इच्छा से होता है। वह पुत्र को इसी लिये पालता पोषता और पढ़ाता लिखाता है कि बुढापे में वह हमारे काम आवेगा तथा जब हम सब भांति अपाहिज्ञ और अपंग हो जायंगे तो हमारी सेवा करेगा और हमारे अन्न वस्त्र की फिकिर रक्खेगा। पर मां का उदार और अकृत्रिम प्रेम इन सब बातों की कभी नहीं इच्छा रखता। मा अपने प्रिय सन्तान के लिये कितना कष्ट सहती है जिसे याद कर चित्त में वात्सल्यभाव का उद्गार हो आता है। मां में पिता के समान प्रत्युपकार की वासना भी नहीं है, दया मानों देह धरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। टूटी फूस की मढी में, जब कि मुसलधार अखण्ड पानी बरस रहा है और फूस का ठाठ सब ओर से ऐसा टपकता है कि कहीं बीता भर जगह बची नहीं है और न गरीबी के कारण इतना कपड़ा लत्ता पास है कि आप भी ओढ़ै और प्रिय सन्तान को ढांप कर वृष्टि के

भयङ्कर उत्पात से बचावे, माना आधी धोती ओढ़े आधी से अपने दूधमुहे बालक को ढांपे उसको छाती से लगाये हुये है। अपने प्राण और देह की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं है, किन्तु वात और वृष्टि से पुत्र को कोई अनिष्ट न हो इस लिये वह अत्यन्त व्यग्र हो रही है। पुत्र की रोगी और अस्वस्थ दशा में पलंग के पास बैठी उदासीन मन मारे वह उसका मुंह ताक रही है। रात की नींद और दिन का भोजन उसे मुहाल हो गया है। भांति भांति की मान मनौती तथा उतारा और सदके में वह लगी है। जो जौन कहता है वह सब कुछ करती जाती है। अपनी जान तक चाहो चली जाय पर पुत्र को स्वस्थता हो इसी की फिकिर में वह है।

पिता को अपने शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न भावेगा। यह माता ही है जो पुत्र के स्वाभाविक स्नेह के परवश हो इतने इतने दुःख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बातों को सोंच विचार लिख दिया कि "पिता से मां का गौरव सौगुना अधिक है।"

**पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।**

मां का केवल गौरव मान बैठ रहना कैसा हम तो कहेंगे कि पुत्र जन्मपर्यन्त तन, मन, धन से मां की सेवा करे तब भी वह उसके पूर्व उपकार का ऋणी बना ही रहेगा। कविसंप्रदायानुगत प्रसाद और माधुर्य गुण से भरा तथा वात्सल्यरस मे पगा हुआ "मां" इस एकाक्षरी महा मंत्र की समता शब्दों की कल्पना करने वाले आदि के उस महा पुरुष ने, जिसने सृष्टि के प्रारम्भ ही में हमें यह बतलाया कि अमुक शब्द से अमुक अर्थ का बोध होता है, जान बूझ कर किसी दूसरे शब्द में नहीं रक्खा। "प्रसवितृ" "मातृ" "जननि"

"अम्ब" आदि जितने शब्द इस अर्थ के बोधक हैं उनमें सरल दन्त्य और तालव्य अक्षरों के सिवाय टकार, डकार, षकार आदि कडे और कर्णकटु वर्ण किसी में न पाइयेगा। इससे निश्चय होता है कि शब्द की कल्पना करने वाले उन पहले के वैयाकरणों को प्यारी मां का कहां तक गौरव था। भाई बहन में, भाई भाई में, या बहन बहन में परस्पर स्नेह का बन्धन और बहुधा समान शील का होना मां के उसी दूध का परिणाम है। एक ही मां का दूध वे सब पीते हैं इसीलिए वे इतना प्रेमबद्ध रहते हैं। तो सिद्ध हुआ जननी केवल जन्मदात्री ही नहीं है वरन पवित्र और सरस स्नेह की प्रसवित्री भी वही है। रहस्यलीलामें गोपिकाओंने भगवान् से तीन प्रश्न किये हैं जिनमें उन्होंने तीन तरह का मार्ग प्रेम का दिखलाया है। एक तो वे लोग हैं जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं। दूसरे वे हैं जो तुम चाहो प्रेम करो वा न करो तुम से प्रेम करते हैं। तीसरे वे जो ऐसे कट्टर हैं कि उनमे कितना ही प्रेम करो तौ भी नहीं पसीजते। इनके उत्तर में भगवान् ने कहा है जो परस्पर प्रेम करते हैं वह तो एक प्रकार का बदला है, स्वच्छ स्नेह उसे न कहेंगे, काम पड़ने पर मित्रशत्रु बना ही करते हैं, उसमें सौहार्द धर्म मूलक नहीं है, किन्तु दोनों परस्पर स्वार्थी हैं और जब स्वार्थ हुआ तो कुछ न कुछ कपट उसमे अवश्य ही रहेगा, कपट का मन में लेश भी आया कि स्वच्छ स्नेह की जड़ कट गई। जिसमें केवल धर्म ही धर्म हो, जो स्वच्छ स्नेह का दर्पण के समान प्रकाश कर देने वाला हो तथा जिसमें बदला पाने की कहीं गन्ध भी न हो, वह स्नेह वही है जो दया की माने साक्षात् स्वरूप मां पुत्र में रखती हैं। इस सात्विक स्नेह अनमोल मोती की तारीफ़ में पेज का पेज रंगते जांय तौ भी ओर छोर तक नहीं पहुंच सकते।

( १३ )

# मुग्ध माधुरी ।

मुग्धता की छवि ही कुछ निराली है। मुग्धता में चेहरे के भोलेपन के साथ ही साथ एक अद्भुत पवित्र, स्थिर और सत् मनोवृत्ति प्रतिबिम्बित होती है। जिस सौन्दर्य में भोलेपन की झलक नहीं वह बनावटी सौन्दर्य है। बनावटी सौन्दर्य में सागर के समान प्रसन्न गम्भीर और स्थिर भाव कभी ढूंढने से भी न मिलेगा। भोलेपन से ख़ाली तथा दगीली ख़ूबसूरती पहले तो कोई ख़ूबसूरती ही नहीं है और कदाचित् हो भी तो कुटिलाई और बांकापन लिये हाव-भाव दूषित, मलिन और अपवित्र मन की खोटाई के साथ ऊपर से रंगी चुंगी सुन्दरता छूत के समान देखने वालों के मन में अवश्य अपवित्र और दूषित भाव पैदा करेगी। स्वाभाविक सरल सौन्दर्य वही है जिसमें भोलापन मिला हो और जो देखनेवालों के चित्त में अपवित्र और दूषित भाव पैदा करने के बदले प्रकृति के अद्भुत लोकोत्तर कामों का स्मरण दिलाता हुआ भक्ति-प्रवण मनमधुप को सर्वशक्तिमान के चरणकमलों के ध्यान में रुजू करता है। बहुतेरे ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं कि हिंसक ठग लोग भी ऐसों के सौन्दर्य पर मोहित तथा उनकी मुग्धमाधुरी के वशीभूत हो हिंसा के काम से निरस्त हो बैठे। हमारे "नूतन ब्रह्मचारी"* का किस्सा इसका एक उदाहरण है।

जैसा ब्राह्मण और ऋषियों के बालकों में पुश्त दरपुश्त की तपस्या से उत्पन्न ब्रह्मवर्चस् तथा क्षात्रकुल प्रसून राज-

---

* भट्ट जी की यह "नूतनब्रह्मचारी" नाम की पुस्तक भी हमारे यहाँ से मिलती है जो बहुत ही शिक्षाप्रद पढ़ने योग्य है। महादेव भट्ट

षियों में क्षात्रतेज की दमक निराली होती है और छिपाये नहीं छिपती उसी तरह रूप के संसार में मुग्ध माधुरी भी छिपाये नहीं छिपती। नागरिक स्त्रियों की अपेक्षा व्रजवनिता गंवारिन गोपियों में कौन सी ऐसी बात थी कि हमारे कवि-गण रूपवर्णन में अपनी कविता का सर्वस्व उनकी रूप माधुरी को सौंप बैठे। कोकिल कण्ठ जयदेव, कवि कर्णपूर तथा और और लीलाशुक प्रभृति कवियों की कोमल कविता का उद्गार इन्हीं व्रजवनिताओं ही के रूप वर्णन में क्यों हुआ? इसका कारण यही मन में आता है कि इन लोगों को नगर-वधू तथा प्रसिद्ध राज कन्याओं के रूप में वह बात न मिली। वह केवल बेबनावटी भोलापन था जिससे कृष्ण ऐसे रसिकशिरोमणि इन पर मोहित हो इनके पीछे पीछे डोलते फिरे। हज़ार में नौ सौ निन्नानवे लोग तेल और पानी मिली हुई हल्दी की वार्निश से चमकाये गये वारवनिताओं के जिस सौन्दर्य तथा रूप को देखकर कीट पतङ्ग की गति भुगतते हैं वह सौन्दर्य तथा रूप के जौहर के सच्चे जौहरियों की दृष्टि में अत्यन्त तुच्छ और हेय है। वरन् संयोगवश कभी को उनकी नज़र भी ऐसे सुन्दरापे पर पड़ जाती है तो उन्हें घिन पैदा होती है। यह स्वाभाविक बेबनावटी सौन्दर्य ग्राम में ही पाया जाता है। यह सुकुमार पौधा नगर की दूषित वायु के लगने से मुरझा जाता है। राजर्षि दुष्यन्त के राज-भवन में कितनी राजमहषिया के होते हुये भी वल्कल और छाल से तन ढांपे हुये ग्राम्यनारी शाकुन्तला ही उनको सोहा-वनी हुई।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।

यह एक अद्भुत बात है कि जितने शुद्ध पदार्थ हैं वे बाहरी देखने वालों को रिझानेवाले गुणों में उनसे कम मालूम होते हैं जिनमें मिलावट है। शुद्ध सोना उतना न चमकेगा जितना मिलाया हुआ। अपने बनावटी रूप का अभिमान करने वालों का अभिमान क्षणिक होता है। जैसा हल्दी का रंगा वस्त्र बड़ा चटकीला होता है परन्तु घाम के लगते ही सब चटक उसकी एक छिन में बिला जाती है। लावण्य का लालित्य बढ़ाने में स्वाभाविक सौन्दर्य सार पदार्थ है। इसी स्वाभाविक सौन्दर्य को हम मुग्ध माधुरी कहते हैं। रूप की इस मुग्ध माधुरी का कुछ क्रमही निराला है कि जो मुखच्छवि रेख भीनते भीनते पूनों के चान्द सी सोहती थी वही जवानी के आते ही मोछों की कालिमा से कलुषित हो सेवार के जाल से ढंपे हुये कमल की शोभा धर लेती है। अस्तु इस बिगड़ी दशा में भी यह छवि बहुत दिनों तक नहीं रहती। धुआं से जैसा चित्र, हिमसंहात से जैसा कमल, अंधियारे पाख से जैसा चन्द्रमा ढंक जाता है उसी तरह बुढ़ापे से यह छवि भी आक्रान्त हो जाती है। भवभूति महाकवि ने इस मुग्ध माधुरी का कई ठौर बहुत उत्तम चित्र अपने उत्तर चरित्र में खींचा है यथाः—

अतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-
र्दशनमुकुलैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः॥

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसंजातखेदा
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥

कविकुलमुकुट कालिदास ने भी पार्वती के कोमल अङ्गों के वर्णन में कहा है:—

असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे ॥
उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दं ।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ इत्यादि

विहारी ने भी लिखा है—

छुटी न शिशुता की झलक, झलक्यो यौवन अङ्ग ।
दीपति देह दुहून मिल, दिपति ताफतारङ्ग ॥
तियतिथि तरणि किशोर वय, पुण्य काल सम दोन ।
काहू पुण्यनि पाइयत, वैस संधि संक्रोन ॥
चितवन भोरे भाव की, गोरे मुह मुसकानि ।
लगनि लटकि आली गरै, चित खटकत नित आनि ॥



( १४ )

## चरित्रपालन ।

चरित्र में कहीं पर किसी तरह का दाग़ न लगने पावे इस बात की चौकसी का नाम चरित्रपालन है। हमारे लिए चरित्र-पालन की आवश्यकता इसलिए मालूम होती है कि चरित्र को यदि हम सुधारने की फिकिर न रक्खें तो उसे बिगड़ते देर नही लगती, जैसा उर्वरा फलवन्त धरती मे लम्बी लम्बी घास और कटीले पेड़ आप से आप उग आते हैं अन्न आदि के उपकारी पौधें बड़े यत्न और परिश्रम के उपरान्त उगते हैं। सच तो यों है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति ने चरित्र में विकार पैदा कर देनेवाले इतने तरह के प्रलोभन संसार में उपजा दिये हैं जिनसे आकर्षित हो मनुष्य बात की बात में ऐसा बिगड़ जा सकता है कि फिर यावज्जीवन किसी काम का नहीं रहता। महल के बनाने में कितना यत्न और परिश्रम करना पड़ता है पर जब वह बनकर तैयार हो जाता है तो उसे ढहाते देर नहीं लगती । इसी बात पर लक्ष्य कर कविशिरोमणि कालिदास ने कहा है :—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः ।"

अर्थात् जो बातें विकार पैदा करनेवाली हैं उनके होते हुये भी जिनके मन में विकार न पैदा हो वे ही धीर हैं। महाकवि भारवि ने भी ऐसा ही कहा है :—

**विक्रिया न खलु कालदोषजा**
**निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ।**

अर्थात् निर्मल प्रकृतिवालों में काल की कुटिलता के कारण जो विकार पैदा होते हैं वे चिरस्थायी नहीं रहते। चरित्ररक्षा एक प्रकार की सन्दली जमीन है जिसपर यशः-सौरभ इत्र के समान बनाये जा सकते हैं अर्थात् जैसा गन्धी सन्दल का पुट दे हर क़िस्म का इत्र उसमें से तैयार करता है वैसा ही चरित्र जब आदमी का शुद्ध है तो वह हर तरह की योग्यता प्राप्त कर सकता है। शुद्ध-चरित्रवाला मनुष्य सब जगह प्रतिष्ठा पाता है और वह जिस काम में सन्नद्ध होता है उसी में पूर्ण योग्यता को पहुँच हर तरह पर सरसब्ज़ होता है।

**यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते ।**
**एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति ॥**

अर्थात् जैसे मैला कपड़ा पहिने हुआ मनुष्य जहां चाहता है वहां बैठ जाता है, कपड़ों में दाग़ लग जाने का ख़याल उस आदमी को बिलकुल नहीं रहता उसी तरह चलितवृत्त अर्थात् जिसके चालचलन में दाग़ लग गया है वह फिर बाक़ी अपने और चरित्रों को भी नहीं बचा सकता वरन् वह नित्य नित्य बिग-ड़ता जाता है। मन, जिह्वा और हाथ का निग्रह चरित्रपालन का मुख्य अंग है। जिन्होंने मन को कुपथ पर जाने से रोका है, जीभ को दूसरे की चुगली चबाई से या गाली देने से रोका है और हाथ को दूसरे की वस्तु छूने से या बेईमानी से मैले होने में रोक रक्खा है यही चरित्रपालन में उदाहरण दूसरों

चरित्रपालन पर किसी की दृष्टि नहीं है और न किसी को "चरित्र किस तरह पर बनता बिगड़ता है" इसका कुछ ख़याल है उस बिगड़ी समाज का भला क्या कहना! कुपथ्य भोजन से विकृत रुधिर पैदा होकर जैसा शरीर को व्याधि का आलय बना नित्य उसे क्षीण, और जर्जर करता जाता है वैसा ही लोगों के कुचरित्र होने से समाज नित्य क्षीण निःसत्व और जर्जर होती जाती है। जिस समाज में चरित्र की बहुतायत होगी वह समाज सर्वोपरि दीप्यमान होकर देश और जाति की उन्नति का द्वार होगा। हमारी प्राचीन आर्यजाति चरित्र की खान थी जिनके नाम से इस समय हिन्दूमात्र पृथ्वी भर में विख्यात है। अफ़सोस! जो क़ौम किसी समय दुनियां के सब लोगों के लिए चरित्र शिक्षा में नमूना थी वह आज दिन यहां तक गई बीती हो गई कि दूसरे से सभ्यता और चरित्र-पालन की शिक्षा लेने में अपना अहोभाग्य समझती है! समय खेलाड़ी ने हमें अपना खिलौना बनाकर जैसा चाहा वैसा खेल खेला, देखें आगे अब वह कौन खेल खेलाता है।

---

( १५ )

## चारुचरित्र ।

मनुष्य के जीवन का महत्व जैसा चारुचरित्र से संपादित होता है वैसा धन, ऊँचा पद, ऊंचे दरजे की तालीम इत्यादि के द्वारा नहीं हो सकता। समाज में जैसा गौरव, जसी प्रतिष्ठा या इज़्जत, जैसा ज़ोर, लोगों के बीच में शुद्ध चरित्र वाले का होता है वैसा बड़े से बड़े धनी और ऊँचे से ऊँचे ओहदे वाले का कहां? धनवान् या विद्वान् को जो प्रतिष्ठा दी जाती है या सर्व साधारण में जो यश या नामवरी उसकी होती है उसकी स्पर्द्धा सब को होती है। कौन ऐसा होगा जो अपने वैभव, अपनी विद्या या योग्यता से औरों को अपने नीचे रखने की इच्छा न करता हो? शान्ति का एक मात्र आधार केवल चारुचरित्र वाले में अलबत्ता यह नहीं देखा जाता। वह यह कभी नहीं चाहता कि चरित्र के पैमाने में अर्थात् चरित्र क्या है इसकी नाप जोख में दूसरा हमारे आगे न बढ़ने पावे।

कार्य कारण का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सूत्र के अनुसार देश या जाति का एक एक व्यक्ति सम्पूर्ण देश या जाति की सभ्यता रूप कार्य का कारण है, अर्थात् जिस देश या जाति में एक एक मनुष्य अलग अलग अपने चरित्र के सुधार में लगे रहते हैं वह समग्र देश का देश उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुंच सभ्यता का एक बहुत अच्छा नमूना बन जाता है। नीचे से नीचे कुल में पैदा हुआ हो, बहुत पढ़ा लिखा भी न हो, बड़ा सुबीते वाला भी न हो, न किसी तरह की कोई असाधारण बात उसमें हो, किन्तु चरित्र की कसौटी

में यदि वह अच्छी तरह कस लिया गया है तो उस आदर-णीय मनुष्य का संभ्रम और आदर समाज में कौन ऐसा कंवख होगा जो न करेगा और ईर्षावश उसके महत्व को मुक्तकण्ठ हो स्वीकार न करेगा। नीचे दरजे से ऊँचे को पहुंचने के लिये चरित्र की कसौटी से बढ़कर और कोई दूसरा ज़रिया नहीं है। चरित्रवान् यद्यपि धीरे धीरे बहुत देर में ऊपर को उठता है पर यह निश्चित है कि चरित्र पालन में जो सावधान है वह एक न एक दिन अवश्य समाज का अगुआ मान लिया जायगा। हमारे यहां के गोत्र प्रवर्तक ऋषि, भिन्न भिन्न मत या संप्रदायों के चलाने वाले आचार्य, नवी, अम्बिया, औलिया आदि सब इसी क्रम पर आरूढ़ रह लाखों करोड़ों मनुष्यों के गुरुर्गुरु देववत् माननीय पूजनीय हुये, वरन कितने उनमें से ईश्वर के अंश और अवतार माने गये।

यों तो दियानतदारी, सत्य पर अटल विश्वास, शान्ति, कपट और कुटिलाई का अभाव, आदि चरित्र पालन के अनेक अङ्ग हैं किन्तु बुनियाद इन सब उत्तम गुणों की, जिस पर मनुष्य में चारुचरित्र का पवित्र विशाल मन्दिर खड़ा हो सकता है, अपने सिद्धान्तों का दृढ़ और उसूलों का पक्का होना है। जो जितनाही अपने सिद्धान्तों का दृढ और पक्का है वह उतनाही चरित्र की पवित्रता में पकता होगा। चरित्र की संपत्ति के लिये सिधाई तथा चित्त का अकुटिल भाव भी एक ऐसा बड़ा स्रोत है जहां से विश्वास, अनुराग, दया, मृदुता, सहानुभूति के सरस प्रवाह की अनेक धाराएँ बहती हैं। इनमें से किसी एक धारा में नियमपूर्वक स्नान करने वाला मनुष्य भलमनसाहत, सभ्यता, आभिजात्य या कुलीनता तथा शिष्टता का नमूना बन जाता है। क्योंकि चतुराई

बिना चित्त की सिधाई के, ज्ञान या विद्या बिना विवेक या अनुष्ठान के, मनुष्य में एक प्रकार की शक्ति अथवा योग्यता अवश्य है पर यह योग्यता उसकी वैसीही है जैसा गिरह काटनेवालों में जेब या गांठ काट रुपये निकाल लेने की योग्यता या चालांकी रहती है।

आत्मगौरव भी चरित्र का प्रधान अङ्ग है। सुचरित्र-संपन्न नीचा काम करने में सदा संकुचित रहता है। प्रतिक्षण उसे इसके लिए बड़ी चौकसी रखना पड़ता है कि कहीं ऐसा काम न बन पड़े कि प्रतिष्ठा में हानि हो। उसका एक एक काम और एक एक शब्द है सभ्य समाज में नेकचलनी के सूत्र के समान प्रमाण में लिया जाता है। जिसके लिये उसने 'हां' कहा फिर उसी के लिये उससे 'नहीं' कहलाना मनुष्य मात्र की शक्ति के बाहर है। उत्कोच या किसी तरह का लालच दिखला कर उसके उसूल को बदलवा देना या दृढ़ सिद्धान्तों से उसे अलग करना वैसाही है जैसा प्रकृति के नियमों का बदल देना है। यह कुछ अत्यन्त आवश्यक नहीं है कि जो बड़े धनी हैं या किसी बड़े ऊँचे ओहदे पर हैं वेही सच्ची शिराफ़त या चोखी से चोखी सज्जनता अथवा नेकचलनी के (Standard) सूत्र हों। अपिच गरीब तथा छोटा आदमी भी सज्जनता की कसौटी में अधिकतर चोखा और खरा निकल सकता है। किसी ने अच्छा कहा है।—

अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः

अर्थात् धन पास न होने से ग़रीब ग़रीब नहीं है वरन् जो सद्वृत्त नेकचलनी से रहित है वही ग़रीब है। धनी सब कुछ अपने पास रखकर भी सब भांति हीन है पर निर्धनी

पास कुछ न रखकर भी यदि सद्वृत्त है तो सब भांति भरा पूरा है। उसे भय और नैराश्य कहीं से नहीं है। वही सद्वृत्त विहीन वित्तवान् को पग पग में भय है। उसका भविष्य इतना धुंधला है कि जिसका धुंधलापन दूर होने को कहीं से आशा की चमक का नाम नहीं है। दैववश जिसका सब कुछ नष्ट हो गया पर धैर्य, चित्त की प्रसन्नता, आशा, धर्म पर दृढ़ता, आत्म-गौरव और सत्य पर अटल विश्वास बना है उसका मानो सब बना है। कहीं पर किसी अंश में वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता।

एक बुद्धिमान् ने इन बातों को पवित्र चरित्र का मुख्य मुख्य अङ्ग निश्चय किया है। लम्पटता अर्थात् कछुलपटी का न होना, रुपये पैसे के लेन देन में सफाई; बात का धनी और अपने वादे का सच्चा होना; आश्रितों पर दया; मेहनत से न हटना; अपने निज परिश्रम और पौरुष पर भरोसा रखना; अविकत्थन अर्थात् अपने को बढ़ा के न कहना—इनमें से एक एक गुण ऐसे हैं जिस पर किताब की किताब लिखी जा सकती है। चारुचरित्र का एक संक्षेप विवरण हमने कह सुनाया। जिस भाग्यवान् में चरित्र के पूर्ण अङ्ग हैं उसका क्या कहना! वह तो मनुष्य के तन में साक्षात् देवता या जीवन्मुक्त कोई योगी है। जिन बातों से हमारे में चरित्र आता है उसकी दो एक बात भी जिसमें है वह धन्य है और प्रशंसा के योग्य है। हमारे नवयुवकों को चरित्र पालन में विशेष प्रवणचित्त होना चाहिये। ऊँचे दरजे की शिक्षा बिना चरित्र के सर्वथा निरर्थक है। चरित्र-संपन्न साधारण शिक्षा रखकर जितना उपकार देश या जाति का कर सकता है उतना सुशिक्षित, पर चरित्र का छूछा नहीं करेगा।

( १६ )

## आत्मनिर्भरता।

आत्मनिर्भरता ( अपने भरोसे पर रहना ) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरुष में पौरुषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिनको अपने भरोसे का बल है वे जहां होंगे जल में तूंबी के समान सब के ऊपर रहेंगे। ऐसों ही के चरित्र पर लक्ष्य कर महाकवि भारवि ने कहा है:—

"लघयन् खलु तेजसा जगन्न महा निच्छति भूतिमन्यत:"।

अर्थात् तेज और प्रताप से संसार भर को अपने नीचे करते हुए ऊँची उमङ्ग वाले दूसरे के द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते। शारीरिकबल, चतुरङ्गिणी सेना का बल, प्रभुता का बल, ऊँचे कुल में पैदा होने का बल, मित्रता का बल, मंत्र तंत्र का बल इत्यादि जितने बल हैं निज बाहुबल के आगे सब क्षीणबल हैं, वरन् आत्मनिर्भरता की बुनियाद यह बाहुबल सब तरह के बल को सहारा देनेवाला और उभारने वाला है। यूरोप के देशों की जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका जापान आदि जो इस समय मनुष्यजाति के सिरताज हो रहे हैं इसका यही कारण है कि उन उन देशों में लोग अपने भरोसे पर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दुस्तान का जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहां के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल ही गये। इसीसे सेवकाई करना यहां के लोगों से जैसी खूबसूरती के साथ बन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसे पर रहना जब हमारा गुण

नहीं तब क्यों कर संभव है कि हमारे में प्रभुत्व शक्ति को अवकाश मिले।

निरी किस्मत और भाग्य पर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। अच्छा किसी ने कहा है:—

"दैव दैव आलसी पुकारे"।

ईश्वर भी सानुकूल और सहायक उन्हीं का होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। अपने आप अपनी सहायता करने की वासना आदमी में सच्ची तरक्की की बुनियाद है। अनेक सुप्रसिद्ध सत्पुरुषों की जीवनी इसका उदाहरण तो हई है, वरन् प्रत्येक देश या जाति के लोगों में बल और ओज तथा गौरव और महत्व (National vigour and Strength) के आने की आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है। बहुधा देखने में आता है किसी काम के करने में बाहरी सहायता इतना लाभ नहीं पहुँचा सकती जितना आत्म-निर्भरता। समाज के बन्धन में भी देखिये तो बहुत तरह के संशोधन सरकारी क़ानूनों के द्वारा वैसा नहीं हो सकते जैसा समाज के एक एक मनुष्य का अलग अलग अपना संशोधन अपने आप करने से हो सकते हैं। कड़े से कड़ा क़ानून आलसी समाज को परिश्रमी; अपव्ययी या फ़िज़ूल ख़र्च को किफ़ायतशार या परिमित व्ययशील; शराबी को परहेज़गार; क्रोधी को शान्त या सहनशील; सूम को उदार; लोभी को सन्तोषी; मूर्ख को विद्वान्; दर्पान्ध को नम्र; दुरा-चारी को सदाचार; कदर्य को उन्नतमना; दरिद्र भिखारी को आढ्य; भीरु डरपोक को वीर धुरीण; झूठे गपोड़िये को सच्चा; चोर को सहनशील, व्यभिचारी को एक-पत्नी-व्रतधर इत्यादि

नहीं बना सकता, किन्तु ये सब बातें हम अपने ही प्रयत्न और चेष्टा से अपने में ला सकते हैं। सच पूछो तो जाति या क़ौम भी सुधरे हुये ऐसे एक एक व्यक्ति की समष्टि है। समाज या जाति के एक एक आदमी यदि अलग अलग अपने को सुधारें तो जाति की जाति या समाज की समाज सुधर जाय।

सभ्यता और है क्या? यही कि सभ्य जाति के एक एक मनुष्य आबाल, वृद्ध, बनिता सबों में सभ्यता के सब लक्षण पाये जायँ। जिसमें आधे या तिहाई सभ्य हैं वही जाति अर्द्ध-शिक्षित कहलाती है। क़ौमी तरक़्क़ी भी अलग अलग एक एक आदमियों के परिश्रम, योग्यता, सुचाल और सौजन्य का मानो टोटल है। उसी तरह क़ौम की तनज़्ज़ुली क़ौम के एक एक आदमी की सुस्ती, कमीनापन, नीची प्रकृति, स्वार्थ-परता और भांति भांति की बुराइयों का ग्रैन्ड टोटल है। इन्हीं गुणों और अवगुणों को जाति-धर्म के नाम से भी पुकारते हैं जैसा सिक्खों में वीरता और जङ्गली असभ्य जातियों में लुटेरापन। जातीय गुणों या अवगुणों को गवर्नमेण्ट क़ानून के द्वारा रोक दे या जड़ पेड से नेस्तनाबूद कर दे परन्तु वे किसी दूसरी शकल में न सिर्फ़ फिर से उभड आवेंगे वरन् पहिले से ज़ियादह तरोताज़गी और 'सरसब्ज़ी' की हालत में हो जायँगे। जब तक किसी जाति के हर एक व्यक्ति के चरित्र में आदि से मौलिक सुधार न किया जाय तब तक अौवल दर्जे का देशानुराग और सर्वसाधारण के हित की वांछा सिर्फ़ क़ानून की अदल बदलपन से या नये क़ानून जारी करने से नहीं पैदा हो सकती। ज़ालिम से ज़ालिम बादशाह की हुकूमत में भी रह कर कोई क़ौम गुलाम नहीं कही जा सकती, वरन् गुलाम वही क़ौम है जिसमें एक एक व्यक्ति

सब भांति कदर्य, स्वार्थपरायण और जातीयता के भाव से रहित हैं। ऐसी क़ौम जिसकी नस नस में दास्य भाव समाया हुआ है कभी तरक्क़ी नहीं करेगी चाहे कैसीही उदार शासन से वह शासित क्यों न की जाय। तो निश्चय हुआ कि देश के स्वतंत्रता की गहरी और मज़बूत नीव उस देश के एक एक आदमियों के आत्मनिर्भरता आदि गुणों पर स्थित है। ऊँचे से ऊँचे दरजे की तालीम बिलकुल बे फ़ायदा है यदि हम अपने ही सहारे अपनी बेहतरी न कर सकें। जान स्टुअर्ट मिल का सिद्धान्त है कि "राजा का भयानक से भयानक अत्याचार देशपर कभी कोई बुरा असर नहीं पैदा कर सकता जब तक उस देश की एक एक व्यक्ति में अपने सुधार की अटल वासना दृढ़ता के साथ है।"

पुराने लोगों से जो चूक और गलती बन पडी है उसीका नतीजा वर्तमान समय में हम लोग भुगत रहे हैं। उसी को चाहो जिस नाम से पुकारिये; यथा जातीयता का भाव जाता रहा, एका नहीं है, आपस की हमदर्दी नहीं है इत्यादि। तब पुराने काम को अच्छा मानना और उसपर श्रद्धा जमाये रखना हम क्यों कर अपने लिये उपकारी और उत्तम मानें। हम तो इसे निरा चंडूखाने की गप्प समझते हैं कि "हमारा धर्म हमें आगे नही बढ़ने देता, अथवा विदेशीराज से शासित हैं इसीसे हम तरक्की नही कर सकते।" वास्तव में सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात् अपनी सहायता अपने आप करने का भाव हमारे बीच हई नहीं। यह सब हमारी वर्त्तमान दुर्गति उसी का परिणाम है, बुद्धिमानों का अनुभव हमें यही कहता है कि मनुष्य में पूर्णता विद्या से नहीं वरन काम से होती है। प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनी पढ़ने ही से नहीं वरन् उन प्रसिद्ध

पुरुषार्थी पुरुषों के चरित्र का अनुकरण करने से मनुष्य में पूर्णता आती है। यूरोप की सभ्यता जो आजकल हमारे लिये प्रत्येक उन्नति के बातों में उदाहरण स्वरूप मानी जाती है, एक दिन या एक आदमी के काम का परिणाम नहीं है। जब कई पुश्त तक देश का देश ऊंचे काम, ऊंचे ख़याल और ऊंची वासनाओं की ओर प्रबल चित्त रहा तब वे इस अवस्था को पहुंचे हैं। वहां के हर एक फ़िरके, जाति या वर्ण के लोग धैर्य के साथ धुन बांध के बराबर अपनी अपनी तरक़्क़ी में लगे हैं। नीचे से नीचे दरजे के मनुष्य किसान, कुली, कारीगर आदि और ऊंचे से ऊंचे दरजे वाले कवि, दर्शनिक, राजनीतिज्ञ (Politician) सब ने मिलकर क़ौमी तरक़्क़ी को इस दरजे तक पहुँचाया है। एक ने एक बात को आरम्भ कर उसका ढांचा खड़ा कर दिया, दूसरे ने उसी ढांचे पर साबित क़दम रह एक दरजा और बढ़ाया, इसी तरह क्रम क्रम से कई पीढ़ी के उपरान्त वह बात जिसका केवल ढाँचा मात्र पड़ा था पूर्णता और सिद्ध अवस्था तक पहुंच गई। ये अनेक शिल्प और विज्ञान जिनकी दुनियां भर में धूम मची है इसी तरह शुरू किये गये थे, और ढांचा छोड़ने वाले पूर्व-पुरुष अपनी भाग्यवान भावी सन्तान को उस शिल्प कौशल और विज्ञान की बड़ी भारी मीरास या बपौती का उत्तराधिकारी बना गये।

आत्मनिर्भरता या "अपने आप अपनी सहायता" के संबंध में जो शिक्षा हमे खेतिहर, दूकानदार, बढ़ई, लोहार आदि कारीगरों से मिलती है उसके मुक़ाबिले में स्कूल और कालिजों की शिक्षा कुछ नहीं है; और यह शिक्षा हमें पुस्तक या किताबों से नहीं मिलती वरन् एक एक मनुष्य के चरित्र

आत्मदमन, दृढ़ता, धैर्य, परिश्रम, स्थिर अध्यवसाय पर दृष्टि रखने से मिलती है। इन सब गुणों से हमारे जीवन की सफलता है। ये गुण मनुष्य जाति की उन्नति का छोर है और हमें जन्म ले क्या करना चाहिये इसका सारांश है।

बहुतेरे सत्पुरुषों के जीवन-चरित्र धर्म-ग्रन्थ के समान हैं जिनके पढ़ने से हमें कुछ न कुछ उपदेश ज़रूर मिलता है। बड़प्पन किसी जातिविशेष या ख़ास दरजे के आदमियों के हिस्से में नहीं पड़ा जो कोई बड़ा काम करे या जिससे सर्वसाधारण का उपकार हो वही बड़े लोगों की कोटि में आ सकता है। वह चाहे ग़रीब से ग़रीब या छोटे से छोटे दर्जे का क्यों न हो बड़े से बड़ा है। वह मनुष्य के तन में साक्षात् देवता है। हमारे यहां अवतार ऐसे ही लोग हो गये हैं। सवेरे उठ जिनका नाम ले लेने से दिन भर के लिये मंगल की गारंटी समझी जाती है। ऐसे महा महिमशाली जिस कुल में जन्मते हैं वह कुल उजागर और पुनीत हो जाता है। ऐसों ही की जननी वीरप्रसू कही जाती हैं। पुरुषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा गीदड़ों की ख़ासियत वाले सौ पुत्र भी किस काम के। पुत्र जन्म में लोग बड़ी ख़ुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुःख होता है कि जहां तीस करोड़ गीदड़ थे वहां एक की गिनती और बढ़ी, क्योंकि हिन्दुस्तान की हमारी बिगड़ी गिरी कौम में सिंह का जन्मना सर्वथा असम्भव सा प्रतीत होता है और न हम लोगों के ऐसे पुण्य काम हैं कि हमारे बीच सब सिंह ही सिंह जन्में। तब हमारी इतनी अधिक बढ़ती जैसी बाल्य-विवाह की कृपा से हो रही है किस काम की! सिवा इसके कि हिन्दुस्तान की पृथ्वी का बोझ बढ़ता जाय।

समाज में ऐसे ऐसे कुसंस्कार और निन्दित रीतियां चल पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पास तक नहीं फटकने पाती। बहुत तरह के समाज-बन्धन तथा खान पान आदि की क़ैद जो हमारे पीछे लगा दी गई है उन सब का यही तो परिणाम हुआ कि आज़ादी जिस पर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरुषेय गुण की लम्बी चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू ही से नहीं आने पाती। जब कि यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में बाप मां अपने लड़कों को तालीम देने के साथ ही साथ अपने भरोसे पर ज़िन्दगी की किश्ती को किस तरह पर खे ले जाना चाहिये यह लड़कपन से सिखाते हैं, तब यहां दुधमुहे बालक बालिकाओं का व्याह कर स्वयं अपना भरण, पोषण तथा अन्य समस्त पौरुषेय गुण की जड पर कुल्हाड़ा चलाने का प्रयत्न किया जाता है। योरप के देशों में पिता पुत्र को शक्ति भर उत्तम से उत्तम शिक्षा दे उसे जीवन संग्राम के लिये तैयार कर देता है जिसमें वह अपने आप निर्वाह कर सके। वहां के बाप मां हम लोगों के बाप मां की तरह अपने पुत्रके मित्र-मुख शत्रु नहीं हैं कि बिना सोचे समझे लड़कपन से चक्की का पाट गले में बांध उस बेचारे को सब तरह पर हीन, दीन और लाचार कर डालें और आप भी चिता पर पहुंचने तक लड़कों की फिकिर से सुचित्त न रहें। इतिहास से पूरा पता लगता है कि जब से यहां ब्रह्मचर्य की प्रथा उठा दी गई और दुधमुहों का व्याह जारी कर दिया गया तब से आज तक बराबर हमारी घटती ही होती जाती है। हम तो यही कहेंगे कि जैसा पाप हमसे बन पड़ता है उसके मुकाबिले में हमें कुछ भी दण्ड नहीं मिलता। दस या बारह वर्ष की कन्याओं के विवाह रूपी महापाप की इतनी सज़ा मिली तो कुछ न हुआ।

अस्तु हमारे में आत्म-निर्भरता न होने का वाल्य-विवाह एक बहुत बड़ा प्रधान कारण है। इसी का यह फल है कि हम नया कुआं खोद नया स्वच्छ पानी पीना जानते ही नहीं।

हमारे देश कि कुल आवादी के दस हिस्से में आठ हिस्सा ऐसा है जो केवल बाप दादों की कमाई या परम्परा-प्राप्त जीविका अथवा वृत्ति से निर्वाह करता है। सौ में एक ऐसे मिलेंगे जो अपने निज बाहुबल और पुरुषार्थ के भरोसे हैं, सो भी उनके सब पुरुषार्थ, करतूत या सपूती का निचोड़ केवल इतना ही है, जैसा किसी कवि ने कहा है:—

**अन्नपानजिता दारा सफलं तस्य जीवनम्**

अर्थात् सफल जीवन उसीका है जिसने अन्न वस्त्र से अपने लड़के और स्त्री को प्रसन्न कर रक्खा है। इतना जिसने किया वह पक्का सपूत और पुरुषार्थी है।

इधर पचास साठ वर्षों से अङ्गरेज़ी राज्य के अमन चैन का फ़ायदा पाय हमारे देशवाले किसी भलाई की ओर न झुके, वरन् दस वर्ष की गुड़ियों का ब्याह कर पहिले से ड्योढ़ी दूनी सृष्टि अलबत्ता बढ़ाने लगे। हमारे देश की जनसंख्या अवश्य घटनी चाहिये और उसके घटाने का सुगम उपाय केवल वाल्यविवाह का रुक जाना है। गवर्नमेण्ट को चाहिये कि वह वाल्यविवाह को जुर्म में दाखिल कर पूरे सिन पर आने के पहिले जो अपने कन्या या पुत्र का विवाह करे उसके लिये कोई भारी सजा या जुर्माना क़ायम कर दे। तब कदाचित् यह बुराई हम लोगों में से दूर हो नहीं तो सीधी तरह से वे कसी राह पर नहीं आने वाले हैं। आत्मनिर्भरता में दृढ़ अपने भूजने वाज़ पर भरोसा रखनेवाला, पुष्ट-वीर्य, पुष्ट-बल, भाग्य

वान्, एक सन्तान अच्छा। कूकर, सूकर से निकम्मे, रग रग में दासभाव से पूर्ण, परभाग्योपजीवी, दस किस काम के

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्"

आदमी के लिये आज़ादी एक वेशकीमत मोती है। वह आज़ादी तबही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरह की फिक्रि और चिन्ता से निर्द्वन्द्व हों और हमारी तबियत में आत्मनिर्भरता ने दख़ल कर लिया हो। इस दशा में बड़ी से बड़ी चिन्ता और फिक्रि हमें उतनी असह्य न मालूम होगी कि वह हमारी स्वच्छन्दता को जड से उखाड सके। किसी वस्तु का जब बीज बना रहता है तो उसको फिर बढा लेना सहज है। आत्मनिर्भरता की योग्यता सम्पादन किये बिना ही हम लोगों के बाप मां लडकपन में अपने लड़कों का व्याह कर यावज्जीवन के लिये उनकी स्वच्छन्दता का बीज नष्ट कर देते हैं। उपरान्त उनका शेष जीवन बोझ और अपाढ हो जाता है। इङ्गलैंड और अमेरिका जो इस समय उन्नति के शिखर पर चढ़े हे सो इसी लिये कि वहां गृहस्थी करना हर एक आदमी की इच्छा पर निर्भर है। वहां बाप मां को कोई अधिकार नहीं रहता कि निरे नाबालिग़ का व्याह कर दें। यही सबब है कि उन उन देशों में प्रायः सब ही बडप्पन का दावा कर सकते हे। हमारे यहां भी शङ्कर, नानक, कबीर, कृष्ण, चैतन्य, बुद्धदेव, तथा हाल में स्वामी दयानन्द जिनका बड़प्पन हमलोग मुक्तकण्ठ हो स्वीकार करते हैं और जिनका नाम लेते चित्त गद्गद् हो जाता है, सब के सब गृहस्थी के बोझ से स्वच्छन्द थे। आत्मनिर्भरता इन महापुरुषों में पूरा प्रभाव रखती थी। किसी का मत है मुल्क की तरक्की औरतों

की तालीम से होगी; कोई कहता है विधवा विवाह जारी होने से भलाई है, कोई कहता है खाने पीने की क़ैद उठा दीजाय तो हिन्दू लोग स्वर्ग पहुंच इन्द्र का आसन छीनलें; कोई कहता है विलायत जाने से तरक्की होगी, कोई कहता है फ़िज़ूल-ख़र्ची कम कर दी जाय तो मुल्क अभी तरक्की की सीढी पर लपक के चढ़ जाय। हम कहते हैं इन सब बातों से कुछ न होगा जब तक बाल्य विवाह रूपी कोढ़ हमारा साफ़ न होगा। हम जानते हैं हमारा यह रोना भीखना केवल अरण्य-रुदन मात्र है, फिर भी गला फाड़ फाड़ चिल्लाते रहेंगे कदाचित् किसी की तबियत पर कुछ असर पैदा हो जाय और आत्मनिर्भरता ऐसे श्रेष्ठ गुण को हम लोगों के बीच भी प्रगट होने का अवकाश मिले।



( १७ )

# चन्द्रोदय ।

अंधेरा पाख बीता उंजेला पाख आया। पश्चिम की ओर सूर्य डूबा और वक्राकार हंसिया की तरह चन्द्रमा उसी दिशा में दिखलाई पड़ा। मानो कर्कशा के समान पश्चिम दिशा सूर्य के प्रचण्ड ताप से दुखी हो क्रोध में आ इसी हंसिया को लेकर दौड़ रही है और सूर्य भयभीत हो पाताल में छिपने के लिये जा रहा है। अब तो पश्चिम ओर आकाश सर्वत्र रक्त-मय हो गया। क्या सचमुच ही इस कर्कशा ने सूर्य का काम तमाम किया जिससे रक्त बह निकला अथवा सूर्य भी क्रुद्ध हुआ जिससे उसका चेहरा तमतमा गया और उसी की यह रक्त आभा है? इस्लाम धर्म के मानने वाले नये चन्द्र की बहुत बड़ी इज्ज़त करते हैं सो क्यों? मालूम होता है इसी लिये कि दिन दिन क्षीण हो कर नाश को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा मानो सबक़ देता है कि रमज़ान में अपने शरीर को इतना सुखाओ कि वह नष्ट हो जाय, तब देखो कि उत्तरोत्तर कैसी वृद्धि होती है। अथवा यह काम श्रोत्री ब्राह्मण के नित्य जपने का ओंकार महा-मन्त्र है; या अन्धकार महागज के हटाने का यह अंकुश है; या विरहिणियों के प्राण कतरने की कैंची है अथवा शृङ्गार रस से पूर्ण पिटारे के खोलने की कुंजी है, या तारा मौक्तिकों से गुथा हार के बीच का यह सुमेर है, अथवा जंगम जगत् मात्र को डसने वाले अनंग भुजग के फन पर का यह चमकता हुआ मणि है; या निशानायिका के चेहरे की मुस्कराहट है; या सन्ध्या नारी के काम केलि के समय में उसकी छाती पर

लगा हुआ नखक्षत है; अथवा जगज्जेता कामदेव की धन्वा है; या तारा मोतियों की दो सीपियों मे से एक सीपी है।

इसी प्रकार दूइज से बढते बढते यह चन्द्र पूर्णता को पहुंचा। यह पूनो का पूरा चांद किसके मनको न भाता होगा। यह गोल गोल प्रकाश का पिण्ड देख भांति भांति की कल्पनाएं मन में उदय होती हैं कि क्या यह निशा अभिसारिका के मुख देखने की आरसी है; या उसके कान का कुण्डल अथवा फूल है; या रजनी रमणी के लिलार पर वुक्के का सफेद तिलक है; अथवा स्वच्छ नीले आकाश में यह चन्द्र मानो त्रिनेत्र शिव की जटा में चमकता हुआ कुन्द के सफ़ेद फूलों का गुच्छा है। कामवल्लभा रति की अटा में कूजता हुआ यह कबूतर है, अथवा आकाश रूपी बाज़ार में तारा रूपी मोतियों का बेचनेवाला सौदागर है। कूई की कलियों को विकाशित करते, मृग नयनियों के मान को समूल उन्मीलित करते, छिटकी हुई चांदनी से सब दिशाओं को धवलित करते, अन्धकार को निगलते चन्द्रमा सीढ़ी दर सीढ़ी शिखर के समान आकाश रूपी विशाल पर्वत के मध्य भाग में चढ़ा चला आ रहा है। क्षपा तमस्काण्ड का हटाने वाला यह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है मानो आकाश महा सरोवर में श्वेत कमल खिल रहा है, उसमें बीच बीच जो कलंक की कालिमा है सो मानो भौंरे गूंज रहे हैं। अथवा सौन्दर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के स्नान करने की यह बावड़ी है; या काम देव की कामिनी रति का यह चूना-पोता धवल गृह है, या आकाश-गङ्गा के तट पर विहार करने वाला हंस है जो सोती हुई कुइयों के जगाने को दूत बन कर आया है; या देव नदी अकाश गङ्गा का पुण्डरीक है; या चांदनी का अमृत कुण्ड है; अथवा आकाश में जो तारे

देख पड़ते हैं वे सब गौएं हैं उनके झुन्ड में यह सफ़ेद बैल है; या यह हीरे से जड़ा हुआ पूर्व दिगंगना का कर्णफूल है; या कामदेव के बाणों को चोखा करने के लिये सान धरने का सफेद गोल पत्थर है, या संध्या नायिका के खेलने का गेंद है। इसके उदय के पहिले सूर्यास्त की किरणों से सब ओर जो ललाई छा गई है सो मानो फागुन में इस रसिया चन्द्र ने दिगंगनाओं के साथ फाग खेलने में अबीर उडाई है, वही सब ओर आकाश में छाई हुई है। अथवा निशा योगिनी ने तारा-प्रसून-समूह से कामदेव की पूजा कर यावत् कामीजनों को अपने वश में करने के लिये छिटकी हुई चांदनी के बहाने वशीकरण बुका उड़ाया है; अथवा स्वच्छ नीले जल से भरे आकाश हौदा में काल महागणक ने रात के नापने को एक घटी यंत्र छोड़ रक्खा है; अथवा जगत-विजयी राजा काम-देव का यह श्वेतछत्र है; वियोगीमात्र को कामाग्नि मे झुलसाने को यह दिनमणि है; या कन्दर्प-सीमन्तिनी रतिदेवी की छप्पे-दार कर्धनी का टिकड़ा है या उसी में जड़ा चमकता हुआ सफ़ेद हीरा है: या सब कारीगरों के सरताज आतशबाज़ की बनाई हुई चरखियों का यह एक नमूना है, अथवा महापथगामी समयराज के रथ की सूर्य और चन्द्रमा रूपी दो पहियों में से यह एक पहिया है जो चलते चलते घिस गयी है इसीसे बीच में कलाई देख पड़ती है; अथवा लोगों की आंख और मन को तरावट और शीतलता पहुंचाने वाला यह बड़ा भारी बर्फ का कुण्ड है, इसीसे वेदों ने परमेश्वर के विराट वैभव के वर्णन में चन्द्रमा को मन और नेत्र माना है. या काल खिलाड़ी के खेलने का सफ़ेद गेंद है जिसमें समुद्र के नीले पानी में गिरने से सूखने पर भी कहीं कहीं नीलिमा बाक़ी रह गई है; या तारे

रूपी मोतीचूर के दानों का यह बड़ा भारी पनसेरा लड्डू है; अथवा लोगों के शुभाशुभ काम का लेखा लिखने के लिये यह विल्लोर की गोल दवात है; या खड़िया मिट्टी का बड़ा भारी ढोंका है; या काल खिलाड़ी की जेबीघड़ी का डायल है, या रजत का कुण्ड है; या आकाश के नीले गुम्बज में यह सङ्ग-मरमर का गोल शिखर है। शिशिर और हेमन्त में हिम से जो इसकी द्युति दब जाती है सो मानो यह तपस्या कर रहा है जिसका फल यह चित्रा के संयोग से शोभित हो चैत्र की पूनो के दिन पावेगा, जब इसकी द्युति फिर दामिन सी दमकेगी। इसी से कविकुल गुरु कालिदास ने कहा है:—

"हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव"



( १८ )

## भालपट्ट ।

कवि लोग लिलार की उपमा पटरे से देते हैं। सच पूछो तो विधना को अपने अमिट अक्षरों के लिखने के लिये यह भाल पट्ट ही एक मज़बूत स्लेट मिली है, जिस पर बालिश ब्रह्मा लड़कों की भांति आज तक खरी पट्टी लिखने का अभ्यास नहीं छोड़ता और जन्मतुये की छट्टी के दिन नये नये भालपट्ट पाकर फिर फिर बालक्रीड़ा का अनुभव किया करता है। बालक तो लिख कर मिटाल डाल सकते है पर यह लेख ऐसा अमिट है कि कोई कितनीही चेष्ठा करे कभी मिट नही सकताः—

**करम रेख ना मिटै करै कोई लाखों चतुराई**

चतुरानन की चतुराई का चमत्कार कुछ लिलार ही के सम्बन्ध में देखा जाता है। अच्छे अच्छे विद्वान्, गुणवान्, कृतविद्य भी भाग्यवान् के सामने हाथ पसार कर दीन बनते हैं। इसी बात पर कुछ किसी कवि ने कहा है :—

**भाग्यवन्तं प्रसूयेथाः मा शूरान् मा च पंडितान्**

धन्य हैं वे भाग्यवान् पुरुष जिनको हर एक के सामने माथा नही नवाना पड़ता तथा हाथ नहीं पसारना पड़ता। मूर्ख नासमझ को समझा कर राह पर लाने को हज़ार हज़ार माथा पटको कुछ नही होता :—

**"मूरख को समझाइबो ज्ञान गांठ को जाय"**

**"ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापितं नरं न रञ्जयति"**

घर में चोरी हो गई, चोर सेंध देकर सब माल मताल हो

गये, इधर दौड़े उधर दौड़े, पुलिस लाये, सौ सौ तदबीरें कीं, कुछ न हुआ, अन्त को माथा ठोंक बैठ रहे। यह भाल पट्ट मानो भौं के ऊपर आड़ी बेल की भूमि या ज़मीन है। सांझीबाज़ जानते होंगे कि पहले ज़मीन साफ़ कर तब बेल बूटे उठाये जाते हैं। अथवा भौं रूप रोसनी तहरीर के बाद-यह लिलार ही ऐसी चौड़ी बेल आ पडती है जिसमें ललनाजन सौभाग्य-सूचक सिन्दूर रोरी या श्याम मञ्जनी आदि के रङ्ग विरङ्गे भांति भांति के बूटे जमाकर टिकुली रूपी बुन्दा उसमें जड़, लिलार को पूरी सांझी बना, अपने सौन्दर्य को शतगुण विशेष करती है। दार्शनिकों के समस्त दर्शनों का आश्रयभूत चित्त अथवा मन दसों इन्द्रियों का राजा वा प्रभु माना गया है। उस मन का सहकारी तथा ज्ञान वा बुद्धि का निवास-स्थान, मस्तिष्क है जो इस लिलार ही में रक्खा गया है। इसीसे हमारे शास्त्रकारों ने इसे उत्तमांग माना है। योरप में इसी लिये अपूर्व अद्भुत प्रतिभावालों का सिर विकता है। नसीब, किसमत, करम, भाग, लिलार, दिष्ट आदि इसी भालपट्ट के नाम हैं। नसीब के सितारे की चमक को कोई सितारा नहीं पाता। लोग कहते हैं करम की रेख अमिट है—

"यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं
तन्मार्जितुं कः क्षमः।"

करम की रेख में मेख़ मारना विरले चतुर सयाने पुरुषार्थियों का काम है। हम भी उसी मेख मारने के ख़याल से पढनेवालों को भांति भांति की चतुराई दिखाया चाहते हैं की ग्राहक यढ़े, पर इस पत्र (हिन्दीप्रदीप) की फूटी किस्मत नहीं जगती, लाचारी है।

( १६ )

## कल्पना-शक्ति ।

मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों में कल्पना-शक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है। यद्यपि अभ्यास से यह शतगुण अधिक हो सकती है पर इसका सूक्ष्म अंकुर किसी किसी के अन्तःकरण मे आरम्भ ही से रहता है, जिसे प्रतिभा के नाम से पुकारते हैं और जिसका कवियों के लेख में पूर्ण उद्गार देखा जाता है। कालिदास, श्रीहर्ष, शेक्सपियर, मिल्टन प्रभृति कवियों की कल्पना शक्ति पर चित्त चकित और मुग्ध हो, अनेक तर्क वितर्क की भूलभुलैया में चक्कर मारता टकराता, अन्त को इसी सिद्धान्त पर आकर ठहरता है कि यह कोई प्राक्तन संस्कार का परिणाम है या ईश्वर-प्रदत्त-शक्ति (Genius) है। कवियों का अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा ब्रह्मा के साथ होड करना कुछ अनुचित नही है, क्योंकि जगत्स्रष्टा तो एक ही बार जो कुछ बन पड़ा सृष्टि-निर्माण-कौशल दिखला कर आकल्पान्त फ़रागत हो गये पर कविजन नित्य नई नई रचना के गढ़न्त से न जानें कितनी सृष्टि-निर्माण-चतुरी दिखलाते रहते हैं।

यह कल्पना-शक्ति कल्पना करनेवाले के हृद्गत भाव या मन के परखने की कसौटी या आदर्श है। शान्त या वीर प्रकृति वाले से शृङ्गार-रस प्रधान कल्पना कभी न बन पडेगी। महाकवि मतिराम और भूषण इसके उदाहरण हैं। शृङ्गार रस में पगी जयदेव की रसीली तबियत के लिए दाख और मधु से भी अधिकाधिक मधुर गीत गोविन्द ही की रचना विशेष उपयुक्त थी। राम रावण या कर्णार्जुन के युद्ध का वर्णन कभी उनसे

लिये कि उनकी रचना प्रसाद-गुण-पूर्ण है। कविता में प्रसाद-गुण दाखरस के तुल्य है, जो स्वाद में मिस्री से अधिक मीठा होता है पर मुख के किसी अवयव को ज़रा भी उससे क्लेश नहीं होता। जीभ पर रक्खा नहीं कि घूंट गये। और कवियों की रचना में चाहे रस हो भी तो पद और भाव इतने क्लिष्ट होते हैं कि विना थोडी देर सोचे रस नहीं मिलता।

प्रतिभा केवल कविता ही में नहीं वरन और कितनी बातो में भी अपना दखल जमाये हुए है। यहां के प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा में चित्रकारी की अद्भुत शक्ति प्रतिभा ही का परिणाम है। योरप तथा एशिया के कई एक प्रसिद्ध विजयी सीज़र, हानिवाल, सिकन्दर, नेपोलियन बोनापार्ट, समुद्रगुप्त रणजीतसिंह आदि सब प्रतिभाशाली थे और उनकी प्रतिभा युद्ध-कौशल की थी। बुद्धदेव, शङ्कर, रामानुज, गुरु नानक, स्वामी दयानन्द, ईसा और महम्मद आदि सब प्रतिभावाले महापुरुष थे और इनकी प्रतिभा नया नया धर्म चलाने में थी। बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि यह प्रतिभा बराबर वंश-परम्परा तक आती गई है। हमारे यहां जो एक एक पेशेवालों की अलग अलग एक एक जाति कायम कर दी गई है उसका यही हेतु है कि उस जाति के मनुष्य में उस पेशे की प्रतिभा बराबर दौड़ती आती है। किसी किसी में यह पूर्ण रीति से झलक उठती है। और उतने अंश में यत्किंचित् विच्छित्ति-विशेष प्रतिभा ही कही जायगी। मनुष्य में प्रतिभा का होना पुनर्जन्म का बड़ा पक्का सबूत है। क्या कारण कि एकही शिक्षक दो बालकों को पढ़ाता है, एक में प्रतिभा विशेष रहने से वह बात जो गुरु बतलाता है उसे जल्द आ जाती है और उस विद्या में वह विशेष चमकता है। दूसरे को गुरु की बताई हुई बात

आती ही नहीं, आयी भी तो देर में और अधिक परिश्रम के उपरान्त। तो निश्चय हुआ कि एक का पूर्व संस्कार जो अब प्रतिभा के नाम से बदल गया है स्वच्छ और विमल था और दूसरे का मलिन था, इसी से प्रतिभा उसमे न आई। "अल्पायासं महत्फलम्" अर्थात् "परिश्रम थोड़ा फल बहुत अधिक" यह बात प्रतिभा ही में पायी जाती है। छात्र मण्डली में बहुत से ऐसे पाये जाते हैं जो थोड़े परिश्रम में बड़े बड़े दार्शनिक पण्डित और कवि हो जाते हैं पर बहुत से ऐसे भी होते हैं जो घोख घोख कर थक जाते हैं, पर अन्तःपात या बोध उन्हें यथावत् नहीं होता। गीता में भगवद्विभूति को गिनाते गिनाते भगवान् ने कहा:—

"हे अर्जुन, अब हम कहां तक तुम से अपनी विभूति गिनाते रहें। जिस मनुष्य में कोई बात असाधारण और लोकोत्तर पाओ उसे भगवद्विभूति ही मानो।" यह लोकोत्तर चमत्कार प्रतिभा ही है जिसे कृष्ण भगवान् ने अपनी विभूति कहा है। धन्य हे वे जिनमें किसी तरह की प्रतिभा है। सफल जन्म उन्ही का है।



( २१ )

## माधुर्य ।

"माधुर्य" उस प्रकार के स्वादु को कहते हैं जो मिठाई या मिठास के नाम से ग्रहण किया जाता है। यद्यपि और भी रस हैं पर मिठास का जो कुछ अनोखा असर मनुष्य के चित्त पर होता है वह और दूसरे रसों में नहीं होता। इसी से चित्त को प्रसन्न करनेवाले दूसरे रस भी मधुर या मीठे कहे जाते हैं। देहाती लोग अपनी बोली में कहते हैं "ज्वार कै रोटी भल मिठात है।" तो निश्चय हुआ कि जो मन को भावै या रुचै वह मिठास है। तब माधुर्य से तात्पर्य यह हुआ कि जो चित्त को कड़ुआ न मालूम हो—चाहो उसका ज्ञान हमको पांच इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय के द्वारा हुआ हो—वह मीठा कहावैगा। कोई अच्छी सूरत जो नेत्र को सुहावनी मालूम हुई तो कहते हैं इसकी रूप-माधुरी चित्त को खींचे लेती है। जो बात कान को भली लगी, जैसा बालकों की तोतली बोली या किसी का प्यारा वचन, तो उसे मीठा वचन कहते हैं। जैसा कहा भी है:-

**कागा काको धन हरै कोयल काको देय।**
**मीठो वचन सुनाय के जग अपनो करलेय॥**

इसी तरह मन्दार, मालती, चमेली, जूही आदि की सुगन्ध को मीठी सुगन्ध कहते हैं। चंपा, केवड़ा, वेला आदि कई फूलों की महक को कर्कश या कड़ी महक कहते हैं, इसी लिये कि थोड़ी देर में उससे जी ऊब जाता है और फिर उसे अधिक सूंघने को जी नहीं चाहता। मिठास के जहां और सब गुण या सिफ़तें हैं वहां एक

यह भी है कि इसके चिरकाल और निरन्तर सेवन से भी जी नहीं ऊबता बल्कि यही मन होता है कि यह और भी अधिक मिलती जाय तो अच्छा हो। इसी तरह जो वस्तु छूने में कोमल, चिक्कण और सुखद है उसे मधुरस्पर्श कहते हैं। महा कवि भवभूति ने स्पर्श सुख की मिठास को "उत्तर चरित" के कई श्लोकों में बहुत अच्छी तरह पर दिखाया है—तद्यथा—

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा।
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः॥
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढ़ेन्द्रियगणो।
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च॥

जिह्वा के द्वारा जिस मधुरता का अनुभव हम करते हैं वह प्रत्यक्ष ही है। किसी भांग छनन्ते ब्राह्मण या मथुरा के चौबे से इस मधुरता के बारे में पूछ लो जिनका सिद्धान्त है कि 'जिसे मीठा न रुचता हो उसकी ब्राह्मणता में कुछ कसर समझना चाहिये।' प्रसाद, ओज, माधुर्य, कविता के इन तीन गुणों में माधुर्य भी एक है। कोकिल-कण्ठ जयदेव की कविता गीत गोविन्द, आदि से अन्त तक, माधुर्य गुण-विशिष्ट है। माधुर्य का गुण दण्डी ने काव्यादर्श में इस तरह पर दिया है:—

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
येनमाद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः॥

अर्थात् जिस वाक्य में रस टपकता हो वह मधुर है। कभी को वाक्य से जो अर्थ प्रतिपादित होता है उसमें भी रस रहता है। शृंगार, करुणा और शान्त रस में माधुर्य, समास का न होना है, या समास हों भी तो बहुत थोड़े और छोटे छोटे दो या तीन पद के हों, पर अक्षर सब कोमल हों, टवर्ग आदि मूर्द्धन्य वर्ण न हों। जयदेव के काव्य में ये सब गुण हैं

इसलिए गीत गोविन्द माधुर्य का पूर्ण उदाहरण है। हास्य, अद्भुत तथा भयानक रस में माधुर्य तभी आता है जब ग, ज, द, व आदि अक्षर बहुत हों और समास भी न बहुत कम और न बहुत अधिक हों। वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में जब अक्षर बड़े विकट और कड़े हों और लम्बे लम्बे समास हों तभी माधुर्य पैदा होता है। जैसा भौंरा फूल का रस चूस मतवाला हो जाता है वैसा ही नागरिक जन ( ग्रामीण हल जोतने वाले नहीं ) जिसे सुन मतवाले से हो उठें वह रस है। बस माधुर्य का मुख्य लक्षण यही है। किसी का मत है :—

"पृथक्पदत्वं माधुर्यम् ॥"

अर्थात् अलग पदों का होना माधुर्य है जैसा :—

"श्वासान्मुंचति भूतले विलुठति त्वन्मार्गमालोकते।"

अथवा—"अपसारय घनसारं, कुरुहारं दूर एव किं कमलैः। अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला"।

साहित्यदर्पणकार माधुर्य का लक्षण यह देते हैं :—

"चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।"

अर्थात् चित्त के पिघलाने वाले मानसिक भावों से जो एक प्रकार का आनन्द चित्त में हो वह "माधुर्य" है यथा:—

लताकुंजं गुंजन्मदवदलिपुंजं चपलयन्।
समालिंगन्नंगं द्रुततरमनंगं प्रबलयन् ॥
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्।
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशिदिशि ॥

उत्तम नायक या नायिका का एक अलंकार भी माधुर्य है जैसा :—

"संक्षोभेष्वप्यनुद्वेगो माधुर्यं परिकीर्तितम् ॥"

अर्थात् क्षोभ या घबड़ाहट पैदा करने वाली बात के होने पर भी चित्त में उद्वेग न होना माधुर्य है। और भी:—

"सर्वावस्थाविशेषेपि माधुर्यं रमणीयता ॥"

अर्थात् कैसी ही अवस्था में होकर भी जो मन को रमावे वह माधुर्य है—जैसा शकुन्तला के रूप-वर्णन में कालिदास ने लिखा है :—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं ।
मलिनमपि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ॥
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ।
किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

माधुर्य का यह विवरण तो वह है जो कवियों ने निश्चय कर रक्खा है। अब लौकिक बातचीत में जो बात मृदुतापूर्वक की जाती है उसमें भी मिठास का शब्द लगाया जाता है जैसा मीठा बैर, मीठी छुरी, मीठी नींद। नींद में भला क्या मीठापन होगा? किन्तु बड़ी देर तक मेहनत के उपरान्त लेट गये एक झांप सी आ गई, सब थकावट दूर हो गई, शरीर स्वस्थ और फिर परिश्रम करने को तरोताज़ा हो गया वह "मीठी नींद" कहलाई। इससे तात्पर्य यह निकला कि जो सन्तोष के बोधक या सुखद पदार्थ हैं उन सबों में मधुर या मिठास का प्रयोग किया जाता है। तो निश्चय हुआ माधुर्य जगत्कर्त्ता की अद्भुत शक्ति है, जिसके द्वारा सात्विक भावों का उद्गार मनुष्य के चित्त पर हुआ करता है। बल्कि यों कहा जाय तो ठीक हो कि न केवल सात्विक ही बल्कि राजसिक और तामसिक का भी जो उत्तमोत्तम भाग या सारांश है वह मिठास या माधुर्य के नाम से कहलावेगा, क्योंकि कडुए और तीते में भी जो रुचै और अत्यन्त स्वादिष्ट हो यह भी तो "मिठाता है" ऐसा कहा जाता है—इत्यादि ऊहापोह से निश्चय हुआ कि इस दृश्य जगत् में जो इन्द्रियों को प्रलोभनकारी और मन का आकर्षक हो वह माधुर्य है।

( २२ )

# आशा।

हमारे यहां के ग्रन्थकारों ने काम को मनसिज कहा है। यदि मनसिज शब्द का अर्थ केवल इतना ही लिया जाय कि "मन में उत्पन्न हुए भाव" तो हमारी समझ में आशा से बढ कर मीठा फ़ल देनेवाली हृदय की विविध दशाओं में से दूसरी कोई दशा नहीं हो सकती। यद्यपि हमारे यहां कवियों ने स्मर की दश दशा माना है, किन्तु उस रास्ते को छोड मोटे ढंग पर ध्यान दें और मान लें कि 'काम' या तो उस पशु-बुद्धिरूपी मोहान्धकार का नाम है जो मनुष्य के लज्जा, नम्रता आदि गुणों की मीठी रोशनी का नाश कर देता है और जो इस दशा में मनुष्य जाति का कलंक है अथवा वह संसार के सब सम्भव और असम्भव प्यार मात्र का नमूना है, तब भी हम यह नहीं कह सकते कि इन ऊपर लिखे हुए काम के दो रूपों के पाश में उतने लोग फँसे हों जितने स्वेच्छया आनन्दपूर्वक अपने को आशा के पाश में बांधे हुए हैं। 'काम' एक रोग है जिससे चाहो थोडा सा सुख भी मिलता हो पर उस रोग के रोगी इसकी दवा अन्यत्र ही ढूंढते हैं; पर आशा को देखिये तो वह स्वयं एक ऐसे बडे भारी रोग की दवा है जिसकी दूसरी दवा सोचना असम्भव है। वह रोग नैराश्य है जिससे दारुणतर क्लेश की दशा मनुष्य के चित्त के लिए हो ही नहीं सकती। इस वास्ते यह जो हमारे यहां की कहावत है कि

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्य परमं सुखम्॥"

हमारी समझ में नहीं आती। यदि वर्ष के भिन्न भिन्न मौसिमों की तरह मनुष्य के हृदय में भी तरह तरह की दशाओं

का दौरा हुआ करता है और उसमें भी ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर इत्यादि ऋतु एक दूसरे के बाद आते हैं तो यही कहना पड़ेगा कि नैराश्य के विकट शीतकाल की रात्रि के बाद आशा ही रूपी ऋतुराज के सूर्य का उदय होता है। हृदय यदि प्रमोद-उद्यान है तो उसका पूर्ण सुख आशा ही रूपी बसन्त ऋतु में होता है।

क्या ईश्वर की महिमा इसमें नहीं देखी जाती कि दुःखी से दुःखी जनों का सर्वस्व चला जाने पर भी आशा से उनका साथ नहीं छूटता। यदि मान और प्रतिष्ठा बहुत बड़ी चीज़ है जिसको उसके भक्त, धन के चले जाने पर भी अपने गांठ में बांधे रहते हैं तो सोचना चाहिये कि वह कितनी प्रिय वस्तु होगी जो दैवात् प्रतिष्ठाभंग होने पर भी मनुष्य के हृदय को ढाढ़स और आराम देती है। आशा को यदि मनुष्य के जीवन रूपी नौका का लंगर कहें तो ठीक होगा। क्योंकि जैसा बड़े से बड़े तूफ़ान में जहाज़ लंगर के सहारे स्थिर और सुरक्षित रहता है वैसा ही मनुष्य भी अपने जीवन में घोर विपदाओं को झेलता हुआ आशा के सहारे स्थिर और निश्चलमना बना रहता है। मनुष्य के जीवन में कितना ही बड़ा से बड़ा काम क्यों न हो उसके करने की शक्ति का उद्भव या प्रसव-भूमि यदि इस आशा ही को कहें तो कुछ अनुचित न होगा। क्योंकि किसी बड़े काम में आशा से बढ़कर बुद्धिमत्ता की अनुमति देनेवाला और कौन मंत्री होगा? मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को बुद्धिमानों ने विविध भावनाओं के अभिनय की केवल रङ्गभूमि माना है। परदे के पीछे से धीरे धीरे वह शब्द बतला देनेवाला, जिससे हम चाहो जो पात्र बने हों और चाहो जिस रस के नाटक का अभिनय अपने चरित्र द्वारा करते हों उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहते हैं, इस आशा के अतिरिक्त

दूसरा और कौन प्राम्प्टर है ( Prompter ) है ? और भी यदि संसार को भिन्न भिन्न कलह की रण-भूमि मानें तो उस अपरिहार्य रणभूमि में घायलों के घाव पर मरहम रखने वाला जर्राह आशा ही को कहना चाहिये।

जिस किसी ने संसार में आकर किसी बात का यत्न न किया हो और किसी वस्तु की खोज में अपने को न डाल दिया हो उससे बढकर व्यर्थ और नीरस जीवन किसका होगा ? जब यह बात है तो बतलाइये किसी प्रकार के प्रयत्नमात्र की जान आशा को छोड़ किसी दूसरे को कह सकते हैं ? क्योंकि कैसे सम्भव है कि मनुष्य किसी प्रिय वस्तु की प्राप्ति के प्रयत्न में लगा हो और आशा से उसका हृदय शून्य हो ? किसी काम के अभिलषित परिणाम में अमृत का गुण भर देना यह शक्ति सिवाय आशा के और किसमें है ? संसार में जो कुछ भलाई हुई है या होगी उस सब का मूल सदा प्रयत्न है और इस प्रयत्न की जान आशा है।

क्या झूठी आशा से भी किसी को कुछ दुःख हो सकता है ? क्या झूठी आशा से नैराश्य अच्छा है ? नहीं, नहीं, सच पूछिये तो ऐसी कोई वस्तु संसार में हई नहीं जिससे नैराश्य अच्छा हो, वल्कि नैराश्य से बढ़कर बुरी दशा मन के वास्ते कोई हई नहीं है। यदि आशा केवल मृगतृष्णा ही है तब भी वह नाउम्मैदी से अच्छी है। इस आशारूपी प्रबल वायु से हृदय रूपी सागर में जो दूर तक की तरंगें उठती हैं उन तरंगों की अवधि नज़र में नहीं आ सकती। संसारमात्र इस आशा की रस्सी से कसा हुआ है। इसे हम कई तरह पर सिद्ध कर चुके हैं। अब आगे चलिये स्वर्ग या बैकुंठ क्या है ? मनुष्य के हृदय में भांति भांति की लालसा और आकांक्षा का

केवल साक्षीमात्र। वास्तव में स्वर्ग है या नहीं इसका तर्क वितर्क इस समय यहां हम नहीं करते। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्वर्ग शब्द की सत्ता ही मनुष्य के लिए प्रबल आशा का सबूत है, क्योंकि जब इस बात को सोच कर चित्त दुःखी होता है कि अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा ठीक न्याय चाहिये वैसा इस संसार में हम नहीं देखते तो उसी बुद्धि को स्वर्ग के सुखों के द्वारा समझाने वाला आशा को छोड़ और दूसरा कौन गुरु है? आशा ही एक हमारा ऐसा सच्चा सुहृद् है जो लड़कपन से अन्तकाल तक साथ देता है और आशा ही के द्वारा उत्पन्न वे भाव हैं जो हमको मरने के बाद की दशा के बारे में भी सोचने को रुजू करते हैं।

हमको कुछ ऐसा मालूम होता है कि अपने में आशा की दृढ़ता चाहना ही मनुष्य के हृदय की प्राकृतिक दशा है। ध्यान देकर सोचिये तो नैराश्य की अवस्था मनुष्य के जीवन में केवल क्षणिक है। नैराश्य के भाव मन में उदय होते ही चट्ट आशा का अवलम्बन मिल जाता है। "कितने थोड़े समय के लिए आदमी नैराश्य को जी में जगह देता है और कितनी जल्द फिर उसको निकाल कर बाहर फेंक देता है।" सिर्फ यही बात इसका पक्का सबूत है कि प्राकृतिक हित मनुष्य का आशा ही में है। आशा ही वह पुष्टई है जिसे खाकर आप जो चाहें वह काम करिये शिथिलता और आलस्य आपके पास न फटकने पावेगा। क्योंकि यह असम्भव है कि आशा मन में हो फिर भी मनुष्य सिर नीचा किए हुए रंज में बैठा रहे। आशा की उत्तेजना यदि मन में भरी है तो ऐसी कातर दशा आने ही न पावेगी। इससे यदि आशा ही को आदमी की ज़िन्दगी का बड़ा भारी फर्ज़ मानें तो कुछ अनुचित नहीं है।

क्योंकि हम देखते हैं कि आशा ही के विद्यमान रहने पर हम अपने सब फ़र्ज़ों को पूरी पूरी तरह पर अदा कर सकते हैं। पर इसी के साथ ही एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि सामान्य आशा को अपने जीवन की दृढ़ता के लिये अपना साथी रखना और बात है, पर किसी एक बात की प्राप्ति की आशा पर अपने जीवनमात्र के सुख को निर्भर मानना दूसरी बात है। पहिले रास्ते पर चलने से चाहे जीवन में हमें सुख का सामना हो या दुःख का हम दोनों में एक सा दृढ़ हैं। किन्तु दूसरे रास्ते पर चलने में यह चूक होगी कि हमने जिस आशा पर अपना बिलकुल सुख छोड़ रक्खा है वह आशा यदि टूट गई तो हमारी हानि ही हानि है।

कहने का तात्पर्य यह कि जहां ईश्वर ने अनन्त ऐसे रास्ते मनुष्य की प्रकृति को दृढ़, सहनशील और विमल करने के खोले हैं उन रास्तों में आशा ही पर चलकर मनुष्य शनैः शनैः अपना कार्य सिद्ध कर सकता है। इस कारण मनुष्य को अपनी भलाई के लिये आशा से बढ़कर और क्या हो सकता है और मित्रगणों को भी, यदि उनको आवश्यकता हो, तो आशा से बढ़कर और कौन भेंट दी जा सकती है। यदि अन्त काल में चिकित्सक आशा ही के द्वारा ... तक कर सकता है तो इससे बढ़ कर ... ची में पाइयेगा। सारांश यह कि इस संसार ... दूर की भलाई का परम आधार आशा ही है ... हमने जैसा ऊपर कहा आशा का रूप ही ... यही ... हैं कि यह लेख आप ... रोच

( २३ )

## आंसू ।

मनुष्य के शरीर में आंसू भी गड़े हुए खज़ाने के माफ़िक है। जैसा कभी को कोई नाजुक वक्त आ पड़ने पर सञ्चित पूंजी ही काम देती है उसी तरह हर्ष, शोक, भय, प्रेम इत्यादि भावों को प्रगट करने में जब सब इन्द्रियां स्थगित होकर हार मान बैठती हैं तब आंसू ही उन उन भावों को प्रगट करने में सहायक होता है। चिरकाल के वियोग के उपरान्त जब किसी दिली-दोस्त से मुलाक़ात होती है तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफ़ान में अंग अंग ढीले पड़ जाते है, वाष्पगद्‌गद कण्ठ रुंध जाता है, जिह्वा इतनी शिथिल पड जाती है कि उससे मिलने की खुशी को प्रगट करने के लिये एक एक शब्द मानों मनों बोझ सा मालूम पड़ता है। पहिले इसके कि शब्दों से वह अपना असीम आनन्द प्रगट करै सहसा आंसू की नदी उसकी आंख में उमड़ आती है और नेत्र के पवित्र जल से वह अपने प्राण-प्रिय को नहलाता हुआ उसे बग़लगीर करने को हाथ फैलाता है। सच्चे भक्त और उपासक की कसौटी भी इसी से हो सकती है। अपने उपास्यदेव के नाम-सङ्कीर्त्तन में जिसे अश्रुपात न हुआ, मूर्त्ति का दर्शन कर प्रेमाश्रुपात से जिसने उसके चरण कमलों का अभिषेक न किया, उस दाम्भिक को भक्ति के आभासमात्र से क्या फल? सरस कोमल चित्त वाले अपने मनोगत सुख दुःख के भाव को छिपाने की हज़ार हज़ार चेष्टा करते हैं कि दूसरा कोई उनके चित्त की गहराई को न थहा सके पर अश्रुपात भाव-गोपन की सब चेष्टा को व्यर्थ कर देता है। मोती सी आंसू की बूंदें जिस समय सहसा नेत्र से झरने लगती

हैं उस समय उसे रोक लेना बड़े बड़े गम्भीर प्रकृति वालों को भी शक्ति के बाहर होता है। भवभूति ने, जिन को प्रकृति का चित्र अपनी कविता में खींच देना खूब मालूम था, कई ठौर अश्रुपात का बहुत उत्तम वर्णन किया है, जिसमें यही आशय निकलता है यथा :—

"अयन्ते बाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो ।
विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः ॥
निरुद्धोप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया ।
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मातहृदयः ॥"

"विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा ॥
स्नपयति हृदयेश स्नेहनिष्यन्दिनी ते ।
धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥"

यदि सृष्टिकर्त्ता अत्यन्त शोक में अश्रुपात को प्राकृतिक न कर देता तो वज्रपातसम दारुण दुःख के वेग को कौन सम्हाल सकता। इसी भावार्थ का पोषक भवभूति का नीचे का यह श्लोक बहुत उत्तम है :—

पूरोत्पीड़े तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥

अर्थात् बरसात में तालाब जब लबालब भर जाता है तो बांध तोड़ उसका पानी बाहर निकाल देना ही सुगम उपाय बचाव का होता है—इसी तरह अत्यन्त शोक से क्षोभित तथा व्याकुल मनुष्य को अश्रुपात ही हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेने का उपाय है। बल्कि ऐसे समय रोना ही राहत है। जैसा भवभूति ने लिखा है :—

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा।
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मः क्लमयति ॥
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्युसुलभ-
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम् ॥

कोई शूरवीर, जिसको रणचर्चामात्र सुन जोश आ जाता है और जो लड़ाई में गोली तथा बाण की वर्षा को फूल की वर्षा मानता है, वीरता के उमग में भरा हुआ युद्धयात्रा के लिये प्रस्थान करने को तैयार है। विदाई के समय विलाप करते हुए अपने कुनबा वालों के आंसू की एक एक बूंद की क्या कीमत है यह वही जान सकता है। वह शसपंज में पड आगे को पांव रख फिर हटा लेता है। वीर और करुणा दो विरोधी रस अपनी अपनी ओर से उमड उमड़ देर तक उसे किंकर्तव्यतामूढ़ किये रहते हैं। आंखमें आंसू उन्हीं अकुटिल सीधे सत्पुरुषों के आता है जिनके सच्चे सरल चित्त में कपट और कुटिलाई ने स्थान नहीं पाया है। निठुर निर्दयी मक्कार की आंखें, जिसके कट्टर कलेजे ने कभी पिघलना जाना नहीं, दुनियां के दुःख पर क्यों पसीजेंगी। प्रकृति ने चित्त का आंख के साथ कुछ ऐसा सीधा सम्बन्ध रख दिया है कि आंख चित्त की वृत्तियों को चट्ट पहचान लेती है और तत्काल तदाकार अपने को प्रगट करने में देर नहीं करती। तो निश्चय हुआ कि जो बेकलेजे हैं उनकी बैल सी बडी बड़ी आंखें केवल देखने ही को हैं, चित्त की वृत्तियों का उन पर कभी असर होता ही नहीं। चित्त के साथ आंख के सीधे सम्बन्ध को बिहारी कवि ने कई दोहों में प्रगट किया है यथा:—

कोटि यतन कीजै तऊ, नागरि नेह दुरै ना।
कहे देत चित चीकनो, नई रुखाई नैन ॥

हैं उस समय उसे रोक लेना बड़े बड़े गम्भीर प्रकृति वालों की भी शक्ति के बाहर होता है। भवभूति ने, जिन को प्रकृति का चित्र अपनी कविता में खींच देना खूब मालूम था, कई ठौर अश्रुपात का बहुत उत्तम वर्णन किया है, जिसमें यही आशय निकलता है यथा :—

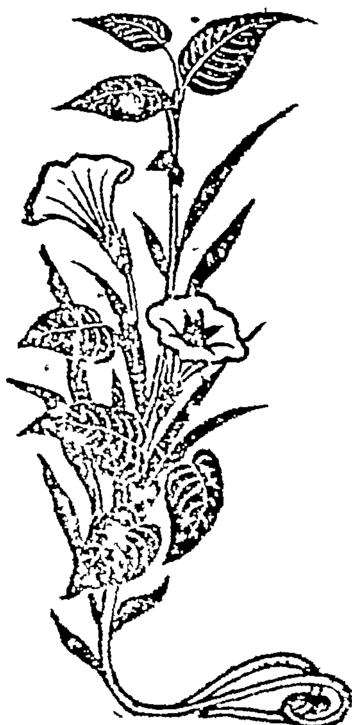
"अयन्ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो।
विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः॥
निरुद्धोप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया।
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मातहृदयः॥"
"विलुलितमतिपूरैर्वाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा॥
स्नपयति हृदयेश स्नेहनिष्यन्दिनी ते।
धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः॥"

यदि सृष्टिकर्त्ता अत्यन्त शोक में अश्रुपात को प्राकृतिक न कर देता तो वज्रपातसम दारुण दुःख के वेग को कौन सम्हाल सकता। इसी भावार्थ का पोषक भवभूति का नीचे का यह श्लोक बहुत उत्तम है :—

पूरोत्पीड़े तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥

अर्थात् बरसात में तालाब जब लबालब भर जाता है तो बांध तोड़ उसका पानी बाहर निकाल देना ही सुगम उपाय बचाव का होता है—इसी तरह अत्यन्त शोक से क्षोभित तथा व्याकुल मनुष्य को अश्रुपात ही हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेने का उपाय है। बल्कि ऐसे समय रोना ही राहत है। जैसा भवभूति ने लिखा है:—

बहुधा आंसू का गिरना भलाई और तारीफ में दाखिल है। हमारे लिये आंसू बड़ी बला है। नज़ले का ज़ोर है, दिन रात आंखों से आंसू टपकता रहता है, ज्यों ज्यों आंसू गिरता है त्यों त्यों बीनाई कम होती जाती है; सैकड़ों तदबीरें कर चुके, आंसू का टपकना बन्द न हुआ। क्या जाने बंगाल की खाड़ी वाला समुद्र हमारे ही कपार में आकर भर रहा है। आंख से तो आंसू चला ही करता है आज हमने लेख में भी आंसू ही पर कलम चला दी, पढ़ने वाले इसे निरी नहूसत की अलामत न मान हमें क्षमा करेंगे।



दहैं निगोडे नैन ये, गहैं न चेत अचेत।
हौं कसि कै रिस को करौं, ये निरखत हंसि देत ॥

मृतक के लिये लोग हज़ारों लाखों ख़र्च कर आलीशान रौज़े, मक़बरे, क़ब्रें संगमरमर या संगमूसा की बनवा देते हैं; क़ीमती पत्थर, मानिक, ज़मुर्रद से आरास्ता उन्हें करते हैं; पर वे मक़बरे क्या उसकी रूह को उतनी राहत पहुंचा सकते हैं जितनी उसके दोस्त आंसू के क़तरे टपका कर पहुंचाते हैं?

इस आंसू में भी भेद है। कितनों का पनीला कपार होता है, बात कहते रो देते हैं। अच्छर उनके मुख से पीछे निकलेगा, आंसुओं की झड़ी पहिले ही शुरू हो जायगी। स्त्रियों को जो बहुत आंसू निकलता है, मानो रोना उनके पास गिरों रहता है, इसका कारण यही है कि वे नाम ही की अबला और अधीर हैं। दुःख के वेग में आंसू को रोकने वाला केवल धीरज है उसका टोटा यहां हरदम रहता है, तब इनके आंसू का क्या ठिकाना! सत्वशाली धीरज वालों को आंसू कभी आता ही नहीं। कड़ी से कड़ी मुसीबत में दो चार क़तरे आंसू के मानो बड़ी बरकत हैं। बहुत मौक़ों पर आंसू ने ग़ज़ब कर दिया है। सिकन्दर का क़ौल था कि मेरी मां की आंख के एक क़तरा आंसू की क़ीमत मैं बादशाहत से भी बढ़कर मानता हूं। रेणुका के अश्रुपात ही ने परशुराम से २१ बार क्षत्रियों का संहार कराया। कितने ऐसे लोग भी हैं जिन्हें आंसू नहीं आता। इसलिये जहां पर बड़ी ज़रूरत आंसू गिराने की हो तो उनके लिये प्याज़ का गट्ठा पास रखना बड़ी सहज तरकीब निकाली गई है। प्याज़ ज़रा सा आंखमें छू जाने से आंसू गिरने लगता है।

“ किसी को बैगन बावले किसी को बैगन पथ्य ॥ ”

पद्मे ! मूढजने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो
नाहं मत्सरिणी न चापि चपला नैवास्मि मूर्खे रता।
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां
विद्वान्सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः॥

कवि कहता है:—"लक्ष्मी तुम मूर्ख के पास जाती हो, पढ़े लिखे विद्वानों से तुम्हें क्या ईर्षा है जो वहां नहीं जाती ?" तब लक्ष्मी जवाब देती है—"हमें विद्वानों से कोई ईर्षा नहीं है, न हम चंचला हैं—मूर्खों को जो हम धन देती हैं उसका कारण यह है कि विद्वानों का तो सब लोग मान और प्रतिष्ठा करते हैं, मूर्खों को कौन पूछता यदि हम भी उनके पास न जाती।"

ऐसा ही लक्ष्मी और सरस्वती के सम्वाद में अनेक कल्पनाएं कवियों ने की हैं उनमें यह एक बडी उत्तम है:—

विद्वांसः कृतबुद्धयः सखि ! मम द्वारि स्थिता नित्यशः
श्रीमन्तोपि मया विना पशुसमास्तस्मादहं श्रेयसी।
श्रीवाग्देवतयोरमूनि वचनान्याकर्ण्य वेधाश्चिरा-
दूचे श्रेयतरे उभे यदि भवेदेको विवेको गुणः॥

लक्ष्मी सरस्वती से कहती हैं:—"सखि ! विद्वान पढ़े लिखे मेरे कृपापात्रों के द्वार पर नित्य हांथ पसारे खड़े रहते हैं।" तब सरस्वती ने कहा:—"हां ठीक है, पर श्रीमन्त भी मेरे न रहने से पशुतुल्य देखे जाते हैं, तब हमी न अच्छी हुई"। इस तरह पर विवाद के उपरान्त दोनों ने ब्रह्मा को पंच बदा। ब्रह्मा दोनों की बात सुन देर तक सोचने के उपरान्त बोले:— "तुम दोनों ही अच्छी हो यदि एक विवेक गुण रहे तो— अर्थात् विवेकशून्य न तो लक्ष्मी का कृपापात्र अच्छा न सरस्वती ही का"।

बुरा से बुरा काम-जिसका करने वाला राजा के यहां से

दण्ड पाने योग्य होता है और जो समाज में अत्यन्त घृणित है–उसे भी धन के लिए करते लोग ज़रा नहीं सकुचाते। इसी से उर्दू के नामी शायर सौदा का क़ौल है:—

"मादर पिदर बिरादर जो जो कहो सो ज़र है"।

फ़ारसी के एक दूसरे शायर का भी ऐसा ही क़ौल है:—

"धन! तू ईश्वर नहीं है, पर जितने दोष हैं सबों का ढांपने वाला है और मनुष्य के जीवन में जितनी आवश्यकतायें हैं सबों का पूरा करने वाला है"।



( २५ )

## श्री शंकराचार्य और गुरु नानक देव।

ये दोनों हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध पुरुषों में अग्रगण्य और बड़े महात्मा हो गये हैं। पंजाब में जैसा गुरु नानकदेव मान-नीय हैं वैसा ही दक्षिण तथा महाराष्ट्र देश में श्री शंकराचार्य माने जाते है। प्रतिमा पूजन के सिद्धान्तों को काटने वाले और ईश्वर की निर्गुण उपासना के पोषक दोनो थे। किन्तु शंकराचार्य जाति के ब्राह्मण थे, इसलिए ब्राह्मणों के उसकाने से, जिससे ब्राह्मणों की जीविका में बाधा न पहुंचे, पंचायतन-पूजा अर्थात् विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और शक्ति की पूजा और आराधना फिर से स्थापित की और बौद्धों को इस देश से निकलवा दिया। इसके विरुद्ध नानकशाह ने ब्राह्मणों का ज़ोर बहुत ही बहुत तोड़ा और नाम के माहात्म्य को अधिकाधिक बढ़ाया। सच भी है, नाम संकीर्तन में लगा हुआ, चित्त का शुद्ध, सीधा सादा मनुष्य कुटिलचित्त, त्रिवेदी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। शकर पूर्ण विद्वान् तथा वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक थे। ये उस समय हुए जब मुसलमानों का ज़ोर न बढ़ने से संस्कृत का पठन पाठन देश मे पूरी तरह जारी था और देश के हर एक प्रान्त में मंडन मिश्र के से नामी पण्डित विद्यमान थे। उस समय शंकर ही का सा विद्वान् प्रतिष्ठा पा सकता और सर्व-ग्राह्य हो सकता था। दूसरे यह कि बौद्ध लोग, जिनके मुका-बिले शंकराचार्य उठ खड़े हुए, बड़े दार्शनिक थे। शङ्कर ही का सा सुयोग्य पण्डित उनसे पार पा सकता था। इधर नानक जिस समय और जिस देश में हुए उस समय और उस देश में मुसलमानों का बड़ा अत्याचार था; चाल चलन,

रीति बर्ताव, रहन सहन लोगों का यावनिक हो गया था; बोली और पहनावे तक में मुसलमानी छागई थी। उस समय संस्कृत के पढने पढाने से कहीं सरोकार न रह गया था। संस्कृत की जगह लोग अरबी फ़ारसी के बडे मुल्ला और आ'लिम होने लगे। ऐसे समय नानक ही ऐसे अल्पविद्य किन्तु कुशाग्रबुद्धि का काम था कि वे खान पान के अनेक आचार विचार पर ध्यान न दे एक निर्गुण की उपासना के द्वारा हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक करें। आपस की सहानुभूति और हमदर्दी लोगों में आजाने की बहुत कुछ उन्होंने चेष्टा की। उसी समय के लगभग जैसा बङ्गाल में कृष्णचैतन्य महाप्रभु भक्ति और परस्पर के प्रेम के पोषक हो रहे थे और जाति पांति के झगडे को तोड़ रहे थे वैसाही पंजाब में गुरू नानक ने जाति पाँति को फूट की बुनियाद समझ वर्ण-विवेक को यहां तक घटाया कि हिन्दू मुसलमान दोनों को एक कर दिया। हिन्दुस्तान के दो प्रान्त बङ्गाल और पंजाब जो कुछ कुछ आगे को बढ रहे हैं यह महाप्रभु कृष्णचैतन्य और गुरू नानक इन्हीं दो महात्माओं के उपदेश का फल है। सारांश यह कि नानक यद्यपि शंकर के से विद्वान् न थे किन्तु चरित्र की पवित्रता, सौजन्य, आस्तिक्य-बुद्धि में शंकर से किसी अंश में कम न थे।

अब देखना चाहिये कि राजनैतिक विषयों में और मुल्की मामलों में इन दोनों के उपदेश और शिक्षा का क्या फल हुआ। शंकर ने बौद्धों को यहां से निकाल शासन की तिर शैली में बड़ी खलबली मचा दी और बहुत चाहा कि भारत फिर वैसा ही हो जाय जैसा वैदिक ऋषियों के समय में था, किन्तु भारत सो न होकर आधा तीतर आधा बटेर सा होगया।

अब इस समय हम लोगों में कर्मकाण्ड-कलाप और यज्ञोपवीत, विवाह आदि की जो पद्धतिया प्रचलित हैं वे सब उस समय की बनी हैं जब शंकर ने हिन्दुस्तान को बौद्धों के हाथ से छुटा कर इसका पुनः संस्कार किया और ब्राह्मणों को फिर पूरी ताक़त मिली। बौद्धों के उच्छिन्न हो जाने से अपनी मनमानी करने में उनकी रोक टोक करने वाला अब कोई न रहा। दूसरे शैव और वैष्णवों का ऐसा विरोध बढ़ा कि फूट को फैलने के लिये पूरा मौका और स्थान मिल गया। इस का फल यही हुआ कि मुल्क में अब तक इतनी कमज़ोरी छाई हुई है कि अगरेज़ी शासन की शान्ति और अगरेज़ी शिक्षा के प्रचार से भी लोगों के कुसस्कार बदलते ही नहीं। संशोधन का बीज जमने में वही बात याद आती है कि "जनम का कोढ़ कहीं एक एतवार से दूर हुआ है"।

शंकर तथा रामानुज न हुये होते तो मुसलमानों को यहां कदम ज़माने में इतनी सुगमता न होती और न मुल्क में इतनी कमज़ोरी फैल जाती। सब से बडी हानि शंकर से वेदान्त दर्शन को हुई जिसके सिद्धान्त बदल कर और के और हो गये। वेदान्त के प्रवर्तक व्यासदेव का प्रयोजन वेदान्त सूत्रों के बनाने का कुछ और ही था। शकर उन्हें और ही मतलब पर झुका लाये। व्यासदेव का यह कभी तात्पर्य वेदान्त के प्रचलित करने से न था कि इस प्रकार अकर्मण्यता देश में छा जाय और संसार को मिथ्या मान हम स्वयं ब्रह्म बन बैठें। वरच उनका तात्पर्य यह था कि हम सुख दुःख को एकसा समझ अपना काम करने में न चूकें तथा स्थिर अध्यवसाय, दृढ़ निश्चय, व्यवसायात्मिका बुद्धि को चित्त में हर समय अवकाश देते रहें, दुःख में घबड़ा न उठें और सुख में

मारे घमण्ड के फूल न जायं, संसार को स्थिर अनश्वर मान कर्मयोग में सदा लगे रहैं इत्यादि। गुरू नानक से बुद्धिमान् ने इन सब बातों को सोच विचार कबीर के सिद्धान्तों को विशेष आदर दिया। किसी एक ख़ास मज़हब या धर्म में जकड़े रहना राजनैतिक तरक्की का बड़ा बाधक है। जब तक किसी खास धर्म की पाबन्दी हम में लगी रहेगी तब तक मनुष्य जाति में साधारण प्रेम, जाति-वात्सल्य, मुल्की तरक्की के उद्योग में सबों के साथ सहमति कभी हो ही नहीं सकती। इसलिये नानक ने हर एक धर्म के Forms and ceremonies (बाहरी बनावट) को तुच्छ समझ तथा नाम संकीर्तन आदि के द्वारा ईश्वर की ओर भक्ति-भाव और आस्तिक्य-बुद्धि को मुख्य समझ, उसी के अनुसार अपने अनुयायियों को चलने के लिये कहा और अपने शिष्यों को वैसी ही शिक्षा दी। अन्त को इसका परिणाम यह हुआ कि गुरु गोविन्द सिंह और रणजीत सिंह ऐसे नररत्न पंजाब में पैदा हुए, और अब तक भी सिक्खों में जैसा कौमी जोश है वैसा तमाम हिन्दुस्तान के किसी प्रान्त के लोगों में नहीं है।

शंकराचार्य ने पक्षपात और अपने मत की खींच यहां तक रक्खी कि वे सर्वसम्मत न हो सके। गुरु नानक के उदार चित्त में न पक्षपात था और न किसी से विरोध या अपने मत की खींच थी। इसलिये न केवल पंजाब भर में वरन और प्रान्त के लोगों में भी वे सर्वसम्मत हुये। अस्तु, ये दोनों महात्मा जैसे रहे हों सर्वथा माननीय हैं, किन्तु इन दोनों के मत के फ़कीर सन्यासी और उदासी देश के अकल्याण के बड़े भारी द्वार हैं। अब भी कहीं कहीं दो एक सन्यासी ऐसे देखे जाते हैं जो विरक्ति, त्याग तथा पाण्डित्य में संन्यास-आश्रम

को शोभा हैं। किन्तु उदासी तो बहुधा ऐसे ही पाये जाते हैं, जो विषयाशक्ति में गृहस्थों के भी कान काटते हैं। उदासी बहुत बिगड़े हुये हैं, सन्यासी आवारगी में कुछही उनसे कम हैं। अब ता संन्यासी बनने के लिये केवल गीता की एक पुस्तक पास रहना आवश्यक है; और गुरुमुखी अक्षरों से परिचय रखना, जिससे ग्रन्थ साहब का पाठ वह करले, उदासी के लिये योग्यता की कसौटी है। ग्रन्थ साहब का पाठ करना आता हो, मानो वह गुरु नानक का प्रतिनिधि हो गया। गुरू नानक का हेड-क्वार्टर रणजीतसिंह का बनवाया अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर है। शंकराचारियों के प्रधान मठ चार हैं। उनमें से एक 'शृङ्गेरी मठ' है जिसके प्रधान हस्तामलकाचार्य थे। शङ्कर के दश शिष्यों में पुरी, भारती, सरस्वती नाम के इन तीन सम्प्रदाय वालों के अधिकार में यह मठ है। यह मठ शृङ्गगिरि पर्वत पर है जो रामेश्वर के रास्ते में मद्रास प्रान्त में है। दूसरा 'शारदा मठ' है जो द्वारिका में है। शङ्कर के सब से मुख्य शिष्य पद्मपादाचार्य के अधिकार में यह मठ रक्खा गया। तीर्थ और आश्रम दो संप्रदाय के सन्यासियों के अधिकार में यह मठ है। 'जोशी मठ' नाम का तीसरा मठ हिमालय में बद्री और केदार के रास्ते में कहीं पर है। त्रोटकाचार्य इसके प्रधान किये गये। गिरि, पर्वत, सागर तीन सम्प्रदाय के सन्यासी इसके अधिकारी हैं। चौथा 'गोवर्धन मठ' है जो जगन्नाथपुरी में है। सुरेश्वराचार्य जो पहिले मण्डन मिश्र के नाम से प्रसिद्ध थे इस मठ के प्रधान किये गये। वन और अरण्य दो सम्प्रदाय के संन्यासी इसके अधिकारी हैं। इन इन गद्दियों पर अब जो रहते हैं वे शंकराचार्य कहलाते हैं और जगद्गुरू की उपाधि उन्हें दी जाती है। मुख्य शंकराचार्य महराज की यह

कभी इच्छा न हुई कि हम जगद्गुरू कहलावें, किन्तु जो अब उस गद्दी पर बैठते हैं अपने को जगद्गुरु कहते और मानते हैं। मदरास और बम्बई प्रान्त में जगद्गुरू शंकराचार्य का बड़ा ज़ोर है। सामाजिक और धर्मसम्बन्धी मामलों में बिना जगद्गुरू की व्यवस्था के कोई काम पंचद्रविड़ों में नहीं हो सकता।

"सौन्दर्य-लहरी" आदि अनेक स्तोत्र शंकर के नाम से प्रचलित हैं पर वे मुख्य शंकर के बनाये नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि ये जगद्गुरू शंकराचार्य उत्कृष्ट पण्डित होते आए और हैं भी। "तत्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "अयमात्मा ब्रह्म" ये चार महा वाक्य इन चार मठों के अलग अलग माने गये हैं। शंकराचार्य के प्रधान शिष्य पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वराचार्य, तोटकाचार्य, समित्पाणि, चिद्विलास, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्णदर्शन, बुद्धिवृद्धि, विरचिपाद, शुद्धानन्त, आनन्दगिरि, सुधन्वाराजा, कविराज राजशेखर इत्यादि थे। इसमें सन्देह नहीं बौद्धों के उपरान्त शंकराचार्य वर्तमान हिन्दू धर्म के बड़े पोषक हुये। यह न हुये होते तो देश का देश या तो बौद्ध मतावलम्बी बना रहता या सब के सब यवन या मुसलमान हो जाते। गुरू नानक की भी तेरह गद्दियां हैं। उनके जुदे जुदे पन्थ हैं। दश इनके अवतार माने गये हैं। चेलों में सब से मुख्य सुथरा था।

इति